फसल पीड़क कीट

भारत–देश और लोग

फसल पीड़क कीट

एस. प्रधान

संशोधन

एम.जी. जोतवाणी

अनुवाद

हनुमान सिंह पंवार

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1502-1

पहला संस्करण : 1995 (शक 1917)

INSECT PESTS OF CROPS *(Hindi)*

रु. 70.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,
ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

चित्र सूची

26. हड्डा भृंग
27. चितकबरी डोडा सूंडी
28. गुलाबी डोडा सूंडी
29. कपास की सफेद मक्खी
30. पटसन अर्द्ध कुंडलक
31. पटसन तथा घुन
32. स्पोडोप्टेरा
33. नींबू पर्ण सुरंगी
34. नींबू तितली
35. अनार तितली
36. आम्र मीली बग
37. छाल भक्षी सूंडी
38. आम्र गुठली घुन
39. गुच्छा सूंडी
40. लट (साईकिड्स)
41. चाय मच्छर बग
42. गैंडा भृंग
43. कलमुंही सूंडी
44. लेज़ियोडर्मा सेरीकोर्ने द्वारा नष्ट की गई हल्दी
45. सिगरेट भृंग
46. चावल घुन
47. लघु अन्न बेधक
48. खपरा भृंग
49. दलहन भृंग की विभिन्न अवस्थाएं
50. पूसा बिन (कोठी)

प्रस्तावना

इस पुस्तक का आकार निर्धारित सीमा में रखने की दृष्टि से देश के महत्वपूर्ण पीड़क कीटों में से केवल थोड़े से ही कीटों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। मुख्य ध्येय भारत में पीड़क कीटों की समस्या का मात्र जायजा देना रहा है न कि पूरा ब्यौरा प्रस्तुत करना। चूंकि पुस्तक आम पाठक के लिए लिखी गई है, इसलिए कीट विज्ञान संबंधी भारी भरकम शब्दों का अन्य पेचीदगियों से लेखक ने परहेज रखते हुए काफी स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाया है। किसी भी विशेष पीड़क का आधुनिक नाम देने की अपेक्षा लेखक ने उन्हीं शब्दों का चुनाव किया जो लंबे समय से प्रचलन में हैं। स्पष्ट है कि जातियों के लेखकों के नाम सम्मिलित नहीं किये गये हैं। जहां कहीं भी लेखकों के नाम बड़े बड़े थे अथवा एक से अधिक लेखकों के नाम देने थे, उन्हें छोड़ दिया गया है। संदर्भों के उल्लेख देने का भी कोई प्रयास नहीं किया गया है।

देखने में कीड़े-मकोड़ों का अस्तित्व अत्यंत सूक्ष्म है लेकिन इनके द्वारा उत्पन्न समस्याएं और व्याधियां इनके आकार के अनुपात में बिल्कुल विपरीत हैं। कीट जन्य समस्याएं इतनी गंभीर हैं कि उन्हें उनके सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए हमारी विचार प्रक्रिया को ज्ञान के उच्चतम स्तर पर काम करना होगा। समूह के रूप में कीटों के विकास की परिपक्वता मानव की अपेक्षा 500 गुणा है। विभिन्न अनुमानों के अनुसार 25 से 50 करोड़ वर्ष पहले सृष्टि में कीटों की उत्पत्ति हुई। कीटों की प्राचीनता का आभास इससे होता है कि पृथ्वी पर मानव का आगमन मात्र 10 लाख वर्ष पूर्व हुआ। इतने आरंभिक युग से लेकर आज तक इन कीटों ने अनेक बाधाओं के बावजूद अपने अस्तित्व को न केवल बनाये रखा बल्कि वे प्राणि जगत के सबसे प्रमुख समूह हैं। सृष्टि में जितने जीव हैं उनमें आधे से अधिक की संख्या कीटों की है। मानव और पशु-पक्षियों सहित विश्व के सभी जीव जंतुओं में कीट ही ऐसे हैं जो अपने सूक्ष्म आकार में ही सक्रिय वातावरणीय अस्तित्व बनाये रख सकते हैं।

कीटों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनके छह टांगें होती हैं। यह संख्या अनुकूलतम है। क्योंकि जब वे ठोस सतह पर चलते हैं तो तीन टांगें तो शरीर का बोझ संभालती हैं और शेष तीन आगे बढ़ने का काम करती हैं। इससे उनकी चाल में दृढ़ता

बनी रहती है। कीटों के अनेक समूहों का जीवनवृत चार सुनिश्चित प्रावस्थाओं यथा, अंडा, लार्वा, प्यूपा और प्रौढ़ में विभाजित होता है। इनमें से दो अवस्थाएं, एक लार्वा की मुख्यतः प्राशन अवस्था और दूसरा प्रौढ़ की प्रजनन अवस्था न केवल संरचनात्मक स्वरूप में बल्कि अपनी आहार और आवास संबंधी आवश्यकताओं के बारे में इतनी भिन्न हैं कि जनक और संतान के बीच आहार और आश्रय में आपसी प्रतियोगिता पूरी तरह लुप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त एक ही जीव अपने लिए कम से कम दो भिन्न प्रकार के आहार और आवास का उपयोग करता है। लार्वा और प्रौढ़ की सक्रिय अवस्थाओं के मध्य प्यूपा की निष्क्रिय अवस्था के होने से ये सक्रिय अवस्थाएं दो भिन्न मौसमों के लिए सर्वथा उपयुक्त होती हैं।

विकास की जिस पराकाष्ठा को दीमक, चींटियों और मधुमक्खियों जैसे सामाजिक कीटों ने प्राप्त किया है, वह अत्यंत दिलचस्प होने के साथ साथ शिक्षाप्रद भी है। इन्होंने अपनी स्वयं की खेतीबाड़ी, डेरी, कार्य विभाजन, सामाजिक व्यवस्था और अपनी ही भाषा का विकास किया है। कीट संसार में इन सभी का विश्वसनीय संरचनात्मक, विकासात्मक, व्यवहार्य और संगठनात्मक पूर्णता का विवरण है और यदि हम इन सब वास्तविकताओं पर चिंतन करें तो शीघ्र ही मानना पड़ेगा कि मनुष्य का, कीट संसार से कड़ा मुकाबला है।

कीटों की निरंतर और विस्फोटक सफलता का रहस्य यह है कि इन्होंने अपने लघु रूप का भरपूर लाभ उठाया और अपने शत्रुओं को उनके पूर्ण संतोष के झूठे मद में रखा। यही खेल आज वे मानव जाति के साथ खेल रहे हैं। हममें से अधिकतर कीट समस्याओं के बारे में निर्विकार रहे। वस्तुतः न तो ये इतने सूक्ष्म हैं कि अन्य सूक्ष्मदर्शी से देखे जाने वाले जीवों की तरह दिखाई ही न दें और न ही, शेर या चीतों की तरह भयंकर हैं। हां, टिड्डियों को देखकर मनुष्य अवश्य भय खाता है। इस प्रकार एक तरह से कीट हमें चकमा दे रहे हैं और उनके द्वारा उत्पन्न समस्या हमारे काबू से बाहर हो रही है। कृषि क्षेत्र में इनकी भयावहता के बारे में अब भी हममें से बहुत ऐसे हैं जो यह नहीं मानते हैं कि यह समस्या नियंत्रण से बाहर हो रही है। जो लोग इससे सहमत नहीं हैं, दरअसल वे मानवता को चकमा देने की कीटों की प्रवृत्ति के शिकार रहे हैं।

जिस किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में हम पड़ गये हैं वह कुछ इस प्रकार है : जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है और मानवता को पूरी तरह भुखमरी में डुबो चुकी है। इस समस्या का केवल एक ही समाधान है कि कृषि की पैदावार को तीव्रता से बढ़ाया जाय। इस स्थिति में प्रकृति का एक विशिष्ट नियम लागू होता है। जितना हम कृषि को बढ़ाने की कोशिश करते हैं, उसी अनुपात में इसके पीड़कों की स्थिति प्रबल हो जाती है। कीटों का विकास

भूमि पर वनस्पति के विकास के साथ साथ हुआ। पीड़क कीटों की उत्पत्ति वनस्पति के आरंभ के साथ साथ ही हुई और तभी से जैसे जैसे कृषि की पैदावार बढ़ी, पीड़कों की समस्या भी बढ़ती गयी जब तक कि इनकी प्रबलता को रोकने के लिए समुचित कदम नहीं उठाये गये। यह चक्र फिलहाल भारतीय परिस्थितियों में अच्छी तरह परिलक्षित हो रहा है। खेती की नयी तकनीकों और नयी विधियों को अपनाने का शुभारंभ पिछले कुछ दशकों में ही हुआ है और इस अल्पावधि में देश ने कई प्रकार की नयी पीड़क महामारियों का अनुभव किया है जो हमारी उपज पर एक के बाद एक प्रहार कर रही हैं। अब जैसा कि कुछ लोगों का सुझाव है। इस समस्या का हल बढ़ती हुई कृषि उत्पादन की दर को कम करना नहीं है। हां इससे बचने के उसी अनुपात में उपाय सोचे जा सकते हैं।

बचाव उपायों का विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ है कि जिस गति से कृषि उत्पादन बढ़ाने पर जोर दिया गया उतना पीड़क नियंत्रण अनुसंधानों को सुदृढ़ करने पर नहीं दिया गया। एक अनापेक्षित और अदृश्य रूप में पीड़क बढ़े और उनसे निपटने के लिए हड़बड़ाहट पूर्ण प्रयास किये गए। जब हम किसी अप्रत्याशित पीड़क महामारी का सामना करते हैं तो आमतौर पर हमारे पास जो हथियार होता है वह पीड़कनाशी दवाएं हैं, जिनका उपयोग प्राथमिक चिकित्सा के रूप में अस्थायी उपचार होता है। इस प्रकार पीड़कनाशी दवाओं का उपयोग इतना बढ़ रहा है कि पीड़क नियंत्रण की अन्य विधियां एक ओर रह गई हैं। पीड़क नियंत्रण की इस एक तरफा प्रक्रिया से गंभीर समस्याएं खड़ी होने लगी हैं।

दूसरी ओर भारत जैसे विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था के लिए भी यह उपयुक्त नहीं है कि पीड़कों की समस्या से निपटने के लिए पीड़कनाशी दवाओं द्वारा एक तरफा प्रयास ही किये जायें। उदाहरण के लिए भारत में पीड़कनाशी दवाओं के लिए जितना धन प्रतिवर्ष चाहिए, उसका परिणाम अरबों रुपये में बैठता है। यदि इतना प्रावधान कर भी दिया जाय तो इनके आयात के लिए विदेशी मुद्रा की व्यवस्था करना और दुष्कर है। यही नहीं, पीड़कनाशी दवाओं के उपयोग के बाद जो उसके दुष्प्रभाव पड़े होंगे उनका सामना करना तो हमारे नियंत्रण में निश्चित ही नहीं रहेगा।

ऐसी स्थिति में केवल यही उपाय है कि पीड़क नियंत्रण की सभी विधियों का एक साथ सूत्रण एवं उपयोग हो जिसमें दवाओं के प्रयोग सहित सभी उपायों का समान रूप से और गंभीरता से प्रयोग हो। इस पुस्तक में नियंत्रण उपायों को सुझाते समय इस पहलू पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है।

इस पुस्तक में तेरह अध्याय हैं जिनमें कुल 62 ऐसी पीड़क प्रजातियों अथवा पीड़क जातियों के समूहों का विस्तृत विवरण दिया गया है जो सामान्य फसलों अथवा कुछ विशेष फसल वर्गों से संबद्ध हैं। अन्य बहुत से पीड़क जीवों का उल्लेख मात्र किया गया है। विभिन्न

फसलों या अन्य वस्तुओं के आधार पर इनका इस प्रकार विभाजन किया गया है कि किसी विशेष फसल के मुख्य पीड़क का विवेचन करने के बाद, उस फसल की पूर्ण पीड़क समस्या पर प्रकाश डाला जाय तथा सभी मुख्य पीड़कों को ध्यान में रखते हुए समय समय पर उसके नियंत्रण करने और उसमें सुधार लाने का व्यूह रचा जाय।

एस. प्रधान

1

विविधभक्षी पीड़क

फसल पीड़क

शायद ही कोई ऐसी फसल हो जिसे उसकी बढ़वार की विभिन्न स्थितियों में एक या अधिक कीट क्षति न पहुंचाते हों। आहार के आधार पर पीड़कों को कई वर्गों में बांटा गया है। एकलभक्षी कीट उन्हें कहते हैं जो एक ही प्रकार के पौधे से आहार लेते हैं। ऐसे बहुत कम पीड़क हैं जिन्हें एकलभक्षी (मोनोफैगस) कहा जा सके। इनमें से कुछ का वर्गीकरण संभवतः इसलिए हुआ है कि जिन जंगली पौधों पर ये निर्भर रहते हैं, उनके विकल्पों को अभी तक खोजा नहीं जा सका है। अल्पभक्षी (ऑलिगोफैगस) कीट वे हैं जो एक ही समूह या कुल के पौधों का भोजन करते हैं। इसका एक उदाहरण बंदगोभी तितली है। विविधभक्षी (पॉलिफैगस) कीट वे हैं जो काफी बड़ी संख्या में जंगली और फसल वाले पौधों को खाते हैं। इस पुस्तक के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए सर्वप्रथम विविधभक्षी पीड़कों की चर्चा की गयी है।

अनेक क्षेत्र फसलों के समान पीड़क

बहुत से ऐसे पीड़क कीट हैं जो अपनी हानिकर क्षमता से आर्थिक महत्व की फसलों और पौधों को भारी क्षति पहुंचाते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, इन कीटों को विविधभक्षी पीड़क कहते हैं। इनमें से कुछ तो इतनी विविधता से भरपूर हैं कि विभिन्न फसलों के पीड़क अध्याय में भी इनकी चर्चा करना उचित नहीं है। इसलिए उनमें से कुछ महत्वपूर्ण पीड़कों के उदाहरण विविधभक्षी पीड़क अध्याय में चर्चा के लिए चुने गये हैं।

टिड्डी

(प्लेट-1)

टिड्डी को अंग्रेजी में 'लोकस्ट' कहते हैं जिसका अर्थ 'प्लेग' है। इस प्रकार टिड्डी का नाम ही भयानक विनाश से जुड़ा है। प्राचीन काल से ही टिड्डियों की कुछ छोटे सींगों वाली जातियों

(स्पीशीज) को 'लोकस्ट' का नाम मिल गया, क्योंकि कई बार इनका प्रजनन भारी संख्या में होता है और इनके विशाल दल बन जाते हैं जो अकल्पनीय वृंदों में उड़ान भरते हैं और अपने जन्म स्थान से सैकड़ों-हजारों मील तक उड़ कर फसलों को चौपट कर डालते हैं। लिखित विवरणों से इस बात का पता चलता है कि टिड्डी दल का आकार कितना भयंकर हो सकता है। कहा जाता है कि एक बार एक टिड्डी दल समुद्री तूफान की चपेट में आ गया और समुद्री लहरों के साथ बहकर उसके अवशेष किनारे पर आ लगे। इस अवशेष के बारे में कहा जाता है कि उसका विस्तार समुद्र के किनारे किनारे 40 मील लंबी और कई फुट चौड़ी विशाल दीवार के रूप में था। एक और उल्लेख मिलता है कि टिड्डी दल के विनाश के परिणामस्वरूप इन कीटों का 2,447 टन अवशेष एकत्र हुआ।

विश्व के विभिन्न देशों में टिड्डों की कुल मिलाकर ग्यारह जातियों अथवा उप-जातियों को टिड्डियों का नाम दिया गया है। इनमें से तीन भारत में मिलती हैं। इनके नाम हैं– मरुस्थली या रेगिस्तानी टिड्डी, प्रवासी टिड्डी और बंबई टिड्डी। इनमें से मरुस्थली टिड्डी सबसे ज्यादा खतरनाक है - विशेषकर भारतीय उपमहाद्वीप में। यह जाति कृषि की अंतर्राष्ट्रीय दुश्मन है जो 70 देशों के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में उत्तर-पश्चिम अफ्रीका से लेकर मध्य एशिया के सभी देशों से होते हुए भारत के पूर्व में असम और दक्षिण में केरल तक प्रकट होती है। उत्तर में पुर्तगाल, दक्षिण में स्पेन और तुर्की तथा रूसी गणराज्य के उजबेकिस्तान के दक्षिण में और दक्षिण में तंजानिया तक इसका प्रकोप होता है।

टिड्डी के बारे में एक विशिष्ट बात यह है कि भारत में उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर अब तक जो प्रामाणिक उल्लेख इसकी गतिविधियों के बारे में मिले हैं, उसमें इसके प्रकट होने की निश्चित अवधि रही है। हालांकि यह नियमित नहीं रही। विभिन्न अंतरालों पर बराबर अवधियों में वर्षों तक इसका प्रकोप हुआ। सन् 1812 से अब तक भारत में कुल 15 ऐसे वर्षों का उल्लेख है। ये वर्ष हैं 1812, 1821, 1834, 1843, 1863, 1869, 1878, 1889, 1896-97, 1901-03,1906-07, 1912-15, 1926-31, 1940-46 और 1948-63।

टिड्डियों के प्रकट होने के समय और अवधि से संबंधित कारणों का अभी तक पता नहीं चला है। इस कीट के जीवनवृत के अध्ययन से पता चला है कि मरुस्थली टिड्डी दो विशिष्ट प्रावस्थाओं में विद्यमान रहती है। यथा एकल (सोलिटरी) जीवन जिसमें यह मंद रहती है और यूथ (ग्रिगेरियस) जीवन जिसमें यह यूथ बनाकर भोजन के लिए चलती है। यह समय इसके प्रकोप की अवधि का होता है। इसके अलावा एक प्रावस्था और होती है जिसे क्षणिक (ट्रान्सियन्स) कह सकते हैं। इसके द्वारा यह प्रथम दो प्रावस्थाओं में से एक से दूसरी में जाती है। टिड्डियों की ये तीन प्रावस्थाएं इतनी भिन्न हैं कि पहले यह माना जाता था कि ये टिड्डियों की तीन जातियां हैं। इन प्रावस्थाओं में इनकी शरीर रचना भी बहुत भिन्न होती है। दो प्रकोपों के बीच के मंदकाल में मरुस्थली टिड्डी एकल जीवन में

रहती है। इस समय यह सामान्य टिड्डे की तरह प्रजनन करती है और यह क्रिया केवल कुछ मरुस्थल और अर्ध-मरुस्थल क्षेत्रों तक ही सीमित होती है। इन क्षेत्रों में भी प्रजनन छितरे हुए समूहों में होता है। इसलिए एकल जीवन में किसी का ज्यादा ध्यान इनकी ओर नहीं जाता। बाद में जब टिड्डी प्रकोप की शुरुआत के लिए वातावरण अनुकूल होता है तब प्रावस्थाओं में निश्चित परिवर्तन का चरण आरंभ होता है और वह एकल से यूथ प्रावस्था में आ जाती है। प्रजनन केंद्रीय हो जाता है और जो संततियां अपने जनकों से दूर सामान्य टिड्डों के रूप में जीवन बिता रही थीं, उनमें यूथ में रहने की और दूर दूर तक जाने की प्रवृति पनपती है। व्यवहार में इस परिवर्तन के साथ साथ इनकी आकृति और शारीरिक क्रिया में भी परिवर्तन आता है। इन दो प्रावस्थाओं की आरंभिक और प्रौढ़ अवस्था में इनके शरीर का रंग भी भिन्न होता है।

टिड्डियों के प्रकोप समय समय पर और क्रमिक रूप में क्यों होते हैं और एकल प्रावस्था से इनका परिवर्तन यूथ प्रावस्था में क्यों होता है? इसका जो विश्लेषण आज तक के प्रयासों के फलस्वरूप दिया जा सका है, उसे इस लेखक ने "टिड्डी चक्रों की आवधिकता का जैविक सिद्धांत" के रूप में प्रतिपादित किया है। इस सिद्धांत के अनुसार टिड्डियों का समय समय पर होने वाला प्रकोप मरुस्थल और अर्ध-मरुस्थल क्षेत्रों की जलवायु के कारण होता है। मंदकाल में टिड्डियां इन क्षेत्रों में एकाकी प्रावस्था में रहती हैं और जलवायु में जब अतिविषमता आती है तो टिड्डियों के दुश्मनों की संख्या घटती है और इन अतिविषम अवधियों के बीच में टिड्डियों का प्रकोप होता है। इस क्षेत्र की प्राणिजातियों का जीवनवृत अपेक्षाकृत कम होता है और अतिविषम जलवायु के कारण टिड्डियों के शत्रुओं, खासतौर पर रीढ़वाले परभक्षियों की संख्या बहुत कम हो जाती है। जो पारिस्थितिक ओट न मिलने के कारण अत्यंत गर्मी और शुष्कता से अपना बचाव नहीं कर पाते। परभक्षियों की संख्या में कमी आने से इस क्षेत्र में मरुस्थली टिड्डियों के लिए वातावरण का अवरोध कम हो जाता है और इनकी संख्या में भारी वृद्धि होती है। इसी तरह इस विषय में बताया जा सकता है कि मरुस्थली टिड्डियां अर्ध-मरुस्थली क्षेत्रों के अलावा दूसरी जगह विनाश क्यों नहीं करती हैं। ऐसा लगता है कि मरुस्थली टिड्डी की शत्रु जातियों की समष्टि सघनता इनके सामान्य प्रजनन क्षेत्रों को सीमित करती है। जैसे जैसे टिड्डी का भक्षण करने वाले परभक्षियों की संख्या बढ़ती है, वैसे वैसे मरुस्थली सीमा पर मरुस्थली टिड्डियों का प्रजनन कम होता जाता है। एक समय ऐसा आता है, जब इन टिड्डियों का अपने दुश्मन के सामने टिकना मुश्किल हो जाता है अर्थात जैविक अवरोधता बढ़ जाती है। मरुस्थल के अंदर जो इससे भी ज्यादा प्रतिकूल होता है, अत्यंत गर्मी और शुष्क मौसम के कारण टिड्डियों का प्रजनन असंभव हो सकता है। इसीलिए टिड्डियों का प्रजनन मरुस्थल और अर्ध-मरुस्थल क्षेत्रों के बीच के संधि क्षेत्र में होता है। मरुस्थली टिड्डी के जीवनवृत का यह विवरण अभी केवल सिद्धांत

के रूप में है और संक्रमण प्रदेशों में इस बारे में होने वाले गहन प्रेक्षण और प्रयोगों से मान्यता या अमान्यता की प्रतीक्षा में है।

मरुस्थली टिड्डी की जीवन शैली की एक विशिष्टता यह भी है कि यह अपने ग्रीष्म और बसंतकालीन प्रजनन क्षेत्रों के बीच नियमित रूप से प्रवास करती है। ग्रीष्मकालीन प्रजनन क्षेत्रों में मानसून की वर्षा होती है। ये क्षेत्र अफ्रीका में दक्षिण सहारा, लीबिया और मिस्र से दक्षिणी अरब और पाकिस्तान होते हुए उत्तर-पश्चिम भारत तक फैले हैं। दूसरी ओर बसंतकालीन क्षेत्रों में शीत ऋतु में वर्षा होती है। ये क्षेत्र अफ्रीका के उत्तरी कटिबंध से अरेबिया और ईरान तथा बलूचिस्तान तक हैं। इस तरह प्रवास करके यह ग्रीष्म और बसंतकालीन वर्षा वाले दोनों क्षेत्रों में प्रजनन करती है और प्रतिवर्ष इसकी अधिक संतति होती है। यदि यह इन दो में से एक ही क्षेत्र तक सीमित रहे तो इसकी संख्या इतनी नहीं बढ़ेगी जितनी यह इस विधि से बढ़ा लेती है। दूसरे शब्दों में यह कीट विभिन्न जलवायवीय कारकों में एक से अधिक में स्वतंत्र है जैसे दोनों प्रजनन क्षेत्रों में से किसी एक में मौसमी वर्षा का होना। जलवायवीय कारकों में से एक में आंशिक स्वतंत्रता होने के कारण एक साल में इनकी पीढ़ियों की संख्या में वृद्धि होती है। इससे मरुस्थली टिड्डियों के समय समय पर होने वाले समष्टि विस्फोटन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। व्यापक अध्ययनों से एक तथ्य यह भी सामने आया है कि जो हवाएं इन दो क्षेत्रों में वर्षा लाने में सहायक होती हैं, वे हवाएं ही इन टिड्डियों के प्रवास में भी सहायता करती हैं। इसी प्रकार इस प्रजाति की कुछ विशिष्टताएं भी इसके प्रवास करने का कारण हैं, क्योंकि ये हवाएं उन अन्य टिड्डों को अपने साथ उड़ाकर नहीं ले जातीं जो मरुस्थली टिड्डी से मिलते जुलते हैं। इन विशिष्टताओं का विस्तृत अध्ययन जरूरी है।

टिड्डी के संपूर्ण जीवनकाल के कई चरण होते हैं। अंडा अवस्था, फुदक अवस्था और प्रौढ़ अवस्था तीन मुख्य चरण हैं। अंडे गुच्छों में होते हैं जिनमें 150 या इससे भी अधिक अंडे होते हैं। टिड्डी अपने अंडों को जमीन में 8 से 15 सें.मी. तक की गहराई में देती है। इसके उदर में यह विशेषता होती है कि वह बढ़ जाता है इसलिए वह मिट्टी के अंदर जगह बनाकर उदर के पश्च भाग को बढ़ाती है और अंडे देती है। ढीली बलुई मिट्टी अंडे देने के अनुकूल होती है। अंडा पीले से रंग का होता है और चावल के दाने जैसा नजर आता है इसकी लंबाई 7-8 मि.मि. तथा घेरे का माप लगभग एक मि.मि. होता है। प्रचलित तापक्रम के अनुसार अंडे की स्थिति डेढ़ से चार सप्ताह तक रहती है। इस स्थिति में मिट्टी में नमी की अनुकूल मात्रा अंडे के उचित परिवर्धन के लिए बहुत आवश्यक होती है। यदि यह जरूरत समय पर वर्षा हो जाने से पूरी हो जाय, तो अंडे का स्फुटन डिंबक (लार्वा) के रूप में हो जाता है और लार्वा अपना झिल्लीनुमा आवरण उतार कर मिट्टी से बाहर आ जाता है तथा अपने जीवन की फुदक अवस्था में प्रविष्ट होता है। इस स्थिति

में और उसके बाद रंग, आकृति और व्यवहार इस बात पर निर्भर करता है कि टिड्डी एकल प्रावस्था में है, जिसमें वह बिखरे रूप में कम घनत्व में प्रजनन करती है अथवा यूथ प्रावस्था में है, जिसमें संकेंद्रित तौर पर अधिक घनत्व में प्रजनन करती है। फुदक काल 3 से 10 सप्ताह तक रहता है जो प्रचलित तापक्रम पर निर्भर है। इस काल में यह कई बार निर्मोचन करती है। अंतिम बार निर्मोचन करने (केंचुली उतारने) के बाद टिड्डी प्रौढ़ अवस्था में आती है और इसके 10-15 दिन बाद यह प्रजनन अवस्था में आ जाती है। यूथ प्रावस्था की फुदक अवस्था में इनका रंग हरा या जिन वनस्पतियों में इनका आवास हो, वैसा होता है। इसका व्यवहार सामान्य टिड्डों जैसा होता है और यह छितरी हुई रहती है। प्रौढ़ होने पर रंग धूसर पड़ जाता है और मुख्यतः यह रात में तथा अकेले उड़ती है। यूथ प्रावस्था में इन पर काले रंग की धारियां बन जाती हैं और ये निश्चित मार्गों पर दूर दूर तक जाती हैं। जब ये प्रौढ़ होती हैं तो अपरिपक्व अवस्था में गुलाबी और प्रजनन के लिए परिपक्व अवस्था में पीले रंग की हो जाती हैं। दिन में ये झुंड में उड़ती हैं।

नियंत्रण

टिड्डियों की समस्या का सामना करने की दृष्टि से मानव ने निम्नलिखित चार उपाय किये हैं :

(क) टिड्डी आसूचना और चेतावनी ; टिड्डी आक्रमण के विरुद्ध सहयोगी उपाय

मरुस्थली टिड्डी की जीवन व्यवस्था की एक विशेषता यह है कि यह छितरे और आमतौर पर अगम्य स्थानों पर मरुस्थली और अर्ध-मरुस्थली क्षेत्रों में प्रजनन करती है। इसलिए जब तक उनके बारे में सूचना प्राप्त करने का पूरा संगठन न हो, तब तक उनकी संख्या में हुई वृद्धि का पता लगाना मुश्किल होता है तथा परिणामस्वरूप टिड्डी आक्रमण का भी पूर्वानुमान नहीं लग पाता। इस मूल आवश्यकता को लगभग चालीस वर्ष पूर्व ही अनुभव किया गया, जब भारत में 1939 में पहली बार स्थायी टिड्डी चेतावनी संगठन की स्थापना की गयी। इस संगठन का मुख्य कार्य प्रभावी सर्वेक्षणों और अध्ययनों द्वारा इस कीट की संख्या के उतार चढ़ावों, इसकी अवस्थाओं में सभी संभावित प्रजनन क्षेत्रों में आने वाले परिवर्तनों आदि के बारे में जानकारी एकत्र करना तथा सभी संबद्ध पक्षों को इसके बारे में चेतावनी जारी करना है। मरुस्थली टिड्डियों के प्रजनन स्थल मध्य भारत से लेकर अफ्रीका के पश्चिमी भागों तक हैं। टिड्डी दल अपने जन्म स्थल से हजारों मील दूर विभिन्न देशों की सीमाएं लांघ कर जाने में सक्षम होता है। इसलिए अकेले किसी एक देश द्वारा किये गये टिड्डी नियंत्रण के प्रयास पर्याप्त नहीं हो सकते। इन तथ्यों पर विचार करते हुए टिड्डी अनुसंधान और नियंत्रण के क्षेत्रों में सक्रिय अंतर्राष्ट्रीय सहयोग रहा है। लंदन में स्थित

अंतर्राष्ट्रीय टिड्डी अनुसंधान केंद्र पिछले काफी समय से टिड्डी नियंत्रण पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन करता रहा है। समय समय पर भारत के प्रशिक्षित दल ईरान, अरब और अन्य देशों में टिड्डी नियंत्रण के लिये तैनात किये जाते हैं। सन् 1960 में खाद्य और कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) ने 'संयुक्त राष्ट्र विशेष मरुस्थली टिड्डी प्रायोजना' आरंभ की। वास्तव में टिड्डी विरोधी गतिविधियां एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें सबसे पहले अंतर्राष्ट्रीय सहकारिता और सहयोग का अत्यंत उत्साहजनक उदाहरण मिलता है। फिर भी इन गतिविधियों को और बड़े पैमाने पर करने की आवश्यकता है। अलग अलग देश के स्तर पर भी जैसे भारत में यह आवश्यक समझा गया कि टिड्डी-रोधी गतिविधियों में सहकारी योजना शामिल की जाय ताकि टिड्डी प्रजनन स्थलों को नष्ट करने के अभियान चलाये जा सकें और खर्चे को उन राज्यों में विभाजित किया जाय जहां टिड्डी आक्रमण की संभावना हो। बाद में यह खर्च केंद्र सरकार ने वहन करना आरंभ कर दिया।

(ख) प्रजनन स्थलों में झुंड न बनने देना

इलाज करने से अच्छा है रोग न होने देना। इसलिए टिड्डियों की समस्या का युक्ति संगत समाधान यह है कि उनकी संख्या को इतना न बढ़ने दिया जाय कि वे झुंड बनाने की स्थिति में आएं और प्रजनन क्षेत्र से बाहर प्रवास करें। ऐसा करने के वैज्ञानिक उपाय भी अब उपलब्ध हैं परंतु उनकी अभिपूर्ति में कई व्यावहारिक बाधाएं आती हैं। मुख्य बाधा समस्या की विशालता, व्यापक क्षेत्र और प्रजनन स्थलों तक न पहुंच पाने की है। टिड्डियों को उनके प्रजनन स्थल पर ही समाप्त कर देने के जो उपाय सफलतापूर्वक अपनाये गये हैं वे निम्नलिखित हैं :

(i) अंडा अवस्था के उपाय : विगत समय में अंडों से ग्रसित क्षेत्रों में जमीन की खुदाई जुताई जैसी यांत्रिक विधियों और वहां पानी भर कर ही अंडों को नष्ट किया जाता था। लेकिन अब एल्ड्रिन और डील्ड्रीन जैसे दीर्घस्थायी रसायन उपलब्ध हैं, जिनका यदि इन क्षेत्रों में छिड़काव किया जाय तो वे वहां अंडों से बच्चों के निकलते ही मारने के लिए विद्यमान रहते हैं। इसमें सारे क्षेत्र पर भी छिड़काव करने की जरूरत नहीं, केवल पट्टियों में छिड़काव करना ही पर्याप्त है, क्योंकि शिशु टिड्डियां पट्टियों से होकर कतारों में गुजरती हैं और रसायन के संपर्क में आकर नष्ट हो जाती हैं।

(ii) फुदक अवस्था के उपाय : शिशु टिड्डियों को नष्ट करने के लिए पहले यांत्रिक उपायों, जैसे आग का सहारा लिया जाता था। चूंकि ये कतारों में चलती हैं इसलिए इन्हें आगे-पीछे से आग लगाकर घेरा जाता था और इकट्ठा करके झुलसा दिया जाता था। इसके अतिरिक्त उन्हें खाइयों में खदेड़कर मिट्टी के नीचे दबा दिया जाता था। बाद में एक और विधि जहरीले आहार की अपनाई गयी जिसमें मेहनत कम थी। यह देखा गया कि शिशु टिड्डियां कई प्रकार के पदार्थों का आहार कर लेती हैं। गेहूं की भूसी को पानी से गीला करके छिड़कने

से टिड्डियां उसे खा लेती हैं। इसमें सोडियम अर्सेनेट और सोडियम फ्लूयो सिलीकेट मिलाकर बढ़ती हुई कतारों के आगे डाल दिया जाता है जिसे खाकर वे मर जाती हैं। हाल ही के वर्षों में कुछ और घातक कीटनाशक दवाओं का विकास किया गया है जिनके संपर्क में आते ही शिशु टिड्डियां नष्ट हो जाती हैं। इन दवाओं को तीव्र गति मशीनों से अथवा विमानों से शिशु टिड्डी ग्रस्त क्षेत्रों पर छिड़का जाता है। इनमें से कई जहरीले रसायनों का प्रलोभन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

(iii) प्रौढ़ टिड्डियों के उपाय : जब टिड्डी पूर्ण विकसित अर्थात प्रौढ़ हो जाती है तब उसे मारना अधिक कठिन होता है। एक तो ये अधिक गतिशील होती हैं और दूसरे विभिन्न कीटनाशकों के प्रति उनकी अवरोधिता बढ़ जाती है। फिर भी, प्रौढ़ टिड्डियों के दलों को प्रातःकाल और रात्रि के दौरान अथवा सर्दियों में रसायन छिड़क कर नष्ट किया जा सकता है क्योंकि उस समय उनकी गतिशीलता बहुत कम हो जाती है। ऐसे समय अन्य तरीकों जैसे आग जलाकर या यांत्रिक विधि से भी इनको नष्ट किया जा सकता है।

(iv) संभावित पारिस्थितिक नियंत्रण : टिड्डी चक्रों की आवधिकता के बारे में नये जैविक सिद्धांत का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। इस सिद्धांत का मुख्य व्यावहारिक उपयोग यह है कि टिड्डी प्रजनन स्थलों में पारिस्थितिक ओटों का निर्माण कर यह योजना बनायी जा सकती है कि टिड्डी चक्रों को प्रारंभिक अवस्था में कैसे रोका जाय? ऐसे स्थानों पर टिड्डी के शत्रुओं के विलोपन को रोका जाय ताकि वे टिड्डी की संख्या न बढ़ने दें। एक विकल्प यह है कि टिड्डी प्रजनन स्थलों की सीमा पर प्रवास करने वाले उसके शत्रुओं को लाकर उन्हें मुख्य टिड्डी प्रजनन स्थलों पर बसाने का प्रयास किया जाय। यह संभव है कि इस सिद्धांत के अनुसार भारत और विश्व के बड़े टिड्डी प्रजनन स्थलों का सुधार किया जाय और उन्हें टिड्डियों के अनुपयुक्त बना दिया जाय। इससे टिड्डियों के आक्रमण करने की समस्या कम की जा सकती है।

(ग) टिड्डी दलों और उनकी संतति का हमलाग्रस्त क्षेत्रों में विनाश

इसके लिए भी वही विधियां हैं जो उपरोक्त अनुच्छेदों में बतायी गयी हैं।

(घ) टिड्डी के नुकसान से फसलों का आपातकालीन तात्कालिक बचाव

कुछ वर्ष पहले भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में यह खोज की गयी कि *अज़ेडिरेक्टा इन्डिका* यानी नीम की निंबोली का टिड्डी अवरोधी आहार के रूप में अच्छा उपयोग किया जा सकता है। यदि निंबोली के 0.1 प्रतिशत निलम्बन का छिड़काव किसी भी फसल पर किया जाय तो वह फसल तीन सप्ताह तक टिड्डी से होने वाली हानि से बची रहेगी। इस खोज से किसानों को बहुत लाभ हुआ है। वे निजी स्तर पर इसका छिड़काव कर सकते हैं। जो किसान अब तक टिड्डी दल के हमले का सामना करने में असमर्थ थे, उनके लिए

यह वरदान है। इस आहार रोधी पदार्थ की सहायता से उनकी फसल सुरक्षित रहती है, जबकि पीड़क नियंत्रण संगठन विमानों से और जमीन पर रासायनिक छिड़काव करके टिड्डी दल का विनाश करने का प्रयत्न करते हैं।

सफेद चींटी

(दीमक)

(प्लेट-2)

दीमकों अथवा सफेद चींटियों का अध्ययन कई दृष्टि से दिलचस्प है। आर्थिक दृष्टि से यह हर प्रकार की लकड़ी को भारी नुकसान पहुंचाती है, चाहे वह इमारत में लगी लकड़ी हो, फर्नीचर की लकड़ी या सेल्यूलोज वाली वस्तुएं जैसे कागज ही क्यों न हो। गोबर, पेड़-पौधे और फसल आदि को भी यह हानि पहुंचाती है। समाजशास्त्रियों के लिए दीमक का अध्ययन उनकी अच्छी समाज व्यवस्था की दृष्टि से और छात्रों के लिए क्रम विकास के अध्ययन की दृष्टि से उपयुक्त है, जो जैविक रूप में आकृति-मूलक हैं लेकिन शारीरिक और सामाजिक विशेषताओं में अत्यंत विकसित हैं। इस संदर्भ में इन्हें सफेद चींटी कहना उपयुक्त ही है। हालांकि सफेद चींटियों (दीमक) और वास्तविक चींटियों में विकास की दूरी बहुत अधिक है। इन दोनों कीटों के रहन-सहन में समानता होते हुए भी कई अंतर इन्हें अलग करते हैं। आकार और सामान्य बनावट में ये बहुत भिन्न नहीं हैं, लेकिन इन्हें 'सफेद' का विशेषण देना इसलिए संगत है क्योंकि अधिकतर जातियों में ज्यादातर चींटियों का रंग हल्का पीलापन लिए होता है। फिर भी, जो सबसे आसान भिन्नता दीमक और चींटी के बीच है वह यह कि दीमक में वक्ष और उदर के जोड़ पर संकुचित कमर नहीं होती, जो कि चींटियों में हर जगह प्रमुखता से उपलब्ध है।

दीमक या तो जमीन के अंदर अपनी बांबियों में झुंड (बस्ती) बनाकर या नीड़ अथवा पुरानी लकड़ी में खोदी गयी नालियों और कक्षों में रहती है। चूंकि कुछ दीमकों का मुख्य भोजन लकड़ी ही होता है, इसलिए लकड़ी के अंदर रहने का इन्हें दुहरा लाभ है। इससे उन्हें आहार और आवाज दोनों मिलते हैं। इस प्रकार के गुप्त जीवन से दीमक धूप और खुली हवा की जिंदगी के उपयुक्त नहीं रहतीं और वे रात को जब नमी होती है, अपनी बांबियों से बाहर निकलती हैं तथा उनके विस्तार का कार्य करती हैं, जिनमें कि दिन में उनका आवागमन और प्रवास होता है। मिट्टी की ये सुरंगें धरती पर, इमारतों में और पेड़ों पर दूर दूर तक जाती हैं। मानव द्वारा निर्मित सड़कों के किनारे लगे पेड़ों के मार्गों की अपूर्णता की तुलना में दीमकों द्वारा तैयार सुविधाजनक मार्गों की बात ही कुछ और है।

यहां उनकी गतिविधियां व्यवहार में बहुत सुविधाजनक होती हैं। पुराने राजे-महाराजाओं और नवाबों ने शायद इसी प्रकार भूल-भुलैयाओं और एक किले से दूसरे किले तक जाने के भूमिगत मार्गों का निर्माण कराया था। लेकिन आधुनिक वातानुकूलित परिवहन ने मानव के इस प्रयास को दूसरी दिशा दी है।

दीमक बस्तियों की सामान्य व्यवस्था का आधार श्रम के विभाजन पर इतना निर्भर है कि विभिन्न काम करने वाले वर्गों की शारीरिक बनावट ही इसका प्रतीक है। इन विभिन्न वर्गों में सुपरिभाषित जातियां हैं जैसे सैनिक जाति, श्रमिक जाति, प्रजनक जाति और राजवंश। बस्ती में राजवंश जाति अपना कार्य मात्र प्रजनन तक ही सीमित रखती है। राजवंश ही किसी बस्ती को बसाने का दायित्व निभाती है पर किसी स्थापित बस्ती में राज्य सत्ता बदल भी सकती है। प्रजनन जाति के लोग तब तक प्रजनन आरंभ नहीं करते, जब तक कोई जोड़ा नयी बस्ती नहीं बसा लेता अथवा अपनी ही बस्ती पर आरुढ़ नहीं हो जाता।

रानी दीमक का आकार सबसे बड़ा होता है जो कई बार पांच सें.मी. से अधिक लंबा और एक सें.मी. से अधिक मोटा होता है। सामान्य दीमक की अपेक्षा रानी दीमक के आकार की यह विशालता उसके उदर के कारण होती है, जिसमें अंडे भरे होते हैं। रानी के उदर की विशालता उसकी प्रजनन विशिष्टता के गुण के कारण ही है जो एक उपयुक्त प्रजनन मशीन के रूप में काम करता है। इसकी क्षमता कई प्रजातियों में 30 हजार अंडे प्रतिदिन तक देने की होती है। शेष बस्ती में राजा होता है जो रानी का सक्रिय साथी होता है। इसके अलावा तीन उपजातियां प्रजनन सक्षम प्रजनकों की और दो बांझ जातियां श्रमिकों और सैनिकों की होती हैं।

सुस्थापित बस्ती में जनन योग्य प्रजनन जाति राजकुमार और राजकुमारियों की तरह होती है और उनके पास करने को अन्य कोई काम नहीं होता। वे सिर्फ अपने विशेष कार्य की प्रतीक्षा करते हैं कि उनके द्वारा स्थापित की जाने वाली भावी बस्तियों के राजा-रानी बनें अथवा विद्यमान बस्ती के किसी राजा-रानी को हटाकर स्वयं उनका स्थान लें। प्रजनक जाति के मुख्य तीन प्रकार हैं : (क) दीर्घपंखी (मेक्रोप्टेरस) वे हैं जिनमें पूर्ण विकसित झिल्लीदार पंख होते हैं, अपेक्षाकृत बड़ा मस्तिष्क और आंखें तथा सामान्य पूर्ण प्रजनन अंग होते हैं। (ख) लघुपंखी (ब्रेकिप्टेरस) में अल्प विकसित पंख होते हैं (ग) पंखहीन (एप्टेरस) में पंखों का कोई चिह्न नहीं होता। श्रमिकों की बांझ जाति में, जो कि बस्ती में श्रम करने वाला मुख्य मजदूर वर्ग होता है, मस्तिष्क और आंखों का आकार छोटा होता है। उनके मुंह के अंग, जिनका वे श्रम करते समय औजार के रूप में उपयोग करते हैं, बहुत मजबूत होते हैं। फिर भी सैनिक जाति की अपेक्षा इनके ये अंग कम विकसित होते हैं। सैनिक जाति अपने मुंह के अंगों का उपयोग सक्रिय प्रतिरक्षा और आक्रमण के लिए करती है

और शत्रु का कड़ा मुकाबला करती है। इसलिए उनका बहुत अच्छा विकास हुआ है और वे बहुत मजबूत होते हैं, विशेषकर जबड़ा अधिक बड़ा होता है जो कई प्रकार के काम करता है। दीमक की कुछ जातियों में मस्तक पर एक विशेष चोंच-सी होती है जिससे एक स्त्राव निकलता रहता है। यह उसका आक्रमणकारी रूप दिखाता है। रासायनिक युद्ध का यह मूल रूप है जो आदिम कालीन कीटों में भी था। जिन सैनिकों में यह अंग होता है, उन्हें नेस्यूट सैनिक कहते हैं।

चींटियों में श्रमिक और सैनिक मादाएं बांझ होती हैं, जब कि दीमकों में इन जातियों में नर और मादा दोनों ही बंध्य होते हैं।

भारतीय सामाजिक स्थितियों में देखें तो यह एक दिलचस्प पहलू है। भारत में जाति प्रथा प्राचीन समय से व्यवहार में है और मानवों में भी सामान्य स्वरूप और शारीरिक बनावट का संयोग मोटे तौर पर जाति व्यवस्था से मिलाया जा सकता है। यदि इस दृष्टि से कोई विश्लेषण करे तो यह देखकर आश्चर्य होगा कि दीमकों में जाति भेद की जड़ें कितनी गहरी हैं। भारतीयों के संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि किसी एक जाति में विशेष रूपाकृतिक लक्षण पाये जाते हैं क्योंकि विभिन्न जातियों में जननात्मक विलगन होता है। लेकिन दीमकों में यह अनोखी बात है कि एक मां की संतति भी विभिन्न जातियों को प्रतिबिंबित करती है। एक जननी की संततियों में इतना प्रमुख जाति भेद विज्ञान के लिए अभी भी एक पहेली है, हालांकि प्रायोगिक विश्लेषण देने वाले कई सिद्धांत इस क्षेत्र में विद्यमान हैं।

दीमकों की बस्तियों की स्थापना साधारणतया वर्षा ऋतु में होती है, जब किसी अनुकूल समय पर जैसे वर्षा के बाद स्वच्छ शाम के समय दीर्घपंखी प्रजनक काफी बड़ी संख्या में नीड़ के बाहर झुंड में निकलते हैं। झुंड में से अधिकतर दीमक मेंढक, छिपकली आदि परभक्षी जीवों का आहार बन जाती हैं। फिर भी कुछ जोड़े बच जाते हैं और वे समागम करते हैं, अपने पंख गिरा देते हैं और नयी बस्ती की नींव डालना आरंभ करते हैं। जोड़ा अपने लिए छोटा-सा सुहाग कक्ष खोदता है और प्रजनन प्रक्रिया आरंभ करता है। आरंभ में जोड़ा लाखों को खिलाने और उन्हें पालने में पर्याप्त सावधानी बरतता है और इस प्रकार जब समुचित संख्या में श्रमिक पल कर बड़े हो जाते हैं तो वे अपने जन्मदाता जोड़े को सभी तरह के श्रम से मुक्ति देकर शाही वैभव देते हैं। इसके बाद रानी का उदर तब तक लंबा होता रहता है, जब तक वह अंडे देने की मशीन नहीं बन जाती।

दीमकों की आहारी आदतें विविधतापूर्ण और दिलचस्प हैं। कुछ जातियों ने विशिष्ट तरीके की कृषि अपनायी है। ये कई प्रकार की फफूंदी की फसल उगाती हैं और उनकी देखभाल करती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे मनुष्य ने गेहूं या चावल की फसल को अपनाया है। फफूंदी की फसल कंघे जैसे स्पंजी ढांचे पर उगाई जाती है जिसे श्रमिक दीमक विशेष

रूप से अवचूर्णित वानस्पतिक सामग्री से बनाती हैं। फफूंदी उगाने के लिए यह उर्वर क्यारी का काम करती है। इन आश्चर्यजनक ढांचों को जिन्हें फफूंदी उद्यान कहते हैं, विशेष कक्षों में रखे जाते हैं, जो रहने के दूसरे कक्षों और गैलरियों में फैले हुए होते हैं। अन्य प्रजातियों में जिनका मुख्य आहार सेल्यूलोज सामग्री होता है, अपनी आंतों में विशेष प्रकार के एककोशिक जीव रखते हैं जो सेल्यूलोज को पचाने में सहायता करते हैं। कुछ अन्य प्रजातियों ने ऐसी प्राशन प्रणाली का विकास किया है, जिसमें वे उसी बस्ती के अन्य सदस्यों द्वारा अर्धपाचित आहार को ग्रहण करते हैं। अन्य आर्थ्रोपोडा दीमक की विभिन्न प्रजातियों ने अन्य कीट समूहों के साथ भिन्न भिन्न प्रकार के सामाजिक संबंध विकसित किए हैं। दीमक नीड़ों से साधारणतया संबद्ध जीवों को टर्मिटोफाइल कहा जाता है। इनमें कुछ तो वे शामिल हैं जो बस्ती के सच्चे मेहमान माने जाते हैं और अन्य वे हैं जिन्हें बस बर्दाश्त किया जाता है। कई मामलों में दीमक की कई जातियां एक प्रकार की सामाजिक सहजीवन की स्थिति में साथ साथ रहती भी बताई गई हैं।

दीमक जीवन के उपर्युक्त चमत्कारी पहलू को देखने के बाद यह बात आश्चर्यजनक नहीं लगती कि मनुष्य क्यों इससे होने वाली हानि पर नियंत्रण नहीं कर पा रहा। दीमक की जीवन शैली गुप्त विधि की है। इसीलिए उसकी वास्तविक आदतों और दुर्बल पक्षों का अध्ययन बहुत कठिन है तथा जिनका उपयोग उसके नियंत्रण में सहयोगी हो सकता था। विभिन्न प्रकार की लकड़ियों पर विश्व भर की प्रयोगशालाओं में यह परीक्षण किया जा रहा है कि दीमक से क्षति के प्रति कौन कौन-सी लकड़ियां सुरक्षित हैं और लकड़ियों को दीमक रोधी कैसे बनाया जा सकता है। भवनों को दीमक रोधी बनाने के बारे में भी कई प्रकार के डिजाइनों पर परीक्षण किये गये हैं। टीला बनाने वाली कई प्रजातियों की बस्तियों के उन्मूलन के भी तरीके सुझाये गये हैं, क्योंकि इन दीमक गृहों का आसानी से पता लग जाता है। दीमक की कई जातियां अपने नीड़ जमीन में कई फुट की गहराई पर बनाती हैं। इन नीड़ों में से केवल श्रमिक दीमक ही बाहर निकलकर दूर दूर से आहार एकत्रित कर अंदर ले जाती हैं और इस प्रकार गेहूं, गन्ना आदि बहुमूल्य फसलों का नाश करती हैं। इससे पहले दीमक से बचाव का एकमात्र उपाय खेतों को खनिज तेल मिश्रित पानी से सींचना था, जो दो सप्ताह तक एक प्रभावशाली प्रतिकर्षी का कार्य करता था। लेकिन आजकल एल्ड्रिन और हेप्टाक्लोर जैसे दीर्घस्थायी कीटनाशक खोज लिए गये हैं, जिन्हें मिट्टी में मिलाया जा सकता है। जब कभी दीमक आहार के लिए इस प्रकार उपचारित खेतों में आती हैं तो वे विष के संपर्क में आकर मर जाती हैं। परंतु कठिनाई यह है कि प्रत्येक नीड़ की रानी दीमक एक दिन में 30,000 अंडे देने की क्षमता रखती है। इस कारण दीमकों के नित नये झुंड अनेक नीड़ों से लगातार निकलते रहते हैं। इसलिए दीमक ग्रस्त खेतों में बार बार दवा से उपचार करना आवश्यक है।

रोमिल सूंडी

(प्लेट-3)

भारत में रोमिल सूंडियों की कई जातियां हैं। ये सामान्य आकार के केटरपिलर हैं जिनका रंग ध्यानाकर्षी होता है। उनके चटक रंगों का उपयोग अभी ज्ञात नहीं है, क्योंकि ये अधिकतर रात्रिचर होते हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इनके पंखों की चमकदार सफेद पृष्ठभूमि इनकी एक चेतावनी होती है, जो इनके लिए धुंधलके के समय महत्वपूर्ण होती होगी। दूसरे शब्दों में ये पतंगे उन परभक्षियों के लिए अरुचिकर अथवा हानिकर भी हो सकते हैं, जो साधारणतया इन पतंगों को पकड़ कर निगल जाने का प्रयत्न करते होंगे। इसलिए इन पतंगों के लिए विशेष पहचान होना महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे परभक्षियों को संदेश मिल जाता है कि इन्हें पकड़ने का प्रयत्न लाभदायक नहीं है अथवा हानिकारक हो सकता है। इस प्रकार के विशेष चेतावनी वाले रंगों के बिना ये पतंगे परभक्षियों द्वारा पकड़े जा सकते हैं चाहे बाद में वे इनके मृत शरीर को न खायें। रंगों द्वारा चेतावनी देने की यह प्रक्रिया कीटों में सुरक्षा सुनिश्चित करने का एक दिलचस्प पहलू है, जो कुछ और जंतुओं में भी पाया जाता है। इनका एक लक्षण यह भी है कि विशेष ऋतुओं में जब जलवायु इन पतंगों के लिये अनुकूल होती है, ये भारी संख्या में दृष्टिगोचर होते हैं। ये कृष्ट और जंगली पौधों के पत्तों पर झुंड में अंडे देते हैं और अंडों में से निकलने वाली सूंडिया विभिन्न परिमाणों में बहुभक्षी होती हैं। इनकी विशिष्ट लंबाई होती है और शरीर पूर्णतया रोमिल एवं ध्यानाकर्षी रंग का होता है। जब सूंडी का प्यूपा बनता है तो वह रोयों का उपयोग कोकून बनाने में करता है।

रोमिल सूंडियों के समस्त समूह में तथाकथित लाल रोमिल सूंडी (कुतरा) कृषि के लिए पूरे भारत में सर्वाधिक क्षति पहुंचाने वाली है। यद्यपि देश के दक्षिणी और उत्तरी भागों में जो सूंडियां मिलती हैं, वे एमसैक्टा वंश की दो जातियां हैं, परंतु इनकी आदतें, क्षति का स्वरूप आदि इतने समान हैं कि इनका अलग से विवरण आवश्यक नहीं है। जैसा कि नाम से पता चलता है इन सूंडियों का शरीर हल्के रोयों (बाल) से ढका होता है और इनका रंग लाल-नारंगी या भूरा-नारंगी होता है। इनके पूर्ण विकसित लार्वा की लंबाई 6 से.मी. से भी अधिक होती है।

मानूसन की पहली अच्छी वर्षा के बाद लाल रोमिल सूंडी के जनक पतंगे बहुत अधिक संख्या में निकल पड़ते हैं। उस समय प्रायः ये प्रकाश के प्रति आकर्षित होते हैं और अपने अपेक्षाकृत भारी शरीर और सफेद रंग के पंखों द्वारा जिनके किनारे लाली लिए हुए से और काले बिंदुओं वाले होते हैं, बड़ी सुगमता से पहचाने जा सकते हैं। ये कृष्ट और जंगली दोनों प्रकार के पौधों के पत्तों पर बड़े सुस्पष्ट दलों में अंडे देते हैं। इनके

अंडों के दल खसखस के गुच्छे जैसे नजर आते हैं और हरे पत्तों पर चमकते रहते हैं। अंडे देने के बाद चार पांच दिन में उनसे लार्वा निकलते हैं और शीघ्र ही खाना शुरू कर देते हैं। कुछ दिनों तक तो ये एकत्रित रहते हैं पर बाद में अलग अलग हो जाते हैं। उम्र के साथ साथ इनकी आहार क्षमता बढ़ती जाती है और चूंकि इस समय वनस्पति बहुत अधिक नहीं होती, वे शीघ्र ही उस जगह की हरियाली को चौपट कर देते हैं, जहां पर आरंभ में अंडे दिये गये थे। इसके बाद ये बड़े झुंडों में पड़ोस के खेतों में आगे बढ़ते हैं और पूरी तरह चरने के बाद एक खेत से दूसरे खेत में जाना जारी रखते हैं। जिस वर्ष इनका प्रकोप अधिक होता है, उस वर्ष मौसम के आरंभ में खेत दर खेतों में दुबारा बुआई करनी पड़ती है और बाद में दुबारा बुआई का समय भी निकल जाता है। कम प्रकोप वाले वर्ष में आरंभ में नुकसान बहुत अधिक नहीं होता और किसानों को इसका पता इतनी देर में चलता है कि इस पीड़क का नियंत्रण कठिन हो जाता है। इस प्रकार की चराई सितंबर तक चलती है जिसके बाद पूर्ण विकसित सूंडियां प्यूपा बनने के लिए मिट्टी के अंदर जाना आरंभ कर देती हैं। जब ऋतु के इस समय में नियंत्रण उपाय शुरू करने में देर हो जाती है उस समय किसानों को यह भ्रम हो जाता है कि उनके किये गये उपाय सफल रहे हैं जब कि वास्तव में पीड़क का एकदम गायब हो जाने का कारण लाखों का प्यूपा बनने के लिए भूमिगत हो जाना होता है। प्यूपा बनने से पहले काफी संख्या में लाखों लार्वा खेती योग्य क्षेत्रों से निकलकर पास के खेती के अयोग्य क्षेत्रों में चले जाते हैं। दूसरे शब्दों में वे पूरे शीत और ग्रीष्मकाल तक जमीन में रहते हैं और जब अगले मानसून की पहली वर्षा होती है तो ये पतंगों के रूप में बाहर निकलते हैं।

सामान्य जीवविज्ञान की दृष्टि से इसके और ऐसी ही कुछ अन्य साथी जातियों के जीवनकाल के इस हिस्से से संबद्ध दो बातें अनुदेशिक हैं। पहली यह कि प्यूपा बनने के समय इनकी खेती योग्य क्षेत्रों से खेती के अयोग्य क्षेत्रों में जाने की प्रवृति यथासंभव विकासीय प्रक्रिया का एक भाग है जिससे जाति के जीवित रहने की संभावना अधिक हो जाती है। इस प्रकार प्यूपा खेतों में संपूर्ण शीत और ग्रीष्म ऋतु में जुताई के समय होने वाली हलचल द्वारा विनाश से बच जाते हैं। विकास की इस प्रवृति की सहज ही कल्पना की जा सकती है। खेती योग्य क्षेत्रों में प्यूपा बनने वाले लार्वा अधिकतर जुताई आदि के कारण मारे जाते हैं, जबकि सुरक्षित स्थान पर जाने वाले लार्वों के जीवित रहने के अवसर अधिक हैं। इनके जीवनकाल की दूसरी दिलचस्प बात जिसका यह एक बहुत अच्छा उदाहरण है, अवस्थाओं कि किस प्रकार कुछ जातियां प्यूपा अवस्था, जिसको स्वयं आहार की आवश्यकता नहीं होती, का दो सक्रिय अवस्थाओं के बीच प्रयोग करती हैं—पहली अवस्था (लार्वा) में मुख्य कार्य आहार प्राप्त करना है और दूसरे (प्रौढ़) में प्रजनन कार्य मुख्य होता है। इनके ये दो भाग वर्ष के दो भागों के लिए उपयुक्त हैं, जो पूर्ण शीत और ग्रीष्म ऋतु के लंबे समय

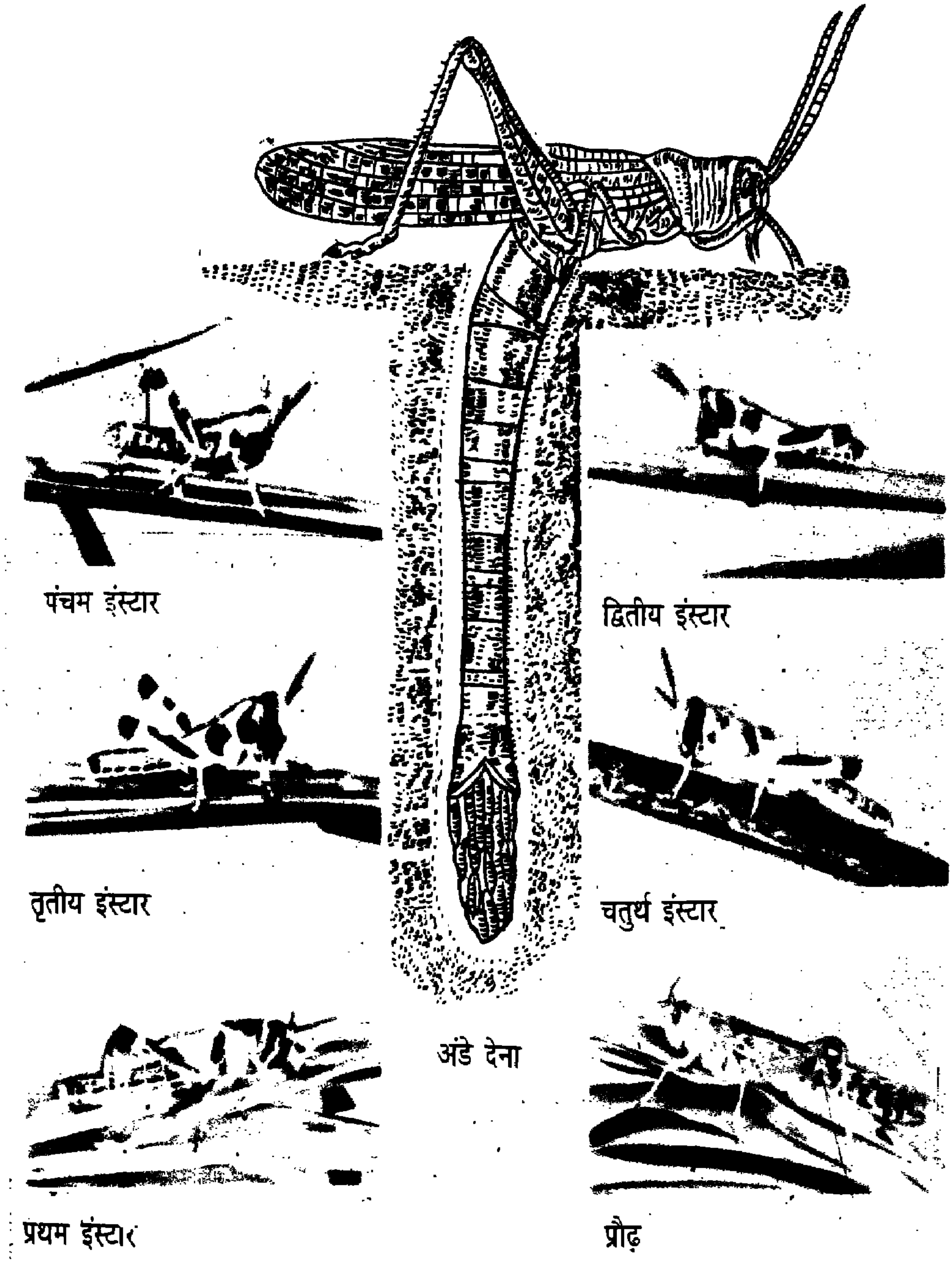
द्वारा अलग किये गये हैं। प्यूपा अवस्था मानूसन के आगमन और शीत तथा ग्रीष्म ऋतु की अवधि के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है।

नियंत्रण अभियान

लाल रोमिल सूंडी और इससे संबद्ध जातियों को पारंपरिक कीटनाशक विधियों से नष्ट करना बहुत कठिन है। विशेषकर यदि नियंत्रण कार्य लार्वा के पूर्ण विकसित अवस्था में पहुंचने से पहले आरंभ नहीं किया गया हो। इस समय उनके द्वारा नुकसान अधिक होता है और ये ध्यान आकृष्ट करते हैं। इसका नियंत्रण व्यापक सहकारी अथवा सरकारी स्तर पर करना जरूरी होता है, क्योंकि इसका विकसित लार्वा लाखों की संख्या में एक खेत से दूसरे खेत में पहुंचता है और पशुओं की तरह फसल को एक एक कर नष्ट करता जाता है।

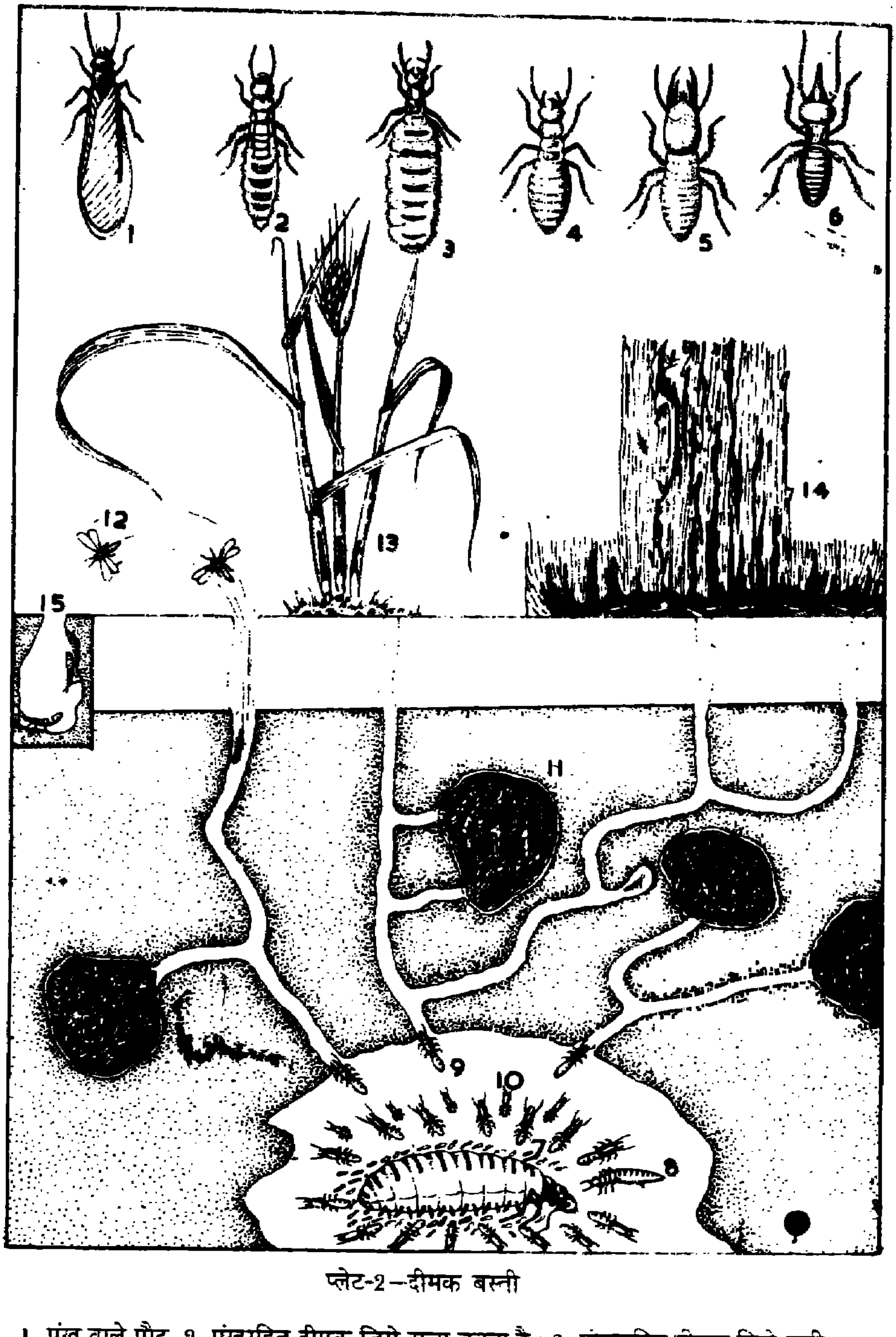
हाल के वर्षों में कीट वैज्ञानिक कुतरा सूंडी को इसकी विकसित अवस्था में नष्ट करने के लिए अधिक से अधिक जहरीले रसायन खोजने का प्रयत्न कर रहे हैं, क्योंकि सूंडी के इस अवस्था में पहुंचने पर किसान बहुत चिंतित हो जाते हैं तथा इतने वड़े आकार के इस कीट को भारी संख्या में मारने का प्रभाव भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। यह प्रयास न केवल बहुत कठिन साबित हुआ है, बल्कि तर्कसंगत भी नहीं है, क्योंकि जब कीट इस अवस्था में पहुंचता है तब तक वह बहुत हानि कर चुका होता है। कुतरा से फसलों को क्षति से बचाने के लिए प्रभावी युक्ति समय पर निम्नलिखित तरीके से इसके विरुद्ध व्यापक पैमाने पर अभियान चलाना है :

(क) यह पीड़क सितंबर-अक्तूबर में शीत ऋतु से लेकर गर्मियों की शुरुआत तक पूरी अवधि में प्यूपा अवस्था में भूमि में लगभग आधा मीटर अंदर रहता है। मानूसन आने पर एक के बाद एक कई चरणों में ये भूमि से बाहर निकलते हैं और उनका पहला चरण मानसून की प्रथम वर्षा के अवसर पर होता है। ये पतंगे प्रकाश के प्रति आकर्षित होते हैं। इसलिए वर्षा ऋतु के आरंभ में ही प्रकाश पिंजड़े लगा देने चाहिए। प्रकाश पिंजड़े दो तरीकों से काम आते हैं। पहला तो यह कि काफी बड़ी संख्या में कुतरा पतंगे अंडे देने से पहले ही इससे मारे जायेंगे और दूसरे इससे भूमि से पतंगे निकलने के बारे में चेतावनी मिल जायेगी जिससे निम्नांकित तरीकों के अनुसार उनके नियंत्रण के उचित उपाय ठीक समय पर किये जा सकेंगे। प्रकाश पिंजड़ों के उपयोग की सिफारिश बहुत पहले से ही की जा रही है, लेकिन उसके व्यवहार की दिशा में विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। एक बार को तो यही प्रतीत होता है कि यह एक बहुत अपरिष्कृत उपाय है परंतु जब इसके अन्य विकल्पों के गंभीर विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि कुतरा की जीवनशैली को देखते हुए हर कोई मानेगा कि इसके विरुद्ध अभियान के लिए प्रकाश पिंजड़ा एक प्रभावी तरीका



प्लेट-1—मरुस्थली टिड्डी

श्वेत-श्याम रंग के मध्य चित्र में मरुस्थली टिड्डी अपने उदर को सर्वाधिक लंबा बढ़ाकर मृदा में अंडे दे रही है। यह रेखाचित्र है। अन्य रंगीन छह चित्रों में रेगिस्तानी टिड्डी की विभिन्न इंस्टार (अंतरा निर्मोकीय) अवस्थाएं हैं, जिसे शैल पेट्रोलियम कं. लि. (1956) द्वारा जारी *हंगरी थीफ* नामक प्रकाशन से लिया गया है।



प्लेट-2—दीमक बस्ती

1. पंख वाले प्रौढ़, 2. पंखरहित दीमक जिसे राजा बनना है। 3. पंखरहित दीमक जिसे रानी बनना है। 4. श्रमिक 5. साधारण सैनिक 6. नैस्यूट सैनिक 7. भूमिगत स्थल में रानी दीमक 8. राजा दीमक 9. सैनिक दीमक 10. दीमक श्रमिक 11. फफूंद उद्यान 12. भूमिगत स्थल से बाहर जाते पंख वाले प्रौढ़ 13 गेहूं के पौधे पर दीमक प्रकोप 14. लकड़ी पर दीमक आक्रमण 15. नयी बस्ती बनाता दीमक युगल

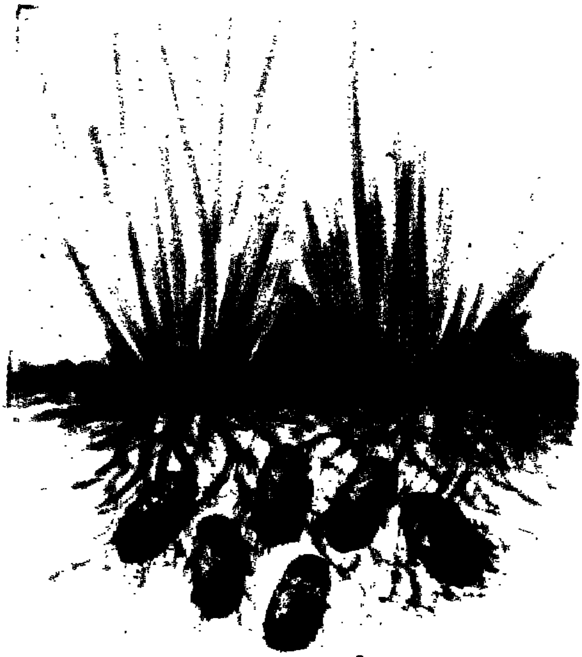
(विभिन्न स्रोतों से प्राप्त)

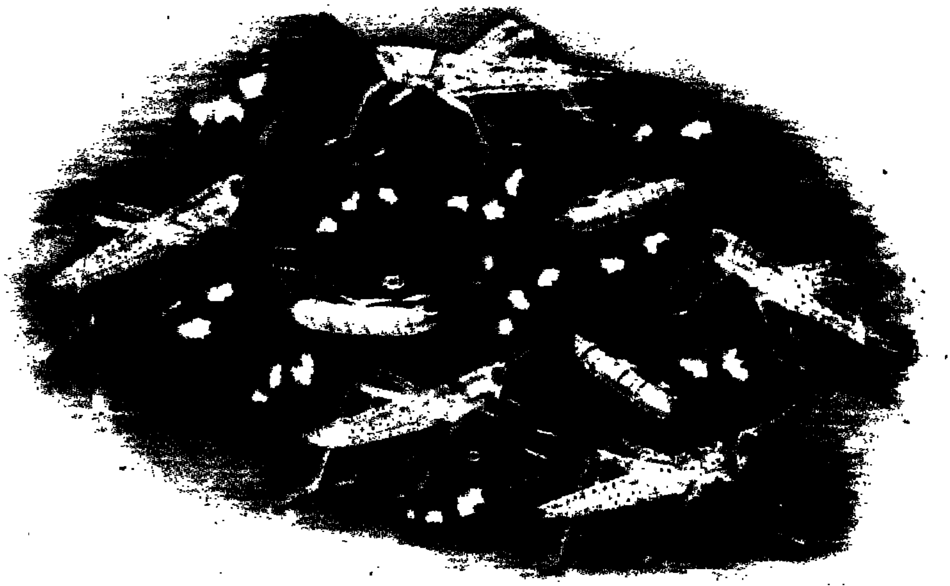


प्लेट-3 – लाल रोमिल सूंडी

1. और 2. लार्वा 3. प्यूपा 4. और 5. पतंगे

(सन साउथ इंडियन इंसैक्ट्स, प्लेट 17)





प्लेट-4—फड़का टिड्डा

(क) घास की जड़ों में फंसा अंडों का समूह

(ख) निकास छिद्र के चारों और कृमि रूप लार्वा ; निकला हुआ आवरण (केंचुली) और शिशु निम्फ

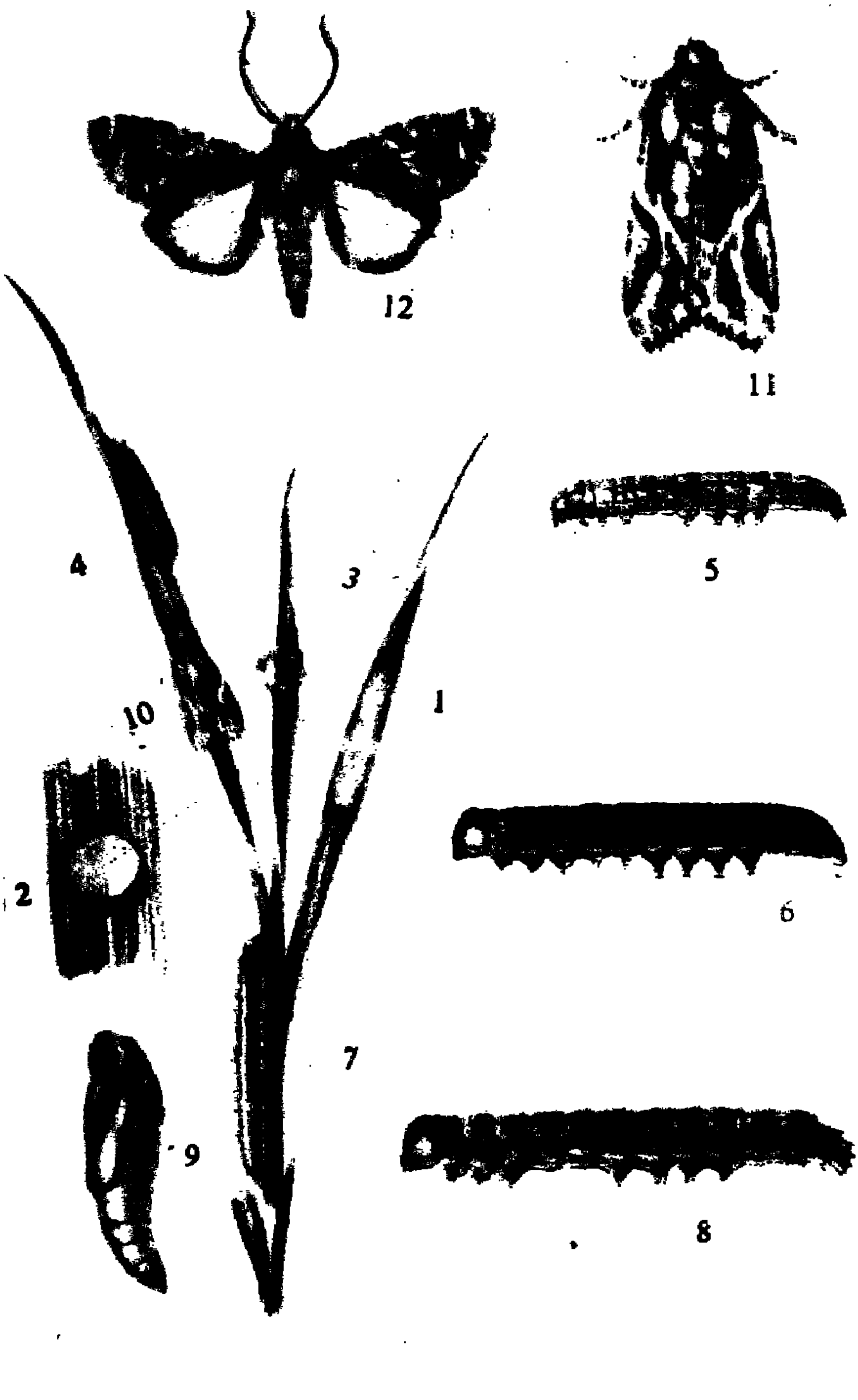
(भा.कृ.अनु.सं.-*फड़का ग्रासहॉपर एंड इट्स कंट्रोल* पर बुलेटिन - एस. प्रधान और के. एम. पेसवाणी)



प्लेट-5—धान तना बेधक

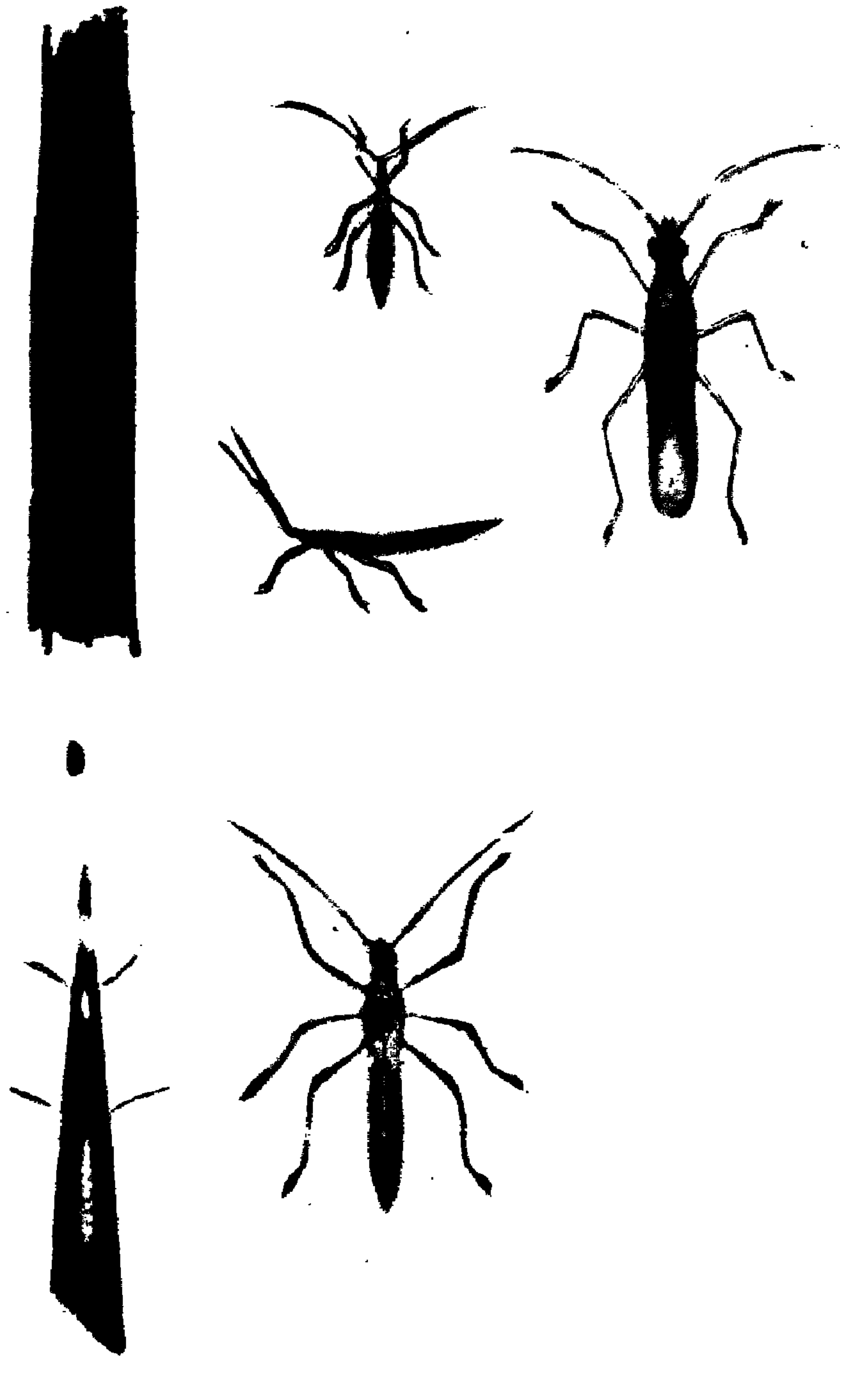
1. और 2. अंडों का समूह 3. सूंडी 4. प्यूपा 5. तने में कृमिकोष 6. और 7. मादा पतंगा 8. नर पतंगा

(*तृतीय कीट विज्ञान बैठक की कार्रवाई*, पृ. 383)



प्लेट-6—झुंड सूंडी

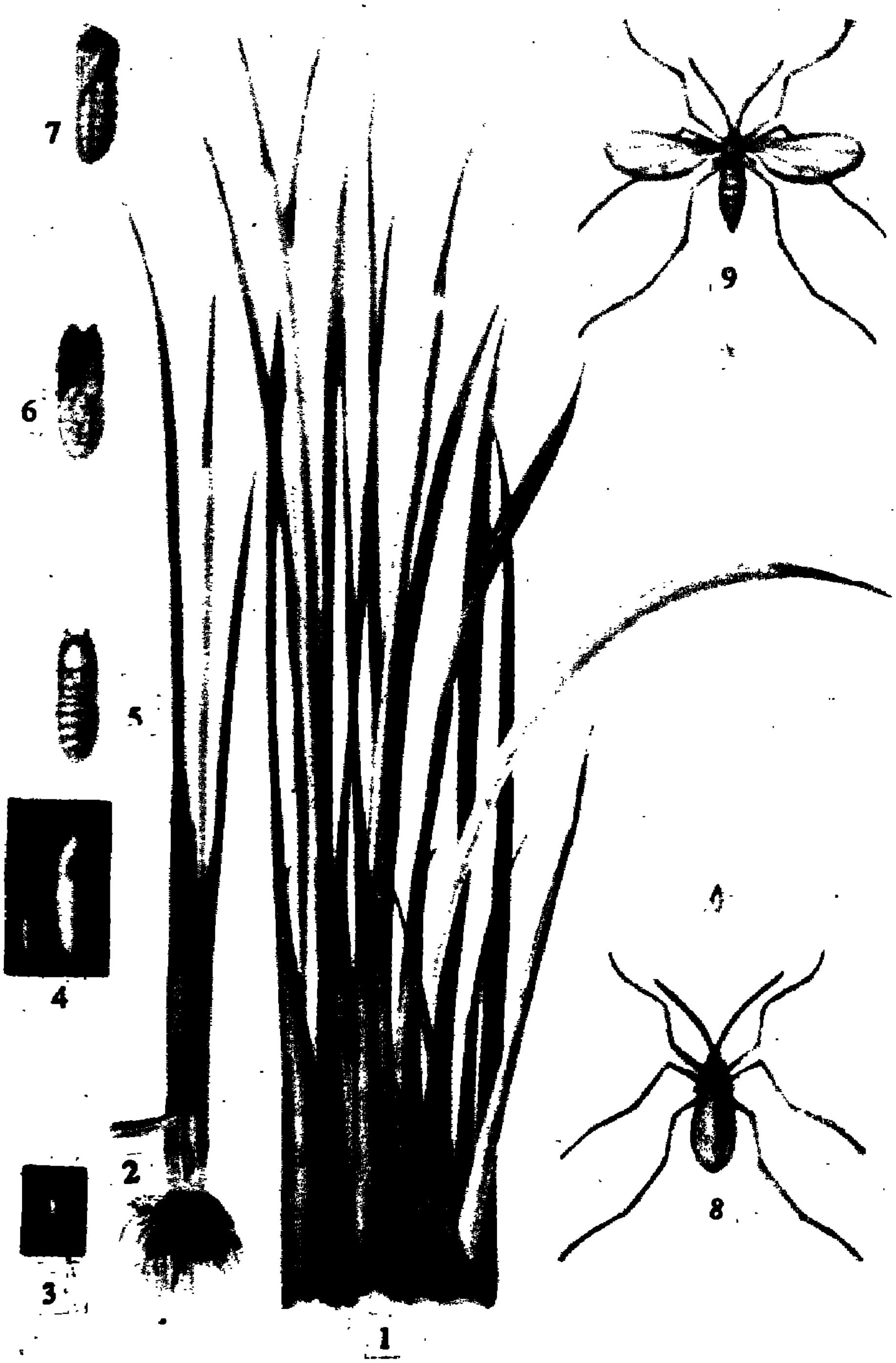
1. धान के पत्ते पर अंडे 2. एक अंडे का बड़ा किया गया रूप 3. विशेष मुद्रा में शिशु लार्वा
4-8. लार्वा के विकास की विविध अवस्थाएं 9. प्यूपा 10-12. पतंगे
(*सम साउथ इंडियन इंसैक्ट्स,* पृष्ठ 378)



प्लेट-7—गंधी बग

दायीं ओर का चित्र प्रौढ़ बग का है। मध्य में निम्फ अवस्था के चित्र हैं। बायीं ओर ऊपर धान की पत्ती पर दिये गये अंडे और नीचे धान की पत्ती पर निम्फ हैं।

(*अनु. लेख, कृषि विभाग*, खंड 2, पृष्ठ 1)



प्लेट-8—धान गाल मक्खी

1. चावल के पौधों का झुंड जिनमें से कुछ प्रभावित हैं 2. प्रभावित पौधे पर प्यूपा अपनी प्राकृतिक स्थिति में 3. अंडा (बड़ा किया चित्र) 4. पूर्ण विकसित मैगट (कीड़ा) 5-7. प्यूपा के विभिन्न चित्र 8-9. बैठी और उड़ती प्रौढ़ मक्खी

(*तृतीय कीट विज्ञान बैठक की कार्रवाई*, पृष्ठ 371)

है। इसलिए ऐसे क्षेत्रों में जहां हर साल कुतरा का प्रकोप होता है प्रकाश पिंजड़े को किसान एक साधारण उपकरण के रूप में अवश्य रखें, जैसे वे हल या बिजाई यंत्र रखते हैं। प्रकाश पिंजड़ों का रख रखाव अन्य पौध संरक्षक उपकरणों जैसे डस्टर या स्प्रेयर की तरह उपयुक्त पौध संरक्षक केंद्रों पर किया जा सकता है।

(ख) इस पीड़क के अंडों के समूह बहुत बड़े होते हैं और जिन हरे पत्तों पर ये दिये जाते हैं उन पर स्पष्ट रूप में दिखाई देते हैं। इसलिए भारतीय संदर्भ में इस पीड़क के अंडों के समूहों को नियमित रूप से एकत्र करना इसके नियंत्रण का प्रभावी उपाय है। कीट विज्ञान की दृष्टि से इस विधि की व्यावहारिकता के बारे में दो राय नहीं हैं। लेकिन इसकी सफलता इस बात पर निर्भर है कि इसका आयोजन किस दक्षता के साथ किया जाता है। इसके लिए स्कूली बच्चों की टुकड़ियों को प्रशिक्षण दिया जा सकता है। उन्हें एकत्र अंडों के समूहों की संख्या के हिसाब से भुगतान किया जा सकता है। चूंकि अंडे की उष्मायन अवधि चार दिन की होती हैं, इसलिए इसका आयोजन इस प्रकार से किया जाय कि चार दिनों में सारा क्षेत्र अंडों से मुक्त हो जाय। यह तब तक जारी रखा जा सकता है, जब तक अंडे देना जारी रहे। यह स्पष्ट है कि यदि कुतरा अभियान का एकमात्र यह कार्यक्रम उचित तरीके से लागू हो जाय तो अन्य किसी उपाय की आवश्यकता नहीं रहेगी। आवश्यक यही है कि किसान और पौध सुरक्षा कर्मचारी दोनों ही इस कार्य को गंभीरता से सुनियोजित रूप में करें। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जहां प्रकाश पिंजड़े लगाये गये हैं, उसके आसपास के क्षेत्र में अंडों के समूहों की संख्या अधिक हो सकती है, इसलिए ऐसे क्षेत्रों से अंडों के समूह एकत्र करते समय विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(ग) यदि किसी कारणवश अंडों के समूह एकत्र करने के सफल अभियान न चलाये जा सकें तो वहां यथाशीघ्र रासायनिक नियंत्रण अभियान चलाने चाहिए। यह अभियान अंडे उत्पन्न होने के बाद शीघ्र से शीघ्र और कम से कम इसके 10 से 15 दिनों में चलाना चाहिए, जब लार्वा स्थान छोड़कर जाने वाले हों। जितनी देर से रासायनिक नियंत्रण किया जायेगा, उसका प्रभाव उतना ही कम होता जायेगा। इस अभियान को दुहराने की आवश्यकता प्रयोग किये गये कीटनाशक और मिट्टी से निकले पतंगों के क्रम पर निर्भर है। जिसका प्रकाश पिंजड़े में पकड़े गये पतंगों से पता चलता है।

(घ) ऐसे मामलों में जब कुतरा नियंत्रण अभियान चलाना कठिन हो, और कुतरा सूंडियां बड़ी होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने लगी हों, तब उनके जाने के स्थान की भली प्रकार निगरानी रखनी चाहिए और यह पहचान करनी चाहिए कि प्यूपा बनने के लिए उन्होंने किस स्थान में प्रवेश किया है। जब इनका वहां से निकलने का समय नजदीक हो, तब ऐसी जगहों पर अच्छे कीटनाशक रसायनों का छिड़काव करना चाहिए ताकि जब पतंगे वहां से निकलें और उड़ने से पहले 10-15 मिनट तक जमीन पर विश्राम करें, तो जहरीली

दवा के संपर्क में आकर नष्ट हो जायें। यहां यह भी ध्यान रखा जाय कि पूर्ण विकसित लार्वा पेड़ों की छाया में, हल्की नम मृदाओं जैसे बांध के पास और मेड़ों के आसपास, जहां जुताई नहीं होती, बसेरा करते हैं। इनके नियंत्रण के उपाय करते समय इनकी ऐसी आदतों का लाभ उठाना चाहिए।

फड़का टिड्डा

(प्लेट-4)

फड़का पीड़क कीट छोटे सींगों वाले टिड्डों के कुल का है। भारत के किसान इस कुल से खूब परिचित हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि उनकी फसल को किसी न किसी टिड्डे द्वारा नुकसान पहुंचाया जाता रहा है। यह इस बात से भी प्रमाणित है कि भारत की कई भाषाओं में इसके मिलते-जुलते नाम हैं। तमिल में इसे 'विट्टिल', तेलुगु में 'मिद्था', सिंधी और पंजाबी में 'टिड', मलयालम में 'पुलपोंडु', **ओड़िआ** में 'झिटिका', कन्नड़ में 'जिट्टी', मराठी में 'नाकतोड़' और हिंदी में 'फड़का' आदि कहते हैं। ये सभी नाम किसी एक जाति के न होकर विभिन्न जातियों के हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं। टिड्डों की जिस जाति को फड़का कहा गया है, उसका वैज्ञानिक नाम *हायरोग्लाइफस नीग्रोरेप्लेटस* बोल. है। यहां उसी के नियंत्रण पर चर्चा की गयी है।

भारत में टिड्डों की कई जातियां मिलती हैं, जिनमें सबसे भयावह मरुस्थली टिड्डी भी है जो इसी टिड्डा कुल की सदस्य है। टिड्डी के अलावा चार और जातियां हैं जो भारत में कृषि फसलों के लिए गंभीर पीड़क हैं। ये हैं चावल टिड्डा[1], धान का एक भयंकर पीड़क; पंखहीन अथवा दक्षिण टिड्डा[2], और फड़का टिड्डा[3] ये दोनों मुख्यतः मोटे अनाजों की फसलों को क्षति पहुंचाते हैं और भूतल टिड्डा[4] जो कपास, दलहन और मोटे अनाजों की फसलों को नुकसान पहुंचाता है।

भारत में टिड्डों की विभिन्न जातियों द्वारा विभिन्न फसलों को कितनी क्षति पहुंचाई जाती है, उसके आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार टिड्डों की विभिन्न जातियों के सापेक्षिक आर्थिक महत्व की स्थिति भ्रम पूर्ण है। यह संभव है कि यदि दीर्घावधि मूल्यांकन किया जाय तो टिड्डों द्वारा पहुंचाया गया नुकसान टिड्डी की अपेक्षा अधिक हो। टिड्डी जिस प्रकार बहुत बड़ी संख्या में अचानक आक्रमण करती है और उसकी उपस्थिति भयावह लगती

---

1. *हायरोग्लाइफस बनियान* फैब्रिसियस (*Hieroglyphus banian* Fabricius)
2. *कोलेमानिया स्फेनीरिऑइडीज़* बोलिवर (*Colemania sphenaeiodies* Boliver)
3. *हायरोग्लाइफस नीग्रोरेप्लेटस* बोलिवर (*Hieroglyphus nigrorepletus* Boliver)
4. *क्रोटोगोनस* स्पी. (*Chrotogonus* spp.)

है, उससे फसलों को उसके द्वारा पहुंचाई गयी क्षति पर सबका ध्यान केंद्रित हो जाता है जबकि सामान्य टिड्डी दल हर वर्ष, हर समय, हर कहीं हानि करता रहता है। उनकी उपस्थिति विभिन्न घनत्वों में होती है। अंडों से निकलने के तुरंत बाद ये फसल को खाना आरंभ करते हैं और प्रौढ़ होने तक क्षति पहुंचाते रहते हैं। किसान अक्सर इनके बारे में यह मान बैठते हैं कि इन पीड़कों से छुटकारा पाना असंभव है और इनके द्वारा किये गये नुकसान को तो भुगतना ही पड़ेगा। इसी मनोवैज्ञानिक प्रवृति के कारण टिड्डों से होने वाली भारी हानि के प्रति हमारा ध्यान उतना नहीं गया, जितना जाना चाहिए था।

फड़का टिड्डा के प्रकोप को आसानी से पहचाना जा सकता है। पहले ये पत्तों को किनारों से खाना आरंभ करते हैं और उन्हें नुकसान पहुंचाते हैं। दूसरे, यदि पौधों को हिलाया जाय तो ये आसानी से देखे जा सकते हैं। निम्फ और प्रौढ़ दोनों समान प्रकार का नुकसान पहुंचाते हैं। विनाश की आरंभिक अवस्था में फसल को होने वाली क्षति को देखना कठिन होता है परंतु बड़ी उम्र के निम्फ फसलों को बहुत शीघ्रता से खाते हैं। फसल को सर्वाधिक हानि प्रौढ़ अवस्था में पहुंचती है, क्योंकि यह अवस्था दो माह तक चलती है। एक प्रौढ़ टिड्डा निम्फ विकास के छठे-सातवें चरण से 4 से 7 गुना तक आहार लेता है। पौधे का भक्षण इतना प्रबल होता है कि उदाहरण के लिए मक्का की फसल में बहुत-से पौधे मात्र ठूंठ रह जाते हैं। पौधों की बढ़वार रुक जाती है, जो पौधा 2-2½ मीटर लंबा होना चाहिए, वह कठिनाई से एक मीटर बढ़ पाता है और तना भी पतला रह जाता है। भारी प्रकोप की अवस्था में अधिकतर पौधों में दाने नहीं भरते।

पत्ते खाकर तो ये उसे सीधा नुकसान पहुंचाते ही हैं साथ ही बचे-खुचे भागों में ये मल त्याग देते हैं, जो सड़ जाता है और उस पर फफूंद पैदा हो जाती है। इस प्रकार अधिसंख्य पौधे पशुओं के खाने योग्य भी नहीं रहते। एक अनुमान के अनुसार अपने जीवन काल में टिड्डा चारे के लिए उगाई गयी मक्का की फसल के 42 ग्राम (हरित भार) हरे पत्ते खा जाता है। यदि मक्का का चारा उत्पादन 27,500 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर और इन कीटों की संख्या दस प्रति वर्ग मीटर मानी जाये तो क्षति 18 प्रतिशत बैठती है।

फड़का टिड्डा ज्वार, बाजरा और मक्का की फसलों का गंभीर पीड़क है। समय समय पर गन्ना और धान को भी इसके द्वारा हानि पहुंचाये जाने के समाचार हैं। इसके अतिरिक्त फड़का टिड्डा पुठकंडा[1], डाब[2], मोठ[3] और नेपियर घास[4] की फसल का भी भक्षण करता है।

फड़का बारानी क्षेत्रों का मुख्य पीड़क है। यह विश्वास है कि अजमेर-मारवाड़

1. *डेक्टिलोक्टेनियम* ईजिप्शियम (*Dactyloctenium* aegyptium)
2. *वर्नोनिया* स्पी. (*Vernonia* spp.)
3. *ब्रेकियेरिया* स्पी. (*Brachiaria* spp.)
4. *पैनिसीटम* परप्यूरियम (*Pennisetum* purpureum)

(राजस्थान) इसका स्थायी आवास क्षेत्र है। किशनगढ़, जोधपुर, उदयपुर और शाहपुर राजस्थान के अन्य क्षेत्र हैं, जहां इसका प्रवास माना जाता है। राजस्थान के अतिरिक्त महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार और दिल्ली में भी इसकी उपस्थिति मिली है।

अंडे सितंबर-अक्तूबर के महीनों में भूमि में दिए जाते हैं और वे 8-9 महीने निष्क्रिय बने रहते हैं। जब जून-जुलाई में मानसून की वर्षा होती है, तब अंडों में विकास शुरू होता है। अंडे से बाहर निकलने में 10 से 14 दिन का समय लगता है और उन पर हल्की-सी झिल्ली का आवरण चढ़ा रहता है। जैसे ही कृमिरूप लार्वा रेंगते हुए जमीन से बाहर आते हैं, यह झिल्ली उतर जाती है।

जमीन से बाहर आने और झिल्ली उतारने के बाद ये कृमि जिन्हें अब निम्फ कहा जाने लगता है, खाना आरंभ कर देते हैं और बढ़ने लगते हैं। निम्फ अवस्था अगस्त के अंत अथवा सितंबर के आरंभ तक रहती है और तब यह कीट प्रौढ़ अवस्था में आता है। निम्फ अवस्था में यह 6 या 7 बार अपनी केंचुली उतारता है। प्रौढ़ होने पर 7 से 20 दिन (औसतन 11 दिन) बाद इसमें यौन परिपक्वता आती है और प्रथम समागम के लगभग एक सप्ताह बाद यह पहला अंडों का समूह देता है। प्रौढ़ अवस्था दो माह तक रहती है जिसके दौरान कीट समागम करते हैं, अंडे देते हैं और मर जाते हैं। इस प्रकार वर्ष में इस कीट की एक ही पीढ़ी रहती है।

इस कीट की एक मुख्य विशेषता यह है कि यह अपने अंडे फसल वाले खेतों के आसपास गैर फसल वाली भूमि में देता है।

फसल वाले खेतों के बीच से मेड़ों के साथ साथ या मेड़ों पर तथा खेत के अंदर ऊंचे कूंडों पर अंडे देता है। अंडे जमीन में 5-12 सें.मी. गहराई पर मेड़ों पर उगी विविध प्रकार की झाड़ियों और वनस्पति की जड़ों के बीच दिये जाते हैं। बहुत कम प्रतिशत मात्रा में खेत में अंडों के समूह दिये जाते हैं। अंडे देने की यह विशिष्टता इस पीड़क के बचे रहने के लिए बहुत उपयोगी है, क्योंकि ऐसी सुरक्षित जमीन जो साधारणतया जोती नहीं जाती, पर अंडे देकर यह अपनी संतति को बचाये रखता है। इनके नियंत्रण की दृष्टि से भी यह स्वभाव महत्वपूर्ण है, जैसा कि आगे विश्लेषण किया जायेगा। यह भी देखा गया है कि यदि बाड़ होती है तो यह उसके नीचे की जमीन में भी अंडे देता है। झाड़ियों या बाड़ के पौधों को उखाड़ने से देखा जा सकता है कि द्वितीयक जड़ों में इनके अंडा समूह लिपटे रहते हैं। यह देखा गया है कि एक झाड़ी की जड़ से ऐसे 6 से 10 तक अंडा समूह एकत्र किये जा सकते हैं। अंडे देने के समय इनकी झुंड में रहने की प्रवृति का आभास होता है। इसलिए एक ही मेड़ की पट्टी से काफी संख्या में अंडे एकत्र किये जा सकते हैं और उसी के साथ लगने वाले दूसरे हिस्से एकदम अंडाविहीन भी हो सकते हैं, जब कि

वहां ऐसी झाड़ियां लगी हो सकती हैं।

उपयुक्त स्थान चुनने के बाद मादा टिड्डा अपने विशेष अंग, अंड निक्षेपक, की सहायता से मिट्टी में बिल खोदती है। यह अंग इसके उदर के अंत में गुदा छोर पर स्थित होता है। इस बिल में यह अपने उदर को प्रविष्ट कराती है जो इस समय काफी बड़ा हो चुका होता है और इसीलिए यह जमीन में कई सें.मी. अंदर तक अंडे देती है। एक बार अंडे देना शुरू करने पर मादा को यदि छेड़ा जाय तब भी वह अपने स्थान से नहीं हटती और न ही उदर को जमीन से निकालती है। इस स्थिति में कोई भी उन्हें पकड़ सकता है। अंडे देने से पूर्व मादा अपनी ग्रंथियों से एक विशेष प्रकार का झागदार पदार्थ निकालती है, जिसमें एक एक अंडा और अंत में एक समय पर एक स्थान पर दिये गये सभी अंडे लिपट जाते हैं। अंडे देने के बाद मादा इन अंडों पर एक दूसरे प्रकार का पदार्थ बहाती है और अपना उदर बिल से बाहर निकालकर उस पर ढीली मिट्टी डालती है। मादा द्वारा छोड़े गये झागदार पदार्थ से अंडे एक दूसरे से चिपक जाते हैं और मिट्टी के साथ उनका मजबूत बंधन बन जाता है, जो आवरण का काम करता है। दूसरे प्रकार के पदार्थ से वह बिल पर मानो हल्की-सी डाट लगाती है। यह पदार्थ शीघ्र ही सूख जाता है और ऊन जैसा भूरा तत्व बन जाता है। अंडा समूह को बिल से बाहर निकालने पर यह तत्व अलग हो जाता है। एक मादा लगभग 2 से 6 अंडा समूह देती है और एक अंडा समूह में औसतन 40 अंडे होते हैं। अंडा समूह के चारों ओर मिट्टी की परत होती है। अंडा समूह का आकार लंबवत होता है और मध्य से थोड़ा झुका रहता है। ऊपरी छोर कुछ अवतल होता है। अंडों की बाहरी परत कठोर होती है, जिससे अंदर से अंडे सुरक्षित रहते हैं।

अंडों से निकलने के बाद शिशु कृमिरूप लार्वा पेट के बल रेंगते हुए मिट्टी के बाहर निकलते हैं। पहला कृमिरूप लार्वा सूई की नोंक जितना छेद बनाकर बाहर निकलता है। इसके बाद उस अंडा समूह के शेष लार्वा उसी छेद से बाहर निकलते हैं। बाहर आने पर लार्वा जमीन पर पीठ के बल लेटा रहता है और अपनी झिल्ली को हटाता है। यह क्रिया कोई आधा मिनट लेती है। ऐसी झिल्लियां उन बिलों के आसपास देखी जा सकती हैं, जिनमें से ये बाहर निकलते हैं। यदि सावधानी से निगरानी रखी जाय तो प्रथम तो ऐसे स्थानों का पता लगाया जा सकता है, जहां ये अंडे थे और दूसरे अंडा समूहों की संख्या और प्रकट होने वाले कीटों की संख्या का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है अंडे सितंबर-अक्तूबर में दिये जाते हैं और वे मानसून से पूर्व तक निष्क्रिय रहते हैं। अंडों में विकास क्रिया मानसून शुरू होने पर होती है और जून-जुलाई में अंडजोत्पत्ति आरंभ हो जाती है। अगर कभी मानसून अगस्त तक न आये तो ये अंडे निष्क्रिय ही रहते हैं और फिर ये उसके अगले साल मानसून आने पर ही सक्रिय होते हैं। अप्रैल-मई में होने वाली सविराम वर्षा का इन पर प्रभाव नहीं पड़ता

और अंडजोत्पत्ति आरंभ नहीं होती। बरसात का वितरण भी पर्याप्त होना चाहिए। मौसम के आरंभ में दीर्घकाल तक सूखा पड़ने से इनकी उत्पत्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

टिड्डा प्रभावित क्षेत्र में यदि किसी वर्ष मानसून की वर्षा नहीं होती तो उस वर्ष इस पीड़क की उपस्थिति कम ही नजर आती है। ऐसे मामलों में यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इस पीड़क का सफाया हो गया है, क्योंकि इसके कुछ अंडे तीन वर्ष तक रह सकते हैं। यदि दो वर्ष तक लगातार वर्षा न हो, तब भी 70 प्रतिशत अंडे जीवित रहते हैं और तीन वर्ष तक न हो तो 34 प्रतिशत अंडों में जीवन रह जाता है। इस प्रकार ये अंडे दो वर्ष तक निष्क्रिय रहने पर भी तीसरे वर्ष यदि मौसम अनुकूल रहे तो फसल पर प्रकोप दिखा सकते हैं।

अंडे अक्सर मेड़ों पर दिये जाते हैं, इसलिए यदि इन मेड़ों को दुबारा बनाया जाय अथवा उन पर मिट्टी चढ़ा दी जाय तो जिन स्थानों पर अंडे दिए गए होते हैं, वे छिन्न-भिन्न हो सकते हैं। परीक्षणों से प्रमाणित हुआ है कि इस प्रकार की मिट्टियों में से लार्वा बाहर नहीं निकल पाते और उसी में दफन हो जाते हैं। कुछ इधर उधर बच रहे अंडा समूहों में से निकल कर, बड़ी मुश्किल से, निम्फ जमीन के ऊपर आते हैं। इसलिए इस प्रकार भौतिक विधियों से इन पर सफल नियंत्रण के उपाय किये जा सकते हैं।

सामान्य तौर पर यह कीट जमीन में 5 से 15 सें.मी. की गहराई पर अंडे देता है और इसके निम्फ इतनी निचाई से ऊपर आते हैं क्योंकि अंडे देते समय मादा इतना गहरा बिल बनाती है और अंडे देकर उसे ढीली मिट्टी से भर देती है। खेती के कार्यों से जमीन की स्थिति बदलती रहती है। परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि 5 सें.मी. से अधिक गहराई पर स्थित अंडों से निम्फ उस स्थिति में बाहर नहीं निकल पाते यदि मिट्टी को सुदृढ़ कर दिया जाय। इसलिए जमीन पर कृषि कार्यों के द्वारा न केवल अंडा समूहों की सामान्य स्थिति विक्षुब्ध हो जाती है वरन उनके बिल मिट्टी से भर जाते हैं, जिससे निम्फ जमीन से बाहर नहीं निकल पाते।

फड़का टिड्डा के जीवनवृत और विशिष्ट प्रकृति के अध्ययन से इसके नियंत्रण के युक्ति संगत प्रयासों पर पहुंचा जा सकता है जिसको अपनाकर इसका विनाश किया जा सकता है और फसल की होने वाली हानि को कम किया जा सकता है। आगे कुछ ऐसे उपाय दिये जा रहे है। जिनमें से कोई एक इतना सफल हो सकता है कि और उपायों की आवश्यकता ही न हो, इनकी सफलता प्रकोप के स्वरूप और व्यापकता तथा उपाय की सघनता पर निर्भर है। इसलिए पूर्ण सफलता के लिए एक एक कर सभी उपाय अपनाने चाहिए।

(1) जैसा कि पहले बताया जा चुका है अधिसंख्यक अंडे अकृष्ट भूमि में दिये जाते हैं अर्थात उन भूमियों में जहां फसलें नहीं ली जातीं। बांधों की भूमि और खेतों की मेड़ें भी इसमें

शामिल हैं। इस विशिष्टता के कारण अकृष्ट भूमि कम से कम रखी जानी चाहिए। कृषि योग्य परती भूमि पर खेती करने से फड़का कीट द्वारा पैदा की गयी समस्या में कमी होगी। खेत में व्यर्थ पड़ी बांबियां या ऊंची भूमि और कूंडों को समतल करने के प्रयास करने चाहिए।

(2) यह निःसंदेह प्रमाणित हो चुका है कि भूमि की यांत्रिक उलट पलट से भी उन स्थानों पर इसके प्रकोप को काफी कम किया जा सकता है, जहां यह अक्सर अंडे देता है। इसलिए यह सलाह दी जाती है कि मानसून से पहले ऐसे स्थानों यानी पेड़ों और बांधों की मिट्टियों को 15 सें.मी. गहराई तक खोद दिया जाय और सुधार दिया जाय।

(3) मानूसन आरंभ होने के लगभग एक सप्ताह बाद निम्फ मिट्टी से बाहर आना शुरू करते हैं। इसलिए इस एक सप्ताह की अवधि का उपयोग अंडों से ग्रसित भूमि पर कीटनाशक छिड़कने के लिए करना चाहिए ताकि जैसे ही निम्फ बाहर आयें, इसके संपर्क में आकर समाप्त हो जायें। बी.एच.सी. (10 प्रतिशत) और एल्ड्रिन (3 प्रतिशत) चूर्ण प्रभावी पाये गये हैं।

(4) निम्फ जिस जगह प्रकट होते हैं, दो सप्ताह तक वहीं रहते हैं। अतः इस अवधि में उन पर सीधे कीटनाशक डालने चाहिए। फसल वाले खेतों में इसका प्रयोग पूरे खेत में न करके केवल मेड़ों के साथ साथ ही करना चाहिए, क्योंकि निम्फ यहां एकत्र होते हैं और इस प्रकार बचाए गए कीटनाशक चूर्ण का उपयोग कृषि योग्य भूमि के पास अकृष्ट भूमि पर करना चाहिए, क्योंकि वहां इस कीट के प्रकट होने के काफी अवसर होते हैं। इस कीट के नियंत्रण के लिए यह समय बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस समय यह पीड़क सीमित स्थान तक ही रहता है और दूसरे इस अवस्था पर बाद की अवस्थाओं की तुलना में कीटनाशक दवाओं का प्रभाव कहीं अधिक होता है।

(5) इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि फड़का टिड्डों का नियंत्रण आरंभिक अवस्था में अधिक सुगम और सस्ता होता है बजाय बाद की अवस्थाओं में, जब वे कृष्ट भूमि में आ जाते हैं। इस विशिष्ट बात का ध्यान रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि फड़का टिड्डे के नियंत्रण का आयोजन सहकारिता के आधार पर किया जाय विशेषकर उन गांवों में जहां सिंचाई के साधन नहीं हैं।

(6) यदि उपर्युक्त उपायों का उचित प्रयोग किया जाय तो कृष्ट भूमि में कीटनाशक इस्तेमाल करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि फिर भी फसल पर प्रकोप हो जाय और उस पर कीटनाशकों का प्रयोग करना पड़े तो यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पौधों के सभी हरे पत्ते, विशेषकर आरंभिक पत्तियां पूरी तरह कीटनाशक से ढक गयी हैं। यह इसलिए जरूरी है क्योंकि यह पीड़क आरंभिक पत्तियों के घेरे में और पत्तियों के नीचे की ओर रहता है।

2

धान के पीड़क

धान की फसल को हानि पहुंचाने वाले संभावित पीड़क लगभग तीन दर्जन हैं, जिनमें से पांच सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं (क) तना बेधक, (ख) झुंड सूंडी, (ग) चावल बग, (घ) गाल मक्खी और (ड) भूरा पादप फुदका। चावल टिड्डा भी फसल के लिए घातक है लेकिन उसकी चर्चा पिछले अध्याय में विविधभक्षी पीड़क के उदाहरण के रूप में की जा चुकी है इसलिए उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

तना बेधक

(प्लेट-5)

पतंगे जैसी आधा दर्जन जातियों के लार्वा धान के पौधे के ऊतकों में छेद करते हैं। इनमें एक ऐसा है जो भारत में प्रमुख हानि पहुंचाता है। इसका वैज्ञानिक नाम है *ट्रिपोराइजा इंसर्टुलास* वाकर[1]। एक दिलचस्प तथ्य इसके बारे में यह है कि अन्य पतंगीय लार्वाओं की तरह यह विविधभक्षी नहीं है और चावल के पौधे के अलावा किसी अन्य पौधे को खाते हुए इसे अभी तक नहीं देखा गया है। यह भारत के सभी धान उत्पादक क्षेत्रों में तथा विश्व के कई क्षेत्रों में पाया जाता है। परंतु वर्ष में इसकी कितनी पीढ़ियां होती हैं और इसके द्वारा पहुंचाई गयी हानि की व्यापकता भिन्न भिन्न कृषि जलवायवीय परिस्थितियों के अनुसार अलग अलग है।

प्रौढ़ अवस्था में यह पतंगा होता है जिसके पंख गेरुए पीले रंग के होते हैं। मादाओं में प्रत्येक पंख पर एक बड़ा काला धब्बा होता है जो नरों में नहीं दिखता है। अंडे समूहों में दिये जाते हैं और वे मादा पतंगे के गुदा गुच्छ से निकले महुए रंग के बालों से ढके रहते हैं। इन अंडा समूहों को असानी से पहचाना और एकत्र किया जा सकता है। अंडों से निकलने के बाद प्रथम अवस्था के लार्वा पौधे पर ऊपर की ओर रेंगते अथवा एक रेशमी तंतु के सहारे उसके पत्तों से लटक जाते हैं। इसके शीघ्र बाद ये पौधे के तने में छेद बनाकर

---

1. *Tryporyza incertulas* Walker

उसके ऊतकों में प्रवेश करते हैं और अपनी लार्वा तथा प्यूपा की शेष अवस्था वहीं बिताते हैं। लार्वा तने से भोजन लेता है और दो सें.मी. तक लंबा हो जाता है। पूर्ण विकसित अवस्था में इसके शरीर की सतह चिकनी होती है तथा रंग पीलापन लिए हुए कई बार हरी-सी आभा देता है। इसका सिर नारंगी रंग का होता है। प्यूपा अवस्था से पूर्व यह एक और छेद बनाता है जिसमें से पतंगा बाहर निकलता है। लार्वा द्वारा अपनी दो पीढ़ी आगे तक की योजना बनाने का यह दिलचस्प उदाहरण है। अर्थात पहले अपनी एकदम अगली अवस्था प्यूपा और बाद में तीसरी अवस्था—पतंगे की सुविधा का प्रबंध करना। लार्वा अपने बिल के अंदर एक रेशमी बिस्तर-सा बिछाता है जहां उसे अपनी प्यूपा अवस्था में रहना होगा। वह मंदकाल में जाने से पहले आरामदायक रेशमी कृमिकोष बनाता है। प्यूपा अवस्था के समाप्त होने पर, जिसकी अवधि विद्यमान तापमान पर निर्भर होती है, पतंगा बाहर निकलता है और अपनी अगली पीढ़ी आरंभ करता है। पतंगा प्रकाश की ओर आकर्षित होता है।

धान की फसल को यह कितनी हानि पहुंचाता है, इसके बारे में विवरण यह है कि यदि धान रोपाई के आरंभ में इसका प्रकोप हो तो सभी पौध मर जाती हैं। बाद में जिस तरुशाखा पर इसका प्रकोप होता है वह लार्वा द्वारा तनों को अंदर से खा जाने से नष्ट हो जाती है और पीली पड़ जाती है, जिसे मृत केंद्र (डेड हार्ट) कहते हैं। इससे भी बाद की अवस्था में प्रकोप होने पर बालियां सफेद हो जाती हैं और दाना मात्र तिनका बन कर रह जाता है।

उपर्युक्त जीवनवृत से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पीड़क पर आक्रमण करने की सबसे उपयुक्त अवस्था अंडे वाली है, जब उन्हें एकत्र करके समाप्त किया जा सकता है। इसके बाद तने में प्रवेश करने से पहले लार्वा को दवाओं से नष्ट किया जा सकता है और तत्पश्चात पतंगा अवस्था है, जब वे प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं। लार्वा जब तने के अंदर होता है, तब भी विषाक्त दवाओं से उसे मारने के प्रयास किये जा सकते हैं। लेकिन चूंकि केवल यह ही धान का एकमात्र पीड़क नहीं है, इसलिए धान के पीड़कों के पूर्ण नियंत्रण की व्यूह रचना के बारे में आगे चर्चा की जायेगी।

झुंड सूंडी

(स्पोडोप्टेरा मौरिशिया बोइसडुवाल)[1]

(प्लेट-6)

यह छिटपुट पीड़क है लेकिन जहां कहीं भी यह बड़ी संख्या में प्रकट होता है, भारी क्षति पहुंचाता है। यह भारत के तटवर्ती इलाकों का ही भयानक पीड़क नहीं है, अपितु पूर्वी

1. *Spodoptera mauritia* Boisduval

देशों और आस्ट्रेलिया तथा पश्चिमी अफ्रीका तक इसका प्रकोप मिलता है। जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, सूंडी अवस्था में ये झुंड के झुंड एक खेत से दूसरे खेत में गमन करते हैं। यह पशुओं की तरह पहले एक खेत की चराइ करता है और उसे चौपट करके सेना की तरह व्यूह बनाकर अगले खेत पर आक्रमण करता है और इस प्रकार इसका आगे बढ़ना जारी रहता है। इसलिए इस पीड़क को सैनिक-शलभ भी कहा जाता है। यह स्पष्टतः विविधभक्षी कीट है और तरह तरह की फसलों को अपना आहार बनाता है लेकिन तटवर्ती क्षेत्रों में धान की फसल मुख्यतः इसकी चपेट में आती है। वहां की जलवायु भी इसके लिए उपयुक्त है। इस प्रकार धान की फसल का यह गंभीर पीड़क है। कई बार ऐसा भी होता है कि आरंभिक अवस्था में सुंडी अकृष्ट घास वाले मैदानों में पलती रहती है जहां उसे कोई नहीं देखता और बाद में सेना की तरह अचानक फसल वाले खेतों पर आक्रमण कर देती है।

पीढ़ियों की संख्या देश के विभिन्न क्षेत्रों में अलग अलग होती है। इस प्रकार बंगाल में बोड़ों धान पर यह फरवरी-मार्च में आक्रमण करता है तो औस और अमन धान पर मई से अक्तूबर तक। ऐसी धारणा है कि यदि एक माह तक सूखा मौसम रहे और उसके पश्चात मूसलाधार वर्षा हो तो इस पीड़क के प्रकोप के लिए यह स्थिति सुविधाजनक होती है।

इस पीड़क के प्रौढ़ मध्यम आकार के नोक्टुइड हल्के भूरे पतंगे होते हैं जिनके अगले पंख सुंदर बनावट के होते हैं और इनके किनारे पर लहरदार पट्टियां होती हैं। पिछले पंख सफेद होते हैं। ये पतंगे बड़े बड़े समूहों में अंडे देते हैं तथा प्रत्येक समूह में कई सौ तक अंडे होते हैं। ये अंडा समूह मादा के महुए के से रंग के बालों से आच्छादित होते हैं तथा कृष्ट और अकृष्ट दोनों ही प्रकार की भूमियों पर हर तरह के छोटे पौधों पर मिलते हैं। पत्तों की हरी पृष्ठभूमि पर ये अंडे स्पष्ट दिखाई देते हैं। प्रचलित तापमान के अनुसार अंडों में से प्रायः एक सप्ताह के अंदर शिशु लार्वा निकल आते हैं और तुरंत सबसे नजदीक उपलब्ध पौधे खाना शुरू कर देते हैं। लार्वा अवस्था तीन-चार सप्ताह तक रहती है और प्रथम लार्वा अवस्था में इसकी लंबाई कुछ मि.मी. होती है जो कई निर्मोचनों के बाद में बढ़कर पूर्ण विकसित अवस्था में 3 से 4 सें.मी. तक हो जाती है। लार्वा पर लंबी रंगीन धारियां होती हैं जो प्रारंभ में हरी और पीली और बाद में पीलापन लिए हुए भूरी हो जाती हैं। पतंगा और सूंडी दोनों रात में सक्रिय होते हैं और दिन में अधिकतर छुपे रहते हैं। प्यूपा मिट्टी में बनता है इसलिए जब ये भूमि में अदृश्य हो जाते हैं तो किसान सोचता है कि कठिनाई समाप्त हो गयी है, लेकिन अचानक इनकी अगली पीढ़ी फिर सामने आ जाती है। प्यूपा अवस्था प्रायः 10-12 दिन रहती है, जिसके बाद नये पतंगे निकलकर अगली पीढ़ी को जन्म देते हैं।

जहां तक इस पीड़क के नियंत्रण की विधियों का संबंध है, पिछले पृष्ठों पर दिये गये इसके जीवनवृत और विशिष्टताओं के उल्लेख में यह तथ्य सामने आता है कि समूह सूंडी की क्षति से बचने के लिए इसके अंडे देने के समय की निगरानी रखनी चाहिए और अंडा समूहों को एकत्र करके उन्हें नष्ट कर देना चाहिए। इस उपाय में एक परेशानी यह है कि अंडे कृषि और गैर कृषि दोनों प्रकार की भूमियों पर मिलते हैं। इसलिए अंडों का समापन विशाल पैमाने पर सहकारी ढंग से एक समन्वित पीड़क नियंत्रण अभियान के रूप में किया जाना चाहिए। यह वैसा ही है जैसे पहले कुतरा कीट के बारे में कहा गया है। फिर भी, यदि किसी कारणवश अंडा अवस्था में इससे नहीं निपटा गया और अंडों में से लार्वा निकलने लगें तो रासायनिक दवाओं का शीघ्र प्रयोग करना चाहिए ताकि पीड़क अधिक क्षति न पहुंचा सकें। इसके लिए अच्छी कीटनाशक जहरीली दवाई जो उदर प्रभाव वाली हो जैसे कई अकार्बनिक रसायन अथवा स्पर्श और उदर दोनों प्रकार वाली हो जैसे कार्बनिक रसायन का उपयोग करना चाहिए। आरंभिक दिनों में जब अच्छी कीटनाशक दवाएं उपलब्ध नहीं थीं, तब खेत में पानी भरकर उसमें मिट्टी को तेल डाल दिया जाता था और रस्सी से फसल को हिलाया-डुलाया जाता था ताकि सूंडियां मिट्टी के तेल वाले पानी में गिरें और मर जायें। तीसरी अवस्था तब आती है, जब प्रारंभिक अवस्था में पीड़क काबू में न आया हो और वह बड़े बड़े समूहों की सेना बनाने लग गया हो। ऐसी अवस्था में इनके समूहों के विरुद्ध आर्गेनो-फास्फोरस यौगिक वाले तेज कीटनाशकों के उपयोग की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में भी यदि किसान यह देखे कि उसके कुछ खेत इस पीड़क के आक्रमण से बचे हुए हैं लेकिन आक्रमण के शिकार हो सकते हैं, तो उसे इन खेतों को बचाने के लिए उनके चारों ओर सीधे ढाल वाली नाली खोदनी चाहिए तथा उनकी उपयोगिता बढ़ाने के लिए उनमें मिट्टी का तेल मिला हुआ पानी भर देना चाहिए। यह उपाय पादप संरक्षण कर्मचारियों के लिए नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर किसानों के लिए उपयोगी है जहां बड़े पैमाने पर सहकारी प्रयास व्यावहारिक न हों।

गंधी बग

(लेप्टोकोरिसा ओरेटोरियस फेब्रिसियस)[1]

(प्लेट-7)

धान की फसल का यह सबसे गंभीर पीड़क बग है। इसका गंधी नाम गंध से पड़ा है, क्योंकि इस बग में से एक तरह की असहनीय दुर्गंध निकलती है। यद्यपि इसके आहार में कई तरह के पौधे, मोटे अनाज और जंगली घास आदि आते हैं, लेकिन यह धान की फसल

1. *Leptocorisa oratorius* Fabricius

को उस समय भारी क्षति पहुंचाता है, जब उसमें दाना बनने लगता है। चावल के दाने की दूध वाली अवस्था इसका मुख्य निशाना होता है। यह दाने का दूधिया रस पी जाता है और दाना बाली में मात्र तुष बना रह जाता है। जब इसका प्रकोप तीव्र होता है तो सारी फसल की बालियों के दाने तुष मात्र रह जाते हैं। यह पीड़क जंगली घास, अकृष्ट भूमियों और बंधों की जमीनों के बीच छितरी हुई अवस्था में काफी बड़ी संख्या में प्रजनन करता है तथा जब धान की फसल के दानों में दूध पड़ने लगता है, तब भारी संख्या में उसकी ओर आकर्षित होता है। इसलिए इसकी समस्या एकाएक प्रकट हो जाती है।

गंधी बग भारत के सभी चावल उत्पादक क्षेत्रों में और समस्त दक्षिण-पूर्व एशिया में उत्तर में चीन और जापान से लेकर दक्षिण में श्रीलंका तक व्याप्त है। यह फिलीपींस द्वीपों और आस्ट्रेलिया में भी पाया जाता है। भारत में इसका प्रकोप बिहार और उत्तर प्रदेश में बहुत अधिक है।

प्रौढ़ बग लंबा (लगभग 15 मि.मी.) पतला कीट है, जिसकी टांगें अधिक लंबी होती हैं। इसका वर्ण निदर्शन हरे और भूरे रंगों का मिश्रण है। युवावस्था में इसका रंग हरा होता है जो प्रौढ़ होने पर अधिक भूरा हो जाता है। कृष्ट एवं अकृष्ट क्षेत्रों में यह काले भूरे छोटे छोटे मणिकाओं जैसे अंडे अपने परपोषी पौधों की पत्तियों पर लंबी डोरी जैसी कतारों में देता है। प्रचलित तापमान के अनुसार अंडों में से निम्फ लगभग एक सप्ताह में निकल जाते हैं और शिशु निम्फों के शरीर में अधिकतर टांगें ही दिखाई देती हैं। शीघ्र ही वे पौधे का रस चूसना शुरू कर देते हैं और निम्फ तथा प्रौढ़ दोनों अवस्थाओं में लगातार पौधों को क्षति पहुंचाते रहते हैं। इनका पूर्ण जीवनचक्र 15 से 30 दिन तक चलता है और वर्ष में पांच पीढ़ियां पूरी हो जाती हैं।

आरंभिक दिनों में जो नियंत्रण के उपाय सुझाये गये थे, हालांकि वे कुछ दुरुह थे, लेकिन प्रभावी थे। इन उपायों के अंतर्गत इन्हें पकड़कर खत्म करना और फसल स्वच्छता आदि तरीके थे। अब आविष्कारों के फलस्वरूप ऐसे कीटनाशक रसायन बन गये हैं, जिनके छिड़काव या भुरकाव से इस पीड़क को समाप्त किया जा सकता है। कौन-सा कीटनाशक उपयोग में लायें यह मूल्य, उपलब्धता और फसल पर रह जाने वाले कीटनाशक के अवशेष पर निर्भर है। क्योंकि यह बग उड़कर एक खेत से दूसरे में पहुंच जाता है, अतः इसके नियंत्रण की सफलता मुख्यता इससे मिले हुए क्षेत्र की दीर्घता पर निर्भर करती है, जहां पर सामूहिक, सहकारी अथवा सरकारी स्तर पर नियंत्रण किया जाता है। इससे बचाव के उपाय बहुस्तर पर कृष्ट और अकृष्ट भूमियों पर उस समय करना प्रभावकारी होता है जब अकृष्ट क्षेत्रों की फसल को दूध अवस्था में पहुंचने में एक या दो हफ्ते हों तथा कृष्ट भूमियों में उस समय जब पौधों में दूध बनना आरंभ होता है।

गाल मक्खी

(ऑर्सिओलिया ओराइजी वुड-मैसन)[1]

(प्लेट-8)

अंग्रेजी में 'गाल' का अर्थ है व्रण। इस प्रकार इसके नाम से ही स्पष्ट है कि गाल मक्खी एक छोटा-सा लंबा पतला कीट है जो अपने प्रकोप से धान की फसल में लंबे नलिका जैसे व्रण कर देता है। तने के जिस स्थान पर बाली लगनी चाहिए, वहां रजत रंग के ये व्रण निकल आते हैं। इस कीट के प्रकोप से ग्रस्त फसल को रजत-प्ररोह रोग से प्रभावित फसल कहा जाता है। देश के विभिन्न भागों में इस रोग के अलग अलग नाम हैं। यह डिपटरस मक्खी होती है जिसके पंखों का विस्तार 2 मि.मी. से कम होता है। यह पश्चिम अफ्रीका, सूडान, पाकिस्तान, भारत, बांग्लादेश, श्रीलंका, दक्षिण पूर्व एशिया, दक्षिण चीन और पापुआ न्यू गिनी में व्याप्त है। भारत में यह विभिन्न गहनताओं में धान की फसल पर आक्रमण करती है। इसका मुख्य प्रकोप भीतरी तटवर्ती क्षेत्रों में होता है, जिसमें बिहार का क्षेत्र भी शामिल है।

यह मक्खी कई प्रकार की जंगली घासों में प्रजनन करती है और धान की फसल की ओर मुख्यतः दौजी अवस्था पर आक्रमण करती है। मादा मक्खी 0.5 लंबे लाल से लंबवत अंडे, अधिकतर पत्तों की निचली सतह पर आधार भाग में देती है। 3 से 5 दिन के बाद अंडे में से छोटा-सा लार्वा निकलता है और पत्तियों में से होकर नीचे की ओर रेंगता जाता है, जब तक कि केंद्रीय प्ररोह के शिखाग्र या दौजी तक न पहुंच जाय। वहां यह ऊतक में प्रवेश करता है और वृद्धि बिंदु को नष्ट कर देता है। परिणामस्वरूप सामान्य वृद्धि रुक जाती है और शायद कोशिकाओं के विदीर्ण होने से एक नलिकाकार व्रण बन जाता है। यह व्रण धीरे धीरे बढ़ता है और उस स्थान पर तने में रजत रंग का खोखला लंबा प्ररोह प्रकट होता है, जहां सामान्य पौधे पर बालियां लगती हैं।

इसी दौरान लगभग 10 दिन में लार्वा पूर्ण विकसित होकर नलिकाकार व्रण के अंदर प्यूपा बनने लगता है। प्यूपा अवस्था मात्र 3 से 5 दिन तक रहती है और उसमें से एक छिद्र द्वारा मक्खी बाहर निकलती है, जो प्यूपा अवस्था से पहले ही बना लिया जाता है। इस प्रकार पूरा जीवनचक्र लगभग तीन सप्ताह चलता है। इसका परिणाम यह होता है कि केंद्रीय प्ररोह पर आक्रमण के फलस्वरूप जो दौजियां बनीं, उन पर आक्रमण के लिए ये फिर तैयार हो जाती हैं। इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी उसी फसल पर आक्रमण जारी रखती हैं और गंभीर प्रकोप के दौरान पौधों की एक बड़ी प्रतिशत संख्या में कोई दाना पैदा

---

1. *Orseolia oryzae* Wood-Mason

नहीं होता।

गाल मक्खी की विशिष्ट जैविकी को देखते हुए कि वह अपना जीवन ज्यादातर व्रण के अंदर व्यतीत करती है, इसका नियंत्रण भी गंभीर समस्यापूर्ण है। प्रौढ़ अवस्था इसे मारने के लिए बहुत उपयुक्त है, लेकिन इसका समय निर्धारण बहुत सावधानी से करना चाहिए ताकि वह शावक के प्रकट होने के साथ हो और वह प्रकट होने की पूरी अवस्था तक प्रभावी रहे। व्रणों को एकत्र कर उन्हें नष्ट करने का तरीका भी कारगर हो सकता है यदि मौसम के आरंभ में ही व्रण प्रकट होते समय किया जाय। यह अभियान बहुत शीघ्र करना चाहिए क्योंकि जिस समय व्रण नजर आता है, तब तक कीड़ा प्यूपा अवस्था में पहुंच जाता है और यदि मक्खी प्रकट हो जाती है तो व्रण हटाने का श्रम और व्यय का कोई लाभ नहीं है। गहरा प्रभाव डालने वाले आर्गेनो-फास्फेट जैसे तेज कीटनाशक भी सिंचाई के पानी के साथ साथ दिये जा सकते हैं, लेकिन इसके लिए बहुत सावधानी की आवश्यकता है, जिससे खेत में खड़ा पानी संदूषित न हो जाय। धान की कई नयी किस्में भी विकसित की गयी हैं जो इस पीड़क की प्रतिरोधी हैं। प्रकोप वाले क्षेत्रों में इन किस्मों की बुआई को बढ़ावा देना चाहिए।

भूरा पादप फुदका

(*नीलपर्वता ल्यूजैन्स* स्टाल)[1]

अधिक उपजाऊ किस्मों के विकास के क्षेत्र में अति जोशीले अनुसंधान महाविपत्ति का कारण भी बन सकते हैं, इसका एक चिरसम्मत उदाहरण है भूरा पादप फुदका। स्थानीय पारंपरिक किस्मों के लिए भूरा पादप फुदका तुच्छ महत्व का समझा जाता था। नयी उच्च पैदावार वाली किस्मों के विमोचन के बाद भारत और अन्य उष्ण कटिबंधीय देशों के चावल उत्पादक क्षेत्रों में यह बार बार महामारी के रूप में सामने आ रहा है।

अंवेषणों से पता चला है कि अधिक दौजियों वाले बौने पौधों की किस्में, कम अंतराल, नाइट्रोजन वाले उर्वरकों का अधिक उपयोग, अच्छे जल प्रबंध और दुहरी अथवा लगातार फसल लगाना भूरा पादप फुदका की सक्रियता के बढ़ने के कारण रहे हैं। ये सभी कारण इस पीड़क की संख्या को बहुगुणित करते हैं। इसका प्रकोप जलवायवी कारकों विशेषकर वर्षा और इसके साथ की आपेक्षिक आर्द्रता से नियमित होता है।

प्रौढ़ फुदका और उसके निम्फ ऋणात्मक प्रकाशानुचलन प्रदर्शित करते हैं और उन्हें उच्च आर्द्रता पसंद है। अति उर्वर पौध वृद्धि द्वारा उपलब्ध करायी गयी सुरक्षित स्थितियों

---

1. *Nilaparvata lugens* Stal

के अंतर्गत आरंभिक क्षेत्र में यह अपनी गतिविधियां सीमित रखता है। ये पौधों का रस पीकर और उनके संवहन बंडलों को अशन आच्छदों से अवरुद्ध करके उन्हें क्षति पहुंचाते हैं। संक्रमित पौधे सूखने लगते हैं और 'फुदका दाह' नामक स्थिति प्रकट होती है। यह शुरू में कहीं कहीं और बाद में जब इनकी संख्या बढ़ जाती है तब पूरी तरह फैल जाती है। चूसने के अलावा यह भी पाया गया है कि यह पीड़क 'ग्रासी स्टंट' अथवा 'रैग्ड स्टंट' नामक नये विषाणु रोग को फैलाने के लिए भी उत्तरदायी है।

पत्तों की मध्य शिरा को अपने तेज अंड निक्षेपकों से विदीर्ण करने के बाद मादा अंडे देती है। अंडे बेलनाकार और पारदर्शी होते हैं तथा 4 से 10 तक के समूहों में दिये जाते हैं तथा एक दूसरे से सटे होते हैं। प्रत्येक मादा 300 से 350 तक अंडे दे सकती है।

ताजा निकले निम्फ गहरे भूरे रंग के 0.5-0.6 मि.मी. लंबे होते हैं और पूर्ण विकसित अवस्था में 18-20 मि.मी. हो जाते हैं। अंडों में से निम्फ 8-9 दिन में निकल जाते हैं तथा 12-14 दिनों में प्रौढ़ बन जाते हैं। प्रौढ़ों का रंग समान रूप से भूरा होता है। पंखों के स्वरूप की दो विशिष्ट स्थितियां होती हैं : दीर्घपंखी, जिनमें पंख सामान्य होते हैं, जो पारगमन के लिए अनुकूल होते हैं ; लघुपंखी, जिनमें पंख छोटे आकार के होते हैं तथा पिछले पंख अल्पविकसित होते हैं। इनमें से दूसरे का आकार बड़ा होता है तथा टांगें और अंड निक्षेपक लंबे होते हैं। प्रौढ़ 10 से 20 दिन तक जीवित रहते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थानों को उड़ान परिक्षेपण अंड निक्षेपण अवस्था से पूर्व गर्म-आर्द्र दिनों की संध्या के समय होता है।

कीटनाशकों के छिड़काव से इसका नियंत्रण प्रभावी नहीं होता। इस पीड़क के नियंत्रण के लिए दानेदार कार्बोफ्यूरान का उपयोग संतोषजनक मिला बताया जाता है। नयी किस्मों यथा मुडगो, टी.के.एम. 6, पारिजात, शक्ति और त्रिवेणी का विकास किया गया है, जिन पर इस पीड़क का प्रकोप और क्षति बहुत कम है।

धान के पीड़कों के नियंत्रण हेतु समय सूची

जैसा कि पहले बताया गया है, धान के संभावित पीड़कों की संख्या तीन दर्जन से भी ऊपर है, परंतु किसानों को गंभीर हानि पहुंचाने वाले कुछ ही हैं। इस फसल को पीड़कों से बचाने के लिए नियोजन बनाते समय इसके तीन मुख्य लक्षणों को ध्यान में रखना चाहिए। धान की फसल के पहले तीन लक्षण हानिप्रद हैं। पहले तो न केवल उत्पादक क्षेत्रों में इस फसल को बार बार यानी धान के बाद फिर धान, बोया जाता है, बल्कि एक ही खेत में साल भर में तीन तीन फसलें भी लगा दी जाती हैं। धान की यह अबाध निरंतरता उसके पीड़क कीटों के विकास के लिए उत्तम स्थिति पैदा करती है। इसलिए धान के पीड़कों की समस्या को नियंत्रण में रखने के लिए बहुत सावधानी की आवश्यकता है। दूसरे, बार

बार यानी एक वर्ष में तीन बार धान फसल लगने के साथ साथ इसके खेत भी एक दूसरे से मिले होते हैं, क्योंकि यह भूमि धान के अतिरिक्त और किसी फसल के लिए उपयुक्त नहीं है। अर्थात धान की खेती लगातार और दूर दूर तक मिले हुए क्षेत्रों में होती है तथा ये परिस्थितियां पीड़कों के बहुगुणित होने के लिए उपयुक्त हैं। तीसरा विशिष्ट लक्षण बहुत हितकर है। प्रायः धान की पौध पहले नर्सरियों में तैयार करके बाद में खेतों में रोपी जाती है। इस तथ्य का धान के पीड़कों के नियंत्रण हेतु उपयोग करना चाहिए और इन पीड़कों को प्रारंभिक अवस्था में ही नष्ट कर देना चाहिए। जब फसल नर्सरी में होती है, उस समय खेत की अपेक्षा उसका स्थान बहुत सीमित होता है। इसलिए नर्सरी अवस्था में नियंत्रण उपाय अधिक प्रभावशाली और कम खर्चीले होंगे। दूसरे, पौध रोपण के समय प्रत्येक पौध हाथ से गुजरती है। उस समय थोड़ा ध्यान देकर संक्रमित पौधों को नष्ट करके, अंडा समूहों को एकत्र करके और उपचार द्वारा कई प्रकार के पीड़कों का नियंत्रण किया जा सकता है। धान के बहुत से पीड़क एक मौसम में कई जीवनचक्र पूरा करने वाले होते हैं और इस प्रकार प्रौढ़ उड़ान अवस्था एक ही मौसम में बार बार आती है। एक जीवन चक्र वाले फुदका भी पारगमन करने में सक्षम होते हैं। इसलिए किसानों को यह बताना आवश्यक है कि इसके नियंत्रण के लिए एकल प्रयासों के सफल होने की संभावना बहुत कम है और इस समस्या का समाधान सामूहिक अथवा सहकारी स्तर पर अभियान चलाने से ही संभव है।

(क) समय-सूची के नियमित बचाव तरीके

धान की सफल खेती के लिए नियमित कृषि उपायों में निम्नलिखित तरीके शामिल करने चाहिए :

(i) समूह सूंडी, गाल मक्खी, गंधी बग, हिस्पा आदि कई प्रकार के धान पीड़क प्रायः बे-मौसम में घासों पर प्रजनन करते हैं इसलिए धान उत्पादकों की यह निश्चित नीति होनी चाहिए कि वे ऐसी जंगली घासों से क्षेत्र को मुक्त रखें।

(ii) चावल की फसल के लिए खेत की तैयारी करते समय कई प्रकार के पीड़कों को नष्ट करने के लिए अच्छी जुताई और सरकंडों, खूंटियों को समाप्त करना जरूरी है, क्योंकि सूंडी और धान के तना बेधक का प्यूपा तथा समूह सूंडी का प्यूपा और टिड्डों के अंडे धान की खूटियों में रहते हैं। जिन जगहों पर टिड्डों की समस्या की गंभीर संभावना हो, वहां खाली बंध की भूमि और मेढ़ों की जमीन की नियमित पलटाई करनी चाहिए।

(iii) शुरू से ही प्रकाश जाल लगा देने चाहिए। इनके प्रति पतंगे आकर्षित होकर नष्ट ही नहीं होंगे, बल्कि इन पीड़कों की संख्या की सामयिक सूचना भी मिलेगी ताकि अगले नियंत्रण के उपाय किये जा सकें। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि कई बार प्रकाश जाल

के आसपास का क्षेत्र इसके प्रकोप से अधिक ग्रस्त हो जाता है। पतंगे प्रकाश के प्रति आकर्षित होकर प्रकाश जाल की तरफ लपकते हैं और जो वहां आकर बच जाते हैं, वे प्रकाश जाल के आसपास काफी क्षति पहुंचाते हैं। इसलिए प्रकाश जाल के आसपास के क्षेत्र में दीर्घस्थायी स्पर्श कीटनाशकों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए।

(iv) आरंभिक अवस्था से ही तना बेधक और सूंडी के अंडों की निगरानी के लिए नियमित रूप से धान के खेतों का निरीक्षण करते रहना चाहिए और जैसे ही अंडा समूह दृष्टिगोचर हों, उन्हें एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए। यह ध्यान में रखना चाहिए कि धान के कई पीड़कों, मुख्यतया तना बेधक के अंडे एकत्र कर उनको नष्ट करना अचूक और सस्ता उपाय है, जबकि दूसरी अवस्थाओं में इन्हें नष्ट करना अधिक कठिन होता है। इन निरीक्षणों के दौरान तना बेधक द्वारा किये गये मृत केंद्र, गाल मक्खी द्वारा बनाये गये रजत प्ररोह और हिस्पा की अविकसित अवस्था वाली पत्तियों को एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए। इस प्रकार चौकन्ने और सावधान किसान आरंभिक अवस्था में ही धान के इन पांच मुख्य पीड़कों को आपसी सहयोग से नष्ट कर सकते हैं।

(v) उपर्युक्त पैरा चार में वर्णित उपायों को नर्सरी से पौध उखाड़कर खेत में रोपने से पहले भी करना चाहिए। दूसरे शब्दों में उस समय जब पौध एक साथ सुविधाजनक गट्ठरों में हो। उस समय इन्हें एक अच्छे दीर्घस्थायी कीटनाशक दवा में डुबो कर उपचारित किया जा सकता है, जिससे उनकी सतह पर कीटनाशक की एक पतली एवं प्रभावशाली परत चढ़ जाय। कुछ कार्यकर्ताओं ने फसल को पीड़कों से बचाने के लिए सर्वांगीण कीटनाशक नें डुबोने का भी सुझाव दिया है।

(vi) खेतों के आसपास खंदक बनाकर समूह सूंडी और कुतरा कीट के प्रवेश को रोका जा सकता है।

(ख) आवश्यकता पड़ने पर किये जाने वाले नियंत्रण उपाय

(i) जब कभी गंधी बग, टिड्डा आदि सतह भोगी कीटों की संख्या सीमा से अधिक हो जाय तो फसल और खाली भूमि पर उपयुक्त कीटनाशक जैसे बी. एच. सी. 5 प्रतिशत चूर्ण का भुरकाव करना चाहिए।

(ii) कुतरा कीट और समूह सूंडी का नियंत्रण खेत में पानी भरकर भी किया जा सकता है। थोड़ी मात्रा में (लगभग 6 लीटर प्रति हैक्टर) तेल भरे पानी में मिला देना अच्छा है, परंतु अच्छा यह होगा कि तेल की जगह किसी उपयुक्त और अच्छे कीटनाशी इमल्शन का प्रयोग किया जाय। पौधों को रस्सी अथवा बांस की डंडी से हिलाकर गंधी बग को भी इस तेल वाले पानी में गिराया जा सकता है।

गेहूं और जौ के पीड़क

जौ की अपेक्षा गेहूं के संबंध में अनेक सूचनाएं उपलब्ध हैं। इसलिए आगे जो विवरण दिया जा रहा है, वह मुख्यतया गेहूं के बारे में है, लेकिन वह जौ पर भी उतना ही लागू होता है। भारत में ये फसलें विश्व के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा पीड़क कीटों से मुक्त हैं। अमेरिका में *मेटिओला डेस्ट्रक्टर* [1] और *सीफस सिंक्टस* नार्टन[2] तथा रूस में *यूरीगैस्टर इंटीग्रीसेप्स* [3] इसके गंभीर कीट हैं। भारत में दीमक इस फसल को अधिक हानि पहुंचाती है। इसका प्रकोप विशेषकर भारी मिट्टी और असिंचित क्षेत्रों में अधिक है। जिन अन्य पीड़कों ने समय समय पर किसानों को चिंतित किया है, उनमें मध्य प्रदेश में तना बेधक *सीसेमिया* इनफ़रेन्स वाक.[4], महाराष्ट्र में माहू *टॉक्सॉप्टेरा ग्रैमिनियम* आर.[5], उत्तर प्रदेश में गुजिया घुन *टेनीमीकस इंडीकस* फै.[6] और मध्य प्रदेश में जैसिड प्रमुख हैं। कुछ और विविधभक्षी कीट जैसे सैनिक शलभ (*सिरफ़िस लोरेयी* डुप. और *सी.यूनीपंक्टा* हाव.[7]) और कुतरा कीट जैसे *एग्रोटिस इप्सिलोन* [8] (हफनाजैल) और *ओक्रोप्लूरा फ्लेमैट्रा* शिफ[9] तथा *यूक्सोआ स्पिनिफेरा* हब[10], और जमीनी टिड्डा जैसे *क्रोटोगोनस* स्पी.[11] भी फसलों के मुख्य कीट बताये गये हैं जिसमें गेहूं भी शामिल है। नयी उच्च पैदावार वाली किस्मों को इनके द्वारा प्रभावित किये जाने की आशंका है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि गेहूं की पैदावार को न बढ़ने देने के लिए भारत में, विगत काल में पीड़क कीटों का कोई प्रभाव नहीं था विशेषकर सिंचित क्षेत्रों

---

1. *Mayetiola destructor*
2. *Cephus cinctus* Norton
3. *Eurygaster integriceps*
4. *Sesamia inferens* Wlk.
5. *Toxoptera gramineum* R.
6. *Tanymecus indicus* Fst.
7. *Cirphis loreyi* Dup. and C. *unipuncta* Haw.

* हाल में प्रस्ताव किया गया है कि इस कीट का नाम बदलकर *माइथिमना सेपाराटा* वाकर *Mythimna separata* Walker कर दिया जाय।

8. *Agrotis ipsilon* (Hufnagel)
9. *Ochropleura flammatra* Schiff.
10. *Euxoa spinifera* Hubn.
11. *Chrotogonus* spp.

में। लेकिन गेहूं की फसल जहां खेतों में सुरक्षित रही है वहीं गोदामों में आने पर उस पर भयानक कीट आक्रमण होता है, जिसका अलग से विवरण दिया गया है। धान के मामले में यह बात उलट है। लेकिन पीड़कों की समस्या से मुक्त रही गेहूं की फसल अब गहन कृषि और अधिक उपज वाली किस्मों के आ जाने से उस स्थिति में नहीं रही है।

देश में गेहूं उगाने के पारंपरिक क्षेत्रों में गेहूं की फसल के दो मुख्य पीड़क हैं, (अ) दीमक और (ब) गुजिया घुन। दीमक और गुजिया घुन द्वारा पहुंचाई गयी क्षति, विशेषकर फसल की प्रारंभिक अवस्था में बहुत कुछ मिलती जुलती है। दोनों पीड़क पौधों की जड़ों पर आक्रमण करते हैं और इस क्षति के कारण पौधे सूखना आरंभ कर देते हैं। जब ऐसे लक्षण दिखाई देते हैं तब कुछ पौधों को उखाड़ कर दोषी कीट की पहचान की जाती है तथापि बाद में गुजिया घुन पत्तियों के किनारों को कुतरती हुई आसानी से देखी जा सकती है। दीमक अथवा सफेद चींटी जो उनका साधारणतः नाम है, का विवरण पहले ही कई फसलों को गंभीर हानि पहुंचाने वाले कीटों के रूप में दिया जा चुका है। इसलिए केवल गुजिया घुन का ही विवरण यहां दिया जा रहा है।

गुजिया घुन

(टेनीमीकस इंडीकस फास्ट)[1]

इस पीड़क ने हाल ही के वर्षों में अधिक गंभीरता प्रकट की है। भारत में पंजाब, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश तथा असम, बंगाल, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में इस पीड़क के छिट-पुट प्रकोप मिलते हैं। वास्तव में यह विविधभक्षी कीट है जो गेहूं, जौ, चना, मटर, पोस्त, मक्का, चावल आदि को अपना भोजन बनाता है और इसका आक्रमण इतना तेज होता है कि कई बार फसलों को दुबारा बोने की आवश्यकता पड़ती है।

इसका प्रौढ़ छोटा काले रंग का घुन (4 से 8 मि.मी. x 2 से 3 मि.मी.) होता है। इसके जीवनक्रम के बारे में पूरा अंवेषण नहीं हुआ है। फिर भी, यह तो निश्चित है कि यह मिट्टी के अंदर अंडे देता है और इसकी दोनों अवस्थाएं लार्वा और प्यूपा मिट्टी में रहती हैं। केवल प्रौढ़ बाहर आकर पौधों के बाहरी हिस्सों को क्षति पहुंचाता है। प्रौढ़ अपना काफी समय मिट्टी के ढेलों के नीचे चढ़ते-उतरते भी व्यतीत करता है। लार्वा और प्यूपा अवस्थाओं में यह पौधों की जड़ों को क्षति पहुंचाता है। यह भूमि पर या उसके नीचे अंकुर को काटता है। इसके जीवन और नुकसान के बारे में इन तथ्यों को देखते हुए इसके नियंत्रण के लिए दो संभावित विधियां हैं। एक विधि यह है कि मिट्टी के अंदर दीर्घस्थायी कीटनाशकों का

1. *Tanymecus indicus* Faust

उपयोग किया जाय जो भूमिगत अवस्था में इसे नष्ट कर दे और जब प्रौढ़ भी छिपने अथवा जड़ों को हानि पहुंचाने मिट्टी में जाय तो वह भी नष्ट हो जाय। दूसरी विधि है, पौधे के जमीन से ऊपर वाले हिस्से पर दीर्घस्थायी कीटनाशक का प्रयोग। यह कीटनाशक स्पर्श वाला भी हो सकता है या खाने वाला भी अथवा दोनों प्रकार का।

गेहूं की फसल के इन दो प्रमुख पीड़कों को ध्यान में रखते हुए किसानों के लिए निम्नलिखित नियंत्रण उपायों को अपनाना आवश्यक है :

(क) मृदा उपचार : चूंकि दीमक और घुन दोनों ही गेहूं की फसल को अंकुरण के समय क्षति पहुंचाते हैं, इसलिए बुआई के समय गड्ढों में एल्ड्रिन, हैप्टाक्लोर अथवा क्लोरोडेन के चूर्ण की 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर मात्रा में अनुप्रयोग से अधिकतर दीमक और गुजिया घुन से फसल की रक्षा हो जाती है।

(ख) गुजिया घुन के लिए भुरकाव : यदि बाद की अवस्था में गुजिया घुन से फसल की क्षति देखी जाय तो 5 प्रतिशत बी.एच.सी का 15 से 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करना चाहिए तथा चूर्ण को मिट्टी में 10 से 15 सें.मी. की गहराई तक मिला देना चाहिए।

4

मक्का और मोटे अनाजों के पीड़क

मक्का और अन्य मोटे अनाजों पर कई तरह के पीड़क कीटों का आक्रमण होता है, लेकिन ये सभी फसलों और देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण नहीं हैं। इनमें से कुछ (क) मक्का तना बेधक, (ख) प्ररोह मक्खी और (ग) बाली बग का ही विवेचन आगे किया गया है। रोमिल सूंडी और टिड्डों के बारे में पहले ही बताया जा चुका है।

मक्का तना बेधक

(काइलो पार्टेलस स्विनहो)[1]

(प्लेट-9)

पहले ईख, मक्का, मोटे अनाज़ और घास कुल के अन्य जंगली पौधों के बेधक पतंगों को काइलो सम्मिश्रण की जातियां माना जाता था। परिणामस्वरूप इन सभी पतंगों पर एक साथ ही विचार किया जाता था। बाद के विस्तृत अध्ययनों से यह पता चला है कि तथाकथित काइलो सम्मिश्रण में बहुत से वंश और जातियां हैं, तथा उनकी परपोषी पसंद में तथा आदतों और स्वभावगत विलक्षणताओं में भी महत्वपूर्ण अंतर है।

बेधक पतंगे का लेटिन नाम *काइलो पार्टेलस (जोनेलस)* स्विनहो है। मक्का और ज्वार का यह मुख्य पीड़क है और भारत में इन फसलों की पैदावार वाले लगभग सभी क्षेत्रों में इसका प्रकोप पाया जाता है। यह अन्य बहुत-सी कृष्ट और अकृष्ट फसलों जैसे गन्ना, कई प्रकार के मोटे अनाजों, धान, जानसन घास आदि पर भी भिन्न भिन्न मात्राओं में आक्रमण करता है। विश्व में इस जाति का विस्तार अफगानिस्तान से पूर्व में इंडोनेशिया और ताईवान तक तथा दक्षिण में लंका तक मिलता है। पूर्वी अफ्रीका में भी इसके मिलने की सूचना मिली है।

---

1. *Chilo partellus* Swinhoe

इस पीड़क की प्रौढ़ अवस्था पतंगे की होती है, जिसके परों का विस्तार 25 से 30 मि.मी. तक होता है। अगले परों का रंग हल्का सरकंडे-सा होता है, जबकि पिछले पर धूमिल सफेद रंग के होते हैं। यह रात्रिचर जीव है और दिन में सूखे पत्तों के नीचे या मिट्टी के ढेलों आदि में छिपा रहता है। ये सामान्यतः पत्तों की निचली सतह पर सपाट अंडाकार सफेद-क्रीम रंग के अंडे देता है जो एक पर एक चिपके रहते हैं। अंडे जब 2 से 5 दिन के होते हैं, इनमें से लार्वा निकलने शुरू हो जाते हैं। अंडों से निकले ताजा लार्वा नयी कोंपलों पर झुंड की तरह आक्रमण करते हैं, जो मुख्यतया केंद्रीय चक्र पर होता है जिसमें काफी छिद्र छिद्र नजर आने लगते हैं। इसके बाद लार्वा पड़ोस के पौधों के तनों में प्रवेश करने लगता है। नये पौधों में जिनमें तना पूरी तरह नहीं बना होता, केंद्रीय चक्र का आधार और वृद्धि बिंदु बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। परिणामस्वरूप केंद्रीय चक्र सूखने लगता है और मृत केंद्र (डेड हार्ट) बन जाता है। यह स्थिति मजबूत तना बन जाने पर नहीं होती, क्योंकि उस समय तने में कई कई लार्वा सुरंग बना सकते हैं। इसलिए आरंभिक अवस्था में इसका आक्रमण किसानों के लिए चिंतापूर्ण होता है। बाद की स्थितियों में किसान यह भी सोचते हैं कि समस्या खत्म हो गयी है, जबकि वस्तुतः प्रकोप तने के अंदर हो रहा होता है जो दिखाई नहीं देता।

सामान्य खरीफ के मौसम में लार्वा अवस्था 4 से 5 सप्ताह तक रहती है। यद्यपि सर्दियों में या ठंडे वातावरण में यह 6 महीने तक की भी हो सकती है। यह कीट प्रतिकूल शीत ऋतु को इस दीर्घकालीन लार्वा स्थिति में ही पार कर लेता है। प्यूपा अवस्था तने के अंदर ही प्राप्त होती है और यह दो दिनों से दो सप्ताह तक रहती है। लार्वा प्यूपा बनने से पहले तने में छेद कर देता है जिससे बाद में पतंगा बाहर निकलता है।

अगेती बसंत से पिछैती पतझड़ तक की इसकी कई पीढ़ियां होती हैं और तब पीड़क लार्वा निष्क्रिय शीत अवस्था में प्रविष्ट होता है। यह काल लार्वा ठूंठों में या सूखे तनों में शीतनिष्क्रिय रहता है।

जहां तक इसके नियंत्रण का सवाल है, सबसे अच्छा समय वह है जब ठूंठों या सरकंडों में यह शीतनिष्क्रिय अवस्था में होता है। इस समय ठूंठों का साइलेज बनाकर अथवा उन्हें एकत्र करके जलाने से इस पीड़क को समाप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जब पतंगा अंडे देने के लिए पौधों पर बैठता है तब पत्तियों पर दीर्घस्थायी कीटनाशक की परत से इनको नष्ट किया जा सकता है। कीटनाशक का यही आवरण पहली लार्वा अवस्था के लिए भी प्रभावी होता है, जब वे पहली बार पौध-ऊतकों में प्रवेश करने को होते हैं। लार्वा की प्रथम अवस्था में केंद्रीय चक्र पर एकत्र होने की आदत होती है जो इसके नियंत्रण के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है। इस स्थिति में उत्तम तरीका यह है कि स्पर्श कीटनाशक दवा के दानों को केंद्रीय चक्र पर डाल दिया जाय। ये दाने पत्ते की धुरी पर काफी समय

तक रहते हैं और लगातार प्रथम स्थिति के लार्वों को नष्ट करते रहते हैं। छिड़काव और भुरकाव की तरह दानों को भी कई बार सुविधाजनक अंतरालों पर डालना आवश्यक है। खड़ी फसल में जब लार्वा तने के अंदर हो तो कोई भी रसायन प्रभावी नहीं होगा। हालांकि ऐसे परभक्षी जो तने के अंदर लार्वा पर आक्रमण करते हैं, उपयोगी हो सकते हैं पर ऐसे परभक्षियों की उपलब्धि बहुत कम है। इस पीड़क के प्रति अवरोध रखने वाली मक्का और ज्वार की आशाजनक किस्में विकसित करने का कार्य प्रगति पर है।

प्ररोह मक्खी

(अथरीगोना सोकाटा रोंडनी*)*[1]

यह पीड़क मस्किड मक्खी डिप्टरा समूह के कीटों के अंतर्गत आती है। इस समूह की कई जातियां विभिन्न कृष्ट और जंगली घास कुल के पौधों की पीड़क हैं, जबकि अन्य सड़ने वाली जैव सामग्री पर प्रजनन करने वाली मृतजीवी जातियां हैं।

ज्वार की प्ररोह मक्खी घरेलू मक्खी जैसी लगती है, लेकिन यह आकार में बहुत छोटी (शरीर की लंबाई 3 मि.मी.) होती है। ये मक्खियां धूप पसंद करती हैं और इनकी प्रौढ़ अवस्था अपेक्षाकृत लंबी होती है जो एक माह या अधिक तक रहती है। इनका आहार मधुबिंदु (हनी ड्यू) और प्रकृति में उपलब्ध अन्य मधुर सामग्री है। ये उन पौधों पर एक एक करके अंडे देती हैं जिनकी लंबाई 15 से 20 सें.मी. तक होती है। प्रत्येक मक्खी अनियमित अंतराल पर एक या दो दिन में 40 तक अंडे देती है। अंडों की आकृति विशिष्ट प्रकार की होती है। ये लंबे, चपटे और नाव जैसी आकृति के होते हैं। इसके अनुदैर्घ्य किनारे पर दो पर जैसे पार्श्व प्रक्षेप होते हैं। लगभग दो दिन में अंडों में से बहुत सूक्ष्म मैगट निकलते हैं, जिनका एक छोर शुंडाकार होता है। मैगट पत्ती के आवरण से होकर नीचे की ओर रेंगते हैं, जब तक कि पौध के आधार तक न पहुंच जायें। वहां यह पौध की धुरी में छेद करता है और केंद्रीय प्ररोह के आधार तथा वृद्धि बिंदु को क्षतिग्रस्त करता है जिससे मृत केंद्र नामक विशेष लक्षण उत्पन्न होता है। लार्वा अवस्था में एक सप्ताह बिताने के बाद मैगट पौध की धुरी जो अब बिलकुल सूख चुकी होती है, में एक छोटे नाल के आकार का प्यूपा बनता है। तब या तो कुछ अनुत्पादी दौजियां बन जाती हैं अथवा पूरी पौध मर जाती है। प्यूपा अवस्था लगभग एक सप्ताह तक चलती है, जिसके बाद प्रौढ़ मक्खी प्रकट होती है और दूसरी पौधों पर अंडे देना आरंभ करती है।

अन्य भी कई प्रकार की प्ररोह मक्खियों की जातियां हैं जो बाजरा, रागी और कंगनी

---

1. *Atherigona soccata* Rondani

तना बेधक जैसे मोटे अनाजों पर आक्रमण करती हैं। परंतु उनकी जैविकी और पौध को हानि ऊपर दी गयी प्रजाति जैसी होती है।

प्रारंभ में प्ररोह मक्खी के व्यावहारिक नियंत्रण के लिए प्रभावित पौध को उखाड़ने की सिफारिश की जाती थी और बीज दर अधिक रखी जाती थी, ताकि अवांछित पौध को हटाने के बाद पौध घनत्व कम न हो। हाल ही के वर्षों में ऐसे कीटनाशकों का आविष्कार किया गया है जो सर्वांगी क्रिया करते हैं और जिनका उपयोग यदि बुआई के समय किया जाय तो पौध पीड़क से अछूती रहेगी। एक प्रभावी बीज उपचार का भी विकास किया गया है।

बाली बग

(कैलोकोरिस अंगस्टैटस लैथिरी)[1]

(प्लेट-10)

यह एक भयंकर पीड़क है विशेषकर दक्षिण भारत के कुछ भागों में। यद्यपि इसका प्रकोप कई प्रकार के अनाजों और घास पर पाया गया है, इसका मुख्य पोषी ज्वार है। इससे ज्वार की दाना उपज बहुत घट जाती है।

प्रौढ़ अवस्था में इस कैपसिड बग की लंबाई लगभग 5 मि.मी., चौड़ाई 1 मि.मी. से अधिक और रंग पीला-हरा होता है। भारत में कीट वैज्ञानिकों का ध्यान इसकी ओर सबसे पहले सन् 1893 में गया। इससे मिलती-जुलती अन्य पीड़क जातियां भी फसलों में मिलती हैं, परंतु सामान्यतया वे इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं।

ज्वार की फसल में पत्तों के आवरण से जैसे ही बालियां बाहर निकलना आरंभ करती हैं, इस बग के प्रौढ़ उस ओर आकर्षित होते हैं। अपने सिगार की आकृति वाले लंबे (लगभग 1.5 मि.मी.) अंडे ज्वार के तुष या पुष्पक के परागकोरों के बीच देते हैं। इन अंडों में से लगभग एक सप्ताह में निम्फ निकल जाते हैं। एक कीट 150 से 200 अंडे देता है, इसलिए एक सप्ताह में ही इसकी संख्या 75 से 100 गुणा हो जाती है। साथ ही फसल निकटवर्ती अकृष्ट घास पर रह रहे प्रौढ़ों को अपनी ओर आकर्षित करती है। अंडों से भारी संख्या में निकली यह निम्फ सेना तुरंत ही ज्वार के दानों में हाल ही में पड़े रस को पीना आरंभ कर देती है। परिणामस्वरूप दाने भरने की जगह मात्र तुष या चोकर रह जाते हैं। कई बार पूरी बाली पहले काली पड़ती है और बाद में सूख जाती है।

दो सप्ताह से थोड़े अधिक समय में ही सूक्ष्म पहली अवस्था निम्फ पांच इंस्टार

---

1. *Calocoris angustatus* Lethierry

अवस्थाओं में से गुजरने के बाद प्रौढ़ बन जाते हैं। निम्फ का रंग पीला और केसरिया-लाल होता है। अंडे देने के तीन सप्ताह बाद ही नयी पीढ़ी दुबारा अंडे देने के लिए तैयार हो जाती है और ये उन भुट्टों को अपना शिकार बनाती है जो अभी ताजा होते हैं। जब दाना सख्त हो जाता है तो अंडे नहीं दिये जाते। इस प्रकार एक ही फसल से दो पीढ़ियां आहार ग्रहण करती हैं, क्योंकि सभी भुट्टे एक साथ नहीं पकते। इसके द्वारा पहुंचाई गई क्षति और भी भयानक हो सकती है, लेकिन एक जीवाणु रोग के कारण इसके प्रौढ़ काफी संख्या में मारे जाते हैं।

पहले इसका नियंत्रण बहुत कठिन था, लेकिन अब सही समय पर प्रयोग में लाया गया कोई भी अच्छा स्पर्श कीटनाशक इससे मुक्ति दिला देगा।

नियंत्रण समय सूची :

मोटे अनाजों के कुछ गंभीर प्रकृति के पीड़कों और अन्य कीटों से संभावित खतरों को ध्यान में रखते हुए इनके उत्पादकों को निम्नलिखित उपायों से सहकारी आधार पर नियंत्रण अभियान के लिए नियोजन बनाना चाहिए।

(1) कटाई के बाद बचे मोटे अनाजों की सींटों को शीघ्र से शीघ्र उपयोग में ले लेना चाहिए तथा किसी भी सूरत में बेधक पीड़कों के आरामगृह बनने वाले इस अवशिष्ट को सर्दी के अंत तक समाप्त कर देना चाहिए।

(2) इन्हीं कारणों से खेत में खड़े ठूंठों को भी खोद कर नष्ट कर देना चाहिए। गर्मी के आरंभ में खेत को जोतकर ठूंठ निकाल देने चाहिए। उनको या तो जला देना चाहिए अथवा ईंधन के रूप में उपयोग कर लेना चाहिए। जुताई से भूमि के अंदर सूंडी और टिड्डे के अंडे भी सुरक्षित नहीं रहेंगे और धूप तथा परभक्षियों के कारण मारे जायेंगे। खेत के चारों ओर की जमीन, पेड़ों के आसपास की जमीन और पेड़ आदि की भी जुताई या गुड़ाई कर देनी चाहिए, क्योंकि यहां भी पीड़क आश्रय लेते हैं। ऐसे स्थानों पर उगी हुई घास का भी या तो उपयोग कर लेना चाहिए या नष्ट कर देना चाहिए।

(3) बुआई के समय बीज की संख्या अधिक रखें ताकि बाद में संक्रमित पौधों को उखाड़ने से पौधे संख्या में कम न हों और अनुकूल स्तर बना रहे।

(4) फसल का नियमित रूप से निरीक्षण करना चाहिए और निम्नलिखित के प्रकट होने पर नजर रखनी चाहिए (क) किसी भी प्रकार के बेधकों से पैदा हुए 'मृत केंद्र', (ख) प्यूपा से प्रकट होने वाले पतंगे जो अभियान नं. 2 से बच गये हों, (ग) पीड़कों द्वारा दिये गये अंडों, और (घ) अन्य बाहरी भक्षी। इस अभियान में अंडा समूह और सुस्त पतंगों को एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए।

(5) पीड़क के घनत्व और प्रकृति के अनुसार उसके रासायनिक नियंत्रण के लिए अभियान

चलाना चाहिए। रस पीने वाले पीड़कों के लिए तेज स्पर्श अथवा सर्वांगी कीटनाशक पीड़कों का उपयोग करना चाहिए। यदि सूंडी और टिड्डा जैसे पत्ती भक्षियों का भी संक्रमण हो तो अधिक दीर्घस्थायी कीटनाशक का उपयोग करना चाहिए। टिड्डों और कुतरा कीट के लिए विषपूर्ण आहार भी दिया जा सकता है।

(6) यदि ऊपर बताये गये (1) से (4) के बचाव अभियान बड़े स्तर पर सहकारी आधार पर चलाये गये हैं तो बंधकों की संख्या एक सहनीय सीमा से अधिक नहीं हो पायेगी। लेकिन फिर भी, यदि किसी कारणवश इन अभियानों को सफलतापूर्वक नहीं चलाया जा सका है या चलाया जा सकता है तथा कीटनाशक प्रयोग करना व्यवहार्य है तो दीर्घस्थायी कीटनाशकों का उपयोग ऐसे समय करना चाहिए जब अंडों से निकले नये नये लार्वा जहर के संपर्क में आयें और पौधे के तने को नुकसान पहुंचाने से पहले ही नष्ट हो जायें। इसके लिए उपयुक्त समय अंडों में से लार्वा निकलने के तुरंत बाद होता है। उपयुक्त समय का पता विभिन्न जातियों के बायोमीटर से निर्धारित किया जा सकता है। रासायनिक नियंत्रण के साथ साथ ही अन्य उपाय भी करते रहना चाहिए।

5

गन्ने के पीड़क

गन्ना नकदी फसल है जो मोटे अनाजों की फसल से बहुत मिलती जुलती है। इसलिए गन्ने की फसल के सामने आने वाली कीट समस्याएं भी लगभग उसी प्रकार की होती हैं, जैसी मोटे अनाजों की। परंतु पीड़क नियंत्रण और आर्थिक लाभ की दृष्टि से दो मुख्य अंतर सामने रखने चाहिए : (1) आर्थिक लाभ की दृष्टि से गन्ना और मोटे अनाज दो ध्रुवों के समान हैं। गन्ने की फसल में अधिक लागत वाले कीटनाशक एवं बीमारियों से बचाव के उपाय किये जा सकते हैं, जबकि मोटे अनाजों की खेती में अधिक लागत लगाना लाभदायक नहीं है। (2) मोटे अनाजों की बुआई बीज बो कर की जाती है, जिसे खाने और बोने दोनों के लिए भंडार में रखा जाता है। जबकि गन्ने की बुआई उसी की फसल के तने से टुकड़ा काटकर पेड़ी के रूप में की जाती है। यद्यपि इन पेड़ियों में चीनी तत्व होता है, लेकिन उसे भंडार में नहीं रखा जाता। इसका कीट विज्ञान विश्लेषण यह है कि मोटे अनाज खेत और भंडार दोनों जगह पीड़क कीटों से प्रभावित होते हैं, जबकि गन्ना खेत में ही प्रभावित होता है। मोटे अनाजों की अपेक्षा गन्ने की फसल खेतों में अधिक गंभीर पीड़क समस्या का सामना करती है। इसलिए कुल मिलाकर पीड़क समस्या के संबंध में दोनों के अत्यंत सावधानीपूर्ण प्रयोग की आवश्यकता है।

गन्ने का निचला, भूमिगत भाग मुख्यतया इन पीड़कों से प्रभावित होता है : (1) दीमकों से मुख्यतया आरंभिक अवस्था में जब अंकुरण कम हो जाता है और उन क्षेत्रों में जहां सिंचाई व्यवस्था बहुत कम होती है, और (2) लेपीडोप्टरस जड़ बेधकों से। कभी कभी सफेद लट (व्हाइट ग्रब) जैसे कीट भी कुछ मात्रा में क्षति पहुंचाते हैं। पौधे के मध्य भाग पर कोई आधा दर्जन से अधिक लेपीडोप्टरस तना बेधक आक्रमण करते हैं, जबकि ऊपर वाला भाग दूसरे लेपीडोप्टरस शीर्ष बेधकों से संक्रमित होता है। इनके अतिरिक्त गन्ने का एक और भयानक पीड़क पाइरिला बग है। माइट्स और अन्य पीड़क कीट जैसे सफेद मक्खी, मीली बग आदि सामान्यतया छिटपुट और अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण हैं। कुल मिलाकर लगभग 20 पीड़क भारत में गन्ने पर आक्रमण करते हैं। इनमें से चार का

वर्णन यहां किया जा रहा है। ये हैं : शीर्ष बेधक, तना बेधक, जड़ बेधक और पाइरिला। दीमकों के बारे में पहले ही बताया जा चुका है।

शीर्ष बेधक

(ट्राइपोरिजा निवेल्ला फैबरिसियस*)*[1]

(प्लेट-11)

जैसा कि नाम से पता चलता है इस पीड़क का आक्रमण गन्ना प्ररोह के शीर्ष भाग पर ही होता है। वृद्धि बिंदु बुरी तरह क्षतिग्रस्त होता है तथा खुल चुके पत्ते का केंद्रीय चक्र सूखने लगता है जो विशिष्ट मृत केंद्र बनता है। वृद्धि बिंदु के एकदम नीचे बाह्य कलियों में, विकसित प्ररोह के वृद्धि बिंदु के नष्ट हो जाने से असामान्य सक्रियता होती है जिससे गुच्छ शीर्ष जैसे लक्षण प्रकट होते हैं। गुच्छ शीर्ष का यह लक्षण उस समय प्रकट नहीं होता, जब बहुत कम उम्र की पौध पर आक्रमण हो, क्योंकि उस समय बहुत छोटा भाग भूमि की सतह के नीचे होता है और वृद्धि बिंदु के नष्ट होने से दौजियों का निर्माण कुछ शीघ्र हो जाता है; इस अवस्था पर वास्तव में कोई शीर्ष नहीं होता, जहां गुच्छ बने।

इस पीड़क का प्रौढ़ मध्यम आकार का (पंख विस्तार 3 सें.मी. से कुछ अधिक) पतंगा होता है। इसका सफेद-क्रीमी रंग होता है। मादा में इसकी सफेदी की सुंदरता गहरे लाल रंग के इसके उदर के अंतिम हिस्से पर और बढ़ जाती है, जो महुए रंग के बालों के गुच्छे से ढका होता है। यह रात्रिचर कीट है लेकिन दिन की धूप में भी छुपता नहीं और गन्ने पर बैठा नजर आ जाता है। यह समूह के समूह अंडे देता है जो मादा के उदर के अंत में बने बालों के गुच्छे से ढके रहते हैं और हरे पत्तों पर दूर से देखने पर भी स्पष्ट नजर आते हैं। अंडों में से साधारणतया एक सप्ताह बाद लार्वा निकल आते हैं। प्रथम अवस्था के लार्वा गन्ने के पत्तों की मध्य शिरा में छेद करते हैं और वहां से नीचे की ओर पत्ते के आधार की ओर अपनी यात्रा आरंभ करते हैं। मध्य शिरा में बनी ये नालियां सफेद धारियां-सी दिखाई देती हैं। ये धारियां गुच्छ शीर्ष के अतिरिक्त विश्वसनीय लक्षण प्रकट करती हैं जिसमें शीर्ष बेधक का आक्रमण अन्य बेधकों के आक्रमण से अलग पहचाना जा सकता है। इन बेधकों की चर्चा बाद में की जायेगी। बहुत से लार्वा पत्तियों की मध्य शिराओं में प्रविष्ट होते हैं लेकिन उनमें से एक ही पत्ती के आधार पर वृद्धि बिंदु तक पहुंचता है। लार्वा वृद्धि बिंदु पर पहुंचकर उसे नष्ट करता है जैसा कि पहले बताया जा चुका है। यहां लार्वा सुरक्षा और प्रचुरता का वातावरण पाता है। लगभग 4-5 सप्ताह में लार्वा बढ़ कर पूर्ण विकसित मांसल सूंडी बन जाता है। सूंडी की लंबाई लगभग

---

1. *Tryporyza nivella* Fabricius

3 सें.मी. और रंग क्रीमी-पीला होता है। इस पूरी अवधि में लार्वा तने के शीर्ष से 25 से 30 सें.मी. के नीचे नहीं आता और इसी ऊपरी भाग में प्यूपा बनाता है। सामान्य मौसम में प्यूपा की अवधि 7 से 10 दिन तक रहती है, जिसके बाद वह पतंगा बनता है। प्यूपा बनने से पहले लार्वा तने में एक छेद बनाता है, जिसके द्वारा पतंगा बाहर निकलता है। इस प्रकार एक फसल मौसम में कई पीढ़ियां सर्दियों तक बनती रहती हैं। सर्दियां आने पर लार्वा शीत निष्क्रियता में प्रवेश कर जाता है। इस पीढ़ी का लार्वा प्यूपा तभी बनता है, जब सर्दियों के बाद मौसम पुनः गर्म होना शुरू होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि शीर्ष बेधक द्वारा पहुंचाई गयी हानि आक्रमण के समय पौधे की आयु पर निर्भर है। आरंभिक काल में आक्रमण होने से पौध मर सकती है, थोड़ा बाद में होने पर दौजियां निकल सकती हैं और काफी मात्रा में तना बन जाने पर आक्रमण होने का अर्थ है कि ईख शीर्ष गुच्छ लिए अविकसित खड़ी रहेगी। इसके और बाद की अवस्था में, जबकि सामान्य वृद्धि हो चुकी होती है, आक्रमण कम हानिकर होता है।

शीर्ष की बढ़ती हुई संख्या को सीमित रखने के लिए इसके परभक्षी भी बनाये गए हैं। अभी तक ऐसी लगभग एक दर्जन जातियों का पता लगा है। लेकिन इसके बावजूद भी देश में गन्ना उत्पादन वृद्धि में यह कीट अवरोधक बना हुआ है।

इस कीट के नियंत्रण के लिए सबसे उपयुक्त अवस्था अंडे की है। इस समय अंडों के प्रमुख समूहों को एकत्र कर नष्ट किया जा सकता है। दूसरी अवस्था 'मृत केंद्र' और गुच्छ शीर्ष बनने की है। इन्हें उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए ताकि इस पीड़क का लार्वा भी खत्म हो जाय। इन यांत्रिक नियंत्रणों के अतिरिक्त फसल पर दीर्घस्थायी स्पर्श कीटनाशक छिड़का जा सकता, है जो पतंगों को अंडा देने से पहले ही मार दे और लार्वाओं को भी पौध ऊतकों में प्रवेश से पूर्व ही नष्ट कर दे। निश्चित सफलता के लिए कीटनाशक उपचार के समय का निर्धारण अत्यंत सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

तना बेधक

ऐसे पतंगों की संख्या कोई आधा दर्जन है जिनके लार्वा ईख के तने के मध्य भाग में छेद करते हैं। इन सबको तना बेधक कहा जाता है। विकसित प्ररोहों में आमतौर पर ये उस ऊपरी भाग तक नहीं जाते, जहां शीर्ष बेधक आक्रमण करते हैं जिनके बारे में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। ये नीचे की ओर जाते हैं जहां जड़ बेधकों का संक्रमण होता है। परंतु यह भेद पौधों व फसल की आरंभिक अवस्था में नहीं किया जा सकता। उस समय ईख के तने का बनना इतना कम होता है कि बेधकों की विभिन्न जातियों को अपनी वरीयता प्रदर्शित का करने अवसर नहीं मिलता। व्यवहार में विभिन्न प्रकार के बेधकों की आदतें

और जीवन इतिहास लगभग समान होता है। लेकिन इनकी स्वभावगत विलक्षणताओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो उनमें भारी अंतर मिलता है। इनमें से *काइलो इनफुस्केटेलस* सनैलेन[1] जिसका नाम पहले *आरजाइरिया स्टिकटीक्रेस्पिस*[2] था, का वृतांत नीचे दिया जायेगा। कुछ अन्य तना बेधक जातियों के विपरीत इनका प्रसार सारे भारत के गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में मिलता है। भारत से बाहर इसकी व्याप्ति बर्मा, इंडोनेशिया, ताईवान और फिलीपींस आदि में है। यह घास कुल के अन्य अनेक पौधों पर भी आक्रमण करता है, लेकिन भारत में यह गन्ने की फसल का भयानक विनाश करता है।

इसकी प्रौढ़ अवस्था मध्यम आकार के पतंगे की होती है जिसका पंख विस्तार 3 सें.मी. और रंग विविध प्रकार के होते हैं। पिछले पंख देखने और बनावट में हल्के होते हैं। ये अल्पायु फसल के प्रति आकर्षित होते हैं। ये रात्रिचर हैं और दिन का समय सूखे पत्ते के नीचे आराम करते हुए बिताते हैं, जहां ये पृष्ठभूमि से अलग नहीं दिखते। ये पपड़ी जैसे अंडे देते हैं जो 2 या 3 पंक्तियों में एक दूसरे से चिपके पड़े रहते हैं। एक पंक्ति में लगभग एक दर्जन अंडे होते हैं जो गन्ने के पत्ते के नीचे की ओर रहते हैं। अंडों में से लगभग एक सप्ताह में लार्वा निकल जाते हैं और वे सबसे पहले पत्ते की बाह्य त्वचा को खाते हैं और बाद में तने में घुसते हैं। बहुत कम अल्पायु के प्ररोहों अथवा दौजियों में, जिनमें तना मामूली-सा ही बना होता है, लार्वा की आहार और छिद्र करने की गतिविधि वृद्धिबिंदु और केंद्रीय चक्र दोनों को नष्ट कर देती है तथा मृत केंद्र का विशिष्ट लक्षण बन जाता है। यह उस समय उत्पन्न नहीं होता जब तना काफी बन चुका होता है, क्योंकि तब लार्वा बिना वृद्धि बिंदु या पत्ती आधार पर क्षति पहुंचाये हुए तने में नाली बनाता रहता है और कोई भी बाहरी लक्षण प्रकट नहीं होते। लार्वा का रंग हल्का सफेद होता है तथा पीठ पर भूरी लाल लंबवत धारियां होती हैं। पूर्ण विकसित लार्वा की लंबाई 2.5 सें.मी. होती है। लार्वा की मुख्य लाक्षणिक आदत कि शीर्ष बेधक के विपरीत यह एक ही डंठल में या पास के दूसरे डंठलों में कई बार छेद कर अंदर जाता है और कई बार बाहर आता है। लार्वा अवस्था तीन सप्ताह तक रहती है, उसके बाद वह गन्ने के डंठल की नली में प्यूपा बनता है जहां यह लार्वा अवस्था में आहार प्राप्त करता है। प्यूपा अवस्था सामान्य तौर पर एक सप्ताह तक रहती है तथा इसके बाद वह पतंगा बनकर उस छेद से बाहर निकलता है जिसे प्यूपा बनने से पूर्व लार्वा अवस्था में उसने बनाया था। बसंत और पतझड़ के बीच यह कई पीढ़ियां पूरी करता है और सर्दियों में शीतनिष्क्रिय अवस्था में रहता है।

भारत में इसके प्राकृतिक दुश्मनों में दो कीट परभक्षी जातियां शामिल हैं जो अंडों पर आक्रमण करती हैं। लगभग छह जातियां ऐसी हैं जो लार्वा अवस्था पर और कम से

---

1. *Chilo infuscatellus* Snellen 2. *Argyria sticticraspis*

कम एक प्रजाति इसके प्यूपा पर आक्रमण करती है। इन प्राकृतिक विपत्तियों के बावजूद यह कीट काफी गंभीर समस्या पैदा करता चला आ रहा है।

उपर्युक्त विवेचन से यह देखा जा सकता है कि इसके नियंत्रण का बेहतर उपाय यह है कि गन्ने की फसल में मृत केंद्र वाले प्ररोहों को फसल की आरंभिक अवस्था में ही हटा दिया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि इस पीड़क के लार्वा हटाकर नष्ट कर दिये गये हैं। आरंभिक काल में फसल पर हल्की-सी मिट्टी चढ़ाने से भी लार्वा के लिए तने का भाग दुरूह हो जायेगा। ये दोनों ही उपाय उस समय निरर्थक हो जाते हैं, जब तना काफी बढ़ चुका होता है। रासायनिक नियंत्रण पतंगों पर अंडे देने से पूर्व करना चाहिए अथवा लार्वा की प्रथम अवस्था में जिसमें वे कीटनाशक की घातक मात्रा के संपर्क में पौध ऊतक में प्रवेश से पूर्व ही आ जायें। इस सबका अर्थ है कि रासायनिक नियंत्रण में समय का सही निर्धारण बायोमीटर की सहायता से करना चाहिए। बार बार अंदर बाहर जाने वाले लार्वाओं पर अवशिष्ट छिड़काव भी सफल हो सकता है। यह प्रयोग शीर्ष बेधक पर उपयोगी नहीं है क्योंकि वह लार्वा अवस्था में डंठल से बाहर नहीं आता।

जड़ बेधक

(एमालोसेरा डिप्रेसेला स्विनहो*)*[1]

(प्लेट-12)

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जब वैज्ञानिकों का ध्यान इसकी ओर गया तो इस पीड़क को कई नाम दिये गये। फिर भी, इसका वर्तमान नाम 1918 से चल रहा है। यद्यपि गन्ने की फसल पर इसकी गंभीरता स्थान स्थान पर भिन्न है, फिर भी इसकी उपस्थिति भारत के विभिन्न गन्ना उत्पादक क्षेत्रों और इंडोनेशिया में भी है। यह मुख्यतया मिट्टी का कीट है और गन्ने के तने के भूमिगत भाग पर आक्रमण करता है। इसलिए इसका नाम जड़ बेधक है, परंतु यह जड़ों में छेद नहीं करता, क्योंकि गन्ने की जड़ें बहुत पतली होती हैं। यह घास कुल के और बहुत से पौधों पर भी आक्रमण करता है।

प्रौढ़ अवस्था में यह पुआल के से रंग का पतंगा होता है जिसके पंखों का आकार लगभग 25 मि.मी. होता है। अन्य पतंगों की भांति यह भी रात्रिचर है तथा रात में ही उड़ता और अंडे देता है। लेकिन पहले गन्ने के जिन दो पीड़क पतंगों की चर्चा की गयी है, उनके विपरीत यह पतंगा समूह में अंडे न देकर एकल अंडे देता है। इसका लार्वा एक सप्ताह में निकलता है और वह पहले दो पीड़क पतंगों के लार्वों से बहुत भिन्न होता है।

---

1. *Emmalocera depresella* Swinhoe

ये लार्वा पौध से नीचे की ओर रेंगते हैं और पौध के साथ साथ दरारों और विदरिकाओं में होकर मिट्टी के अंदर चले जाते हैं। भूमि की सतह के अंदर कुछ सें.मी. जाने के बाद यह पादप ऊतक में छिद्र करते हैं। यह यात्रा 15 मिनट से कुछ अधिक चलती है और इस दौरान मृत्यु दर बहुत अधिक होती है। अन्य पतंगा लार्वाओं की भांति यह भी केवल आरंभिक अवस्था में मृत केंद्र का कारण बनता है न कि विकसित अवस्था में, जब अंततः गांठों का घेरा काफी सख्त हो जाता है और लार्वा बिना पत्तों की आहार आपूर्ति को काटे इसी से भोजन लेता है।

लार्वा की बनावट मांसल, सतह सिलवट वाली और रंग क्रीमी सफेद होता है। इनकी आदत होती है कि जिस गांठ में छिद्र करके ये अंदर जाते हैं, उसी से बाहर आते हैं। दुबारा फिर ये उसी या साथ वाले प्ररोह में छेद करके अंदर जाते हैं। फसल मौसम में लार्वा अवधि कोई चार पांच सप्ताह की होती है, लेकिन शीतनिष्क्रिय लार्वा अवस्था 200 दिन या अधिक भी हो सकती है। प्यूपा आमतौर पर गन्ने के भूमिगत तने में बनता है। लार्वा प्यूपा बनने से पहले ईख के अंदर एक रेशमी नली बनाता है जो शीतकालीन आश्रम स्थल से जमीनी सतह तक होती है। वहां वह एक छिद्र भी बनाता है, जिसमें से डेढ़ से दो सप्ताह की प्यूपा अवस्था के बाद पतंगा बाहर निकलता है। अगैती बसंत से पिछैती पतझड़ तक इसकी कई पीढ़ियां जन्म लेती हैं।

जहां तक गन्ना फसल को जड़ बेधक से बचाने का सवाल है, इसका उपचार तना बेधक या शीर्ष बेधक की अपेक्षा मृदा कीट के रूप में करना चाहिए। एल्ड्रिन, क्लोरेडेन या हैप्टाक्लोर जैसे दीर्घस्थायी कीटनाशकों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि वह लार्वा के मिट्टी में प्रवेश करने और भूमि के नीचे एक प्ररोह से दूसरे में जाते समय उसके संपर्क में आयें और वहीं मर जायें। इस तर्कसंगत प्रयास का अभी पर्याप्त व्यावहारिक परीक्षण नहीं हुआ है। अन्य उपायों में मृत केंद्र वाले पौधों को हटाना है जिससे लार्वा हट कर नष्ट हो जायें। अंडा देने से पूर्व प्रौढ़ का रासायनिक दवाओं से समापन किया जाना चाहिए। मूलांकुरणों को हतोत्साह करना, ठूंठों को निकालना आदि कृषि कार्यों को भी सफलता के लिए बड़े पैमाने पर करना अच्छा है।

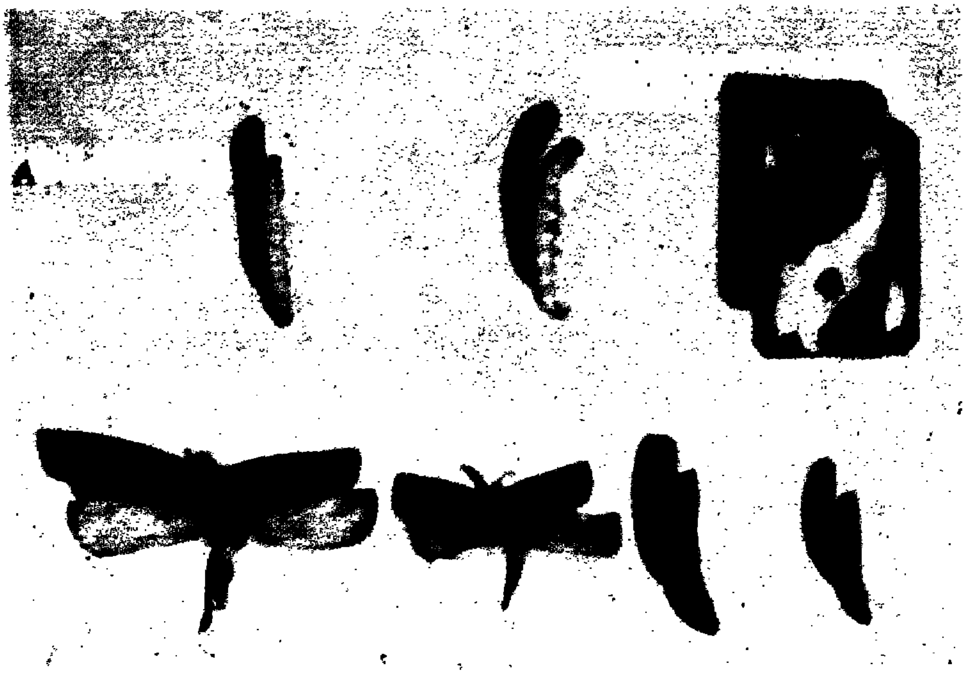
पाइरिला पत्ती फुदका

(पाइरिला परप्युसिला वाकर)[1]

(प्लेट-13)

यह पुआल रंग का फलगोरिड बग है। इसकी बनावट की विशेषता इसके सिर से आगे

1. *Pyrilla perpusilla* Walker

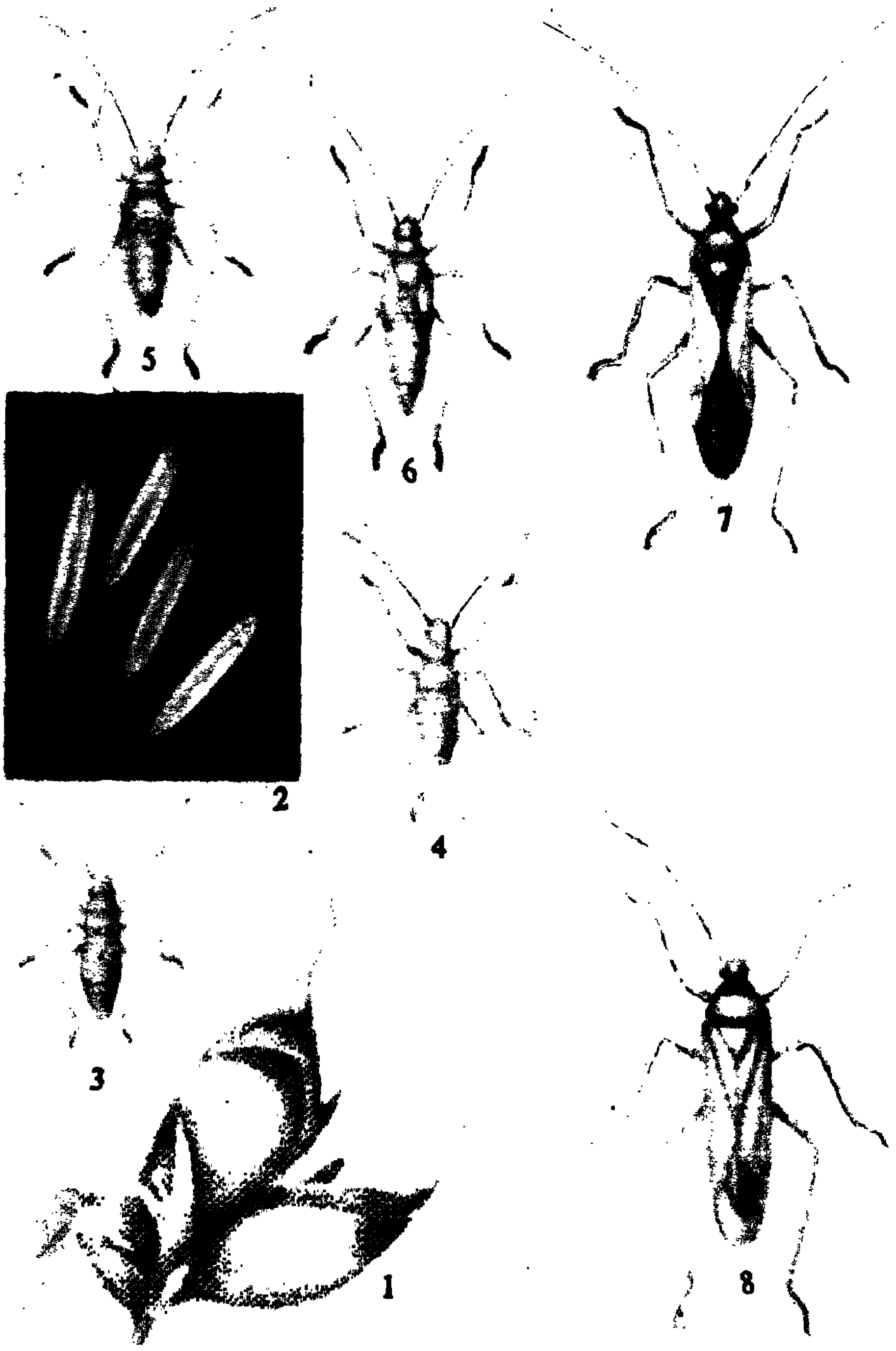




प्लेट-9

क. ज्वार तना बेधक (*काइलो पारटेलस* स्विनहो) की विभिन्न अवस्थाएं
(सौजन्य : डा. डब्ल्यू. आर. यंग, कीट वैज्ञानिक, राकफैलर फाउंडेशन, नयी दिल्ली)

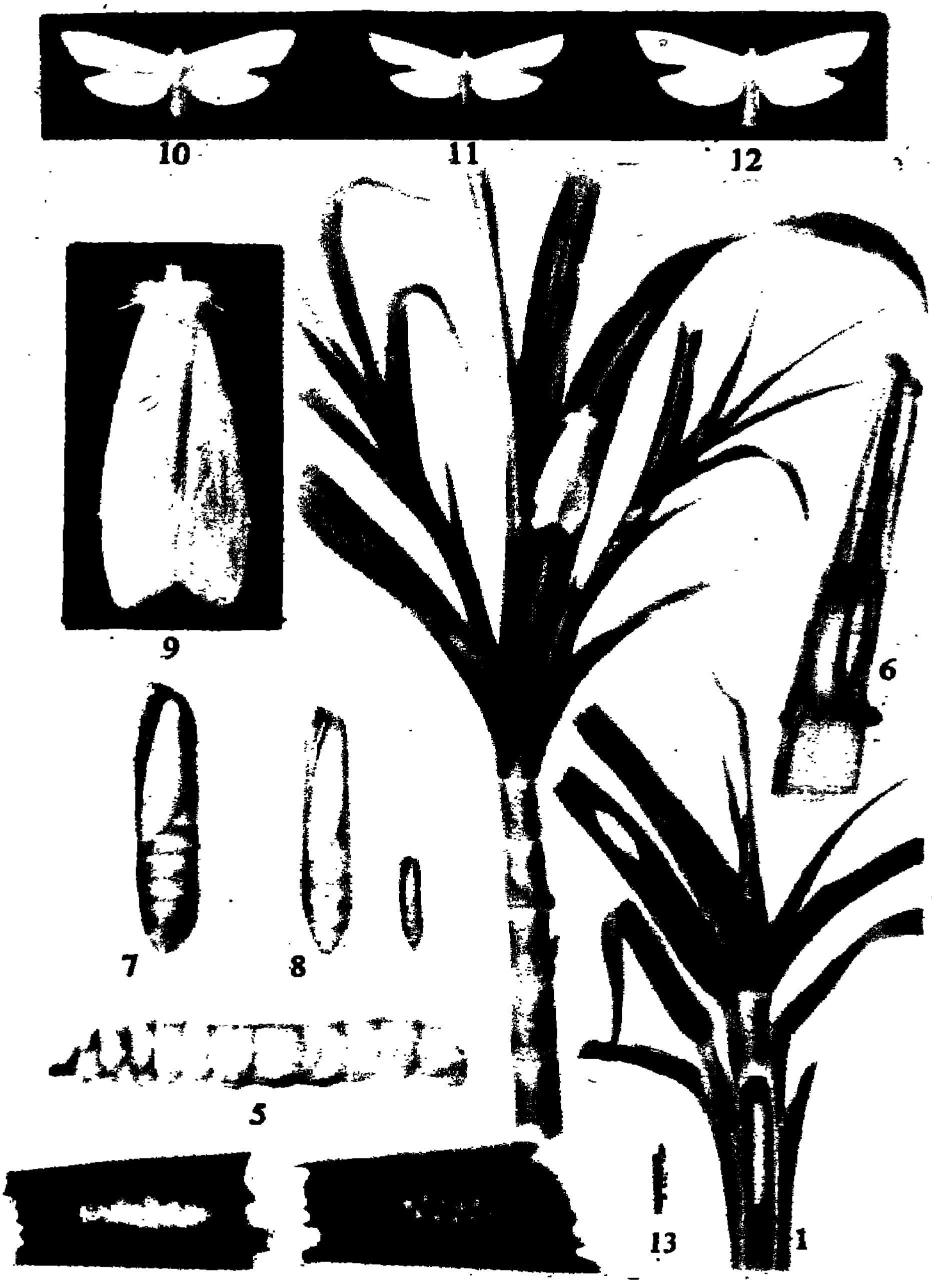
ख. ज्वार पीड़कों का रासायनिक नियंत्रण विशेषकर प्ररोह मक्खी और तना बेधक के संदर्भ में (बाएं) अनुपचारित तथा (दाएं) उपचारित
(सौजन्य : डा. एम. जी. जोतवाणी, मोटे अनाज के कीट वैज्ञानिक, भा.कृ.अ.सं.)



प्लेट-10—बाली बग

1. अंडे अपनी जगह पर 2. अंडे, 3—6. निम्फ अवस्था 7. और 8. नर और मादा प्रौढ़

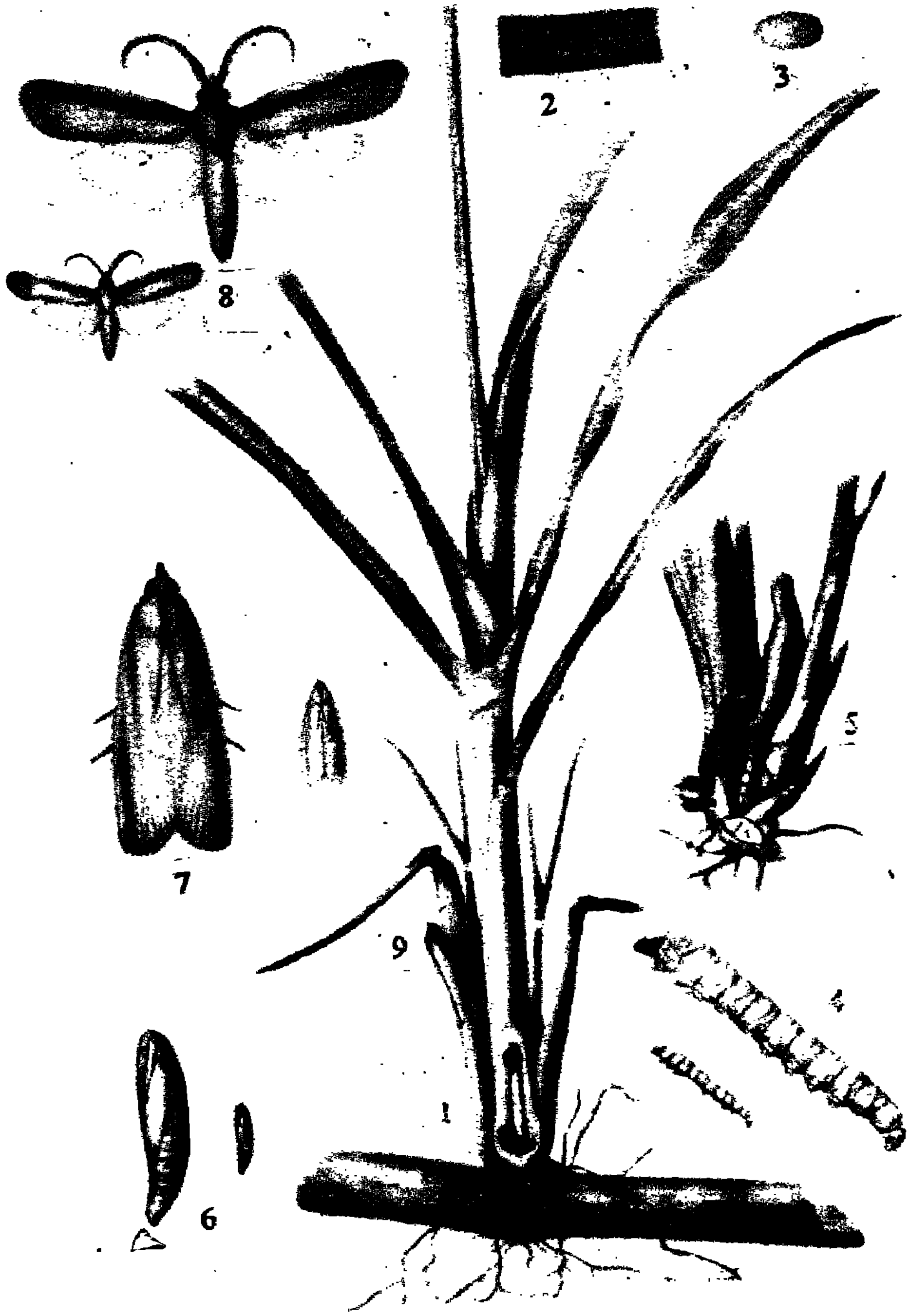
(*पूसा बुलेटिन*, नं. 58)



प्लेट-11—शीर्ष बेधक

1. ईख का आक्रमणग्रस्त प्ररोह जिसके अंदर लार्वा है, पत्ते पर अंडा समूह और मृत केंद्र भी देखें 2. ईख का आक्रमणग्रस्त प्ररोह जिसमें मृत केंद्र हैं और बाहरी प्ररोह बाहर निकाल दिया गया है पत्ते पर आराम की स्थिति में बैठा पतंगा 3. बालों से ढका अंडा समूह 4. बाल हटाये हुए अंडे 5. पूर्ण विकसित लार्वा 6. तने में प्यूपा; पतंग के निकलने के लिए रेशमी अवरोधों से बंद निकास छिद्र देखें 7. मादा का प्यूपा 8. नर का प्यूपा 9. प्राकृतिक ढंग से आराम करता पतंगा 10. लाल गुच्छ बनने के बाद मादा पतंगा 11. नर पतंगा 12. मादा पतंगा पीला गुदा गुच्छ बनने के बाद 13. नया नया निकला लार्वा

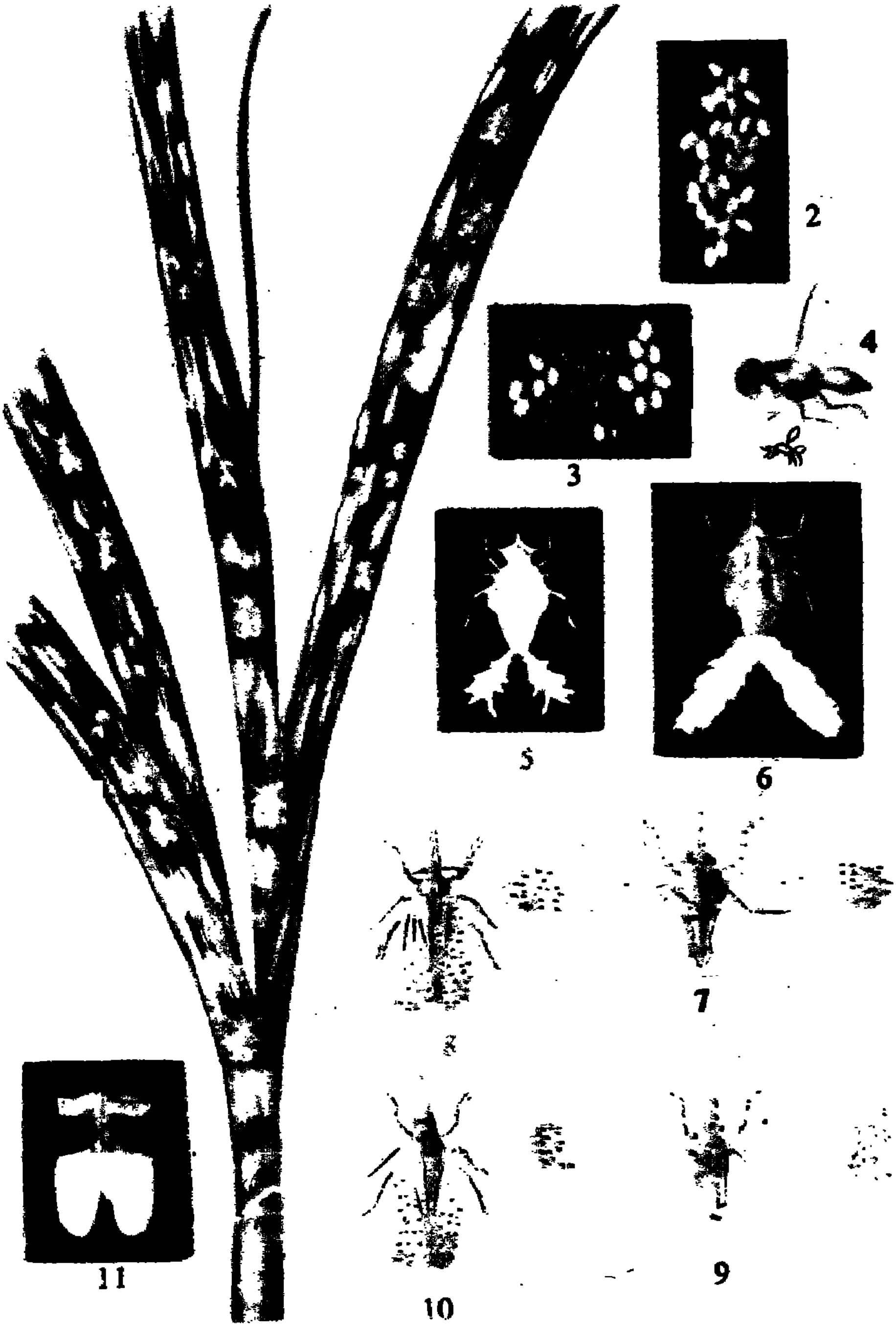
(*तृतीय कीट विज्ञान बैठक की कार्रवाई*, पृष्ठ 381)



प्लेट-12—जड़ बेधक

1. अल्पायु ईख प्ररोह-लार्वा के प्रकोप को दिखाने के लिए काट कर खोला गया, 'मृत केंद्र' देखें 2. पत्ते पर दिए गए अंडे 3. अंडे 4. पूर्ण विकसित लार्वा 5. प्यूपा दिखाने के लिए काट कर खोली गयी ईख, पतंग के निकास के लिए तैयार नली सहित कृमिकोष 6. प्यूपा 7. आराम की स्थिति में मादा पतंगा 8. नर पतंगा

(*तृतीय कीट विज्ञान बैठक की कार्रवाई*, पृष्ठ 379)



प्लेट-13 - पाइरिला

1. पाइरिला की विभिन्न अवस्थाओं से आच्छादित ईख की टहनी 2. अंडे 3. अंडे - इनमें से कुछ परभक्षियों द्वारा संक्रमित हैं 4. अंडा परभक्षी 5. और 6. निम्फ अवस्थाएं 8. और 10. आराम की स्थिति में नर और मादा प्रौढ़ 7. और 9. नर और मादा प्रौढ़ 11. मादा प्रौढ़ का गुदा गुच्छ

(कृषि विभाग, भारत, कीट वि. से (2) प्लेट-10)

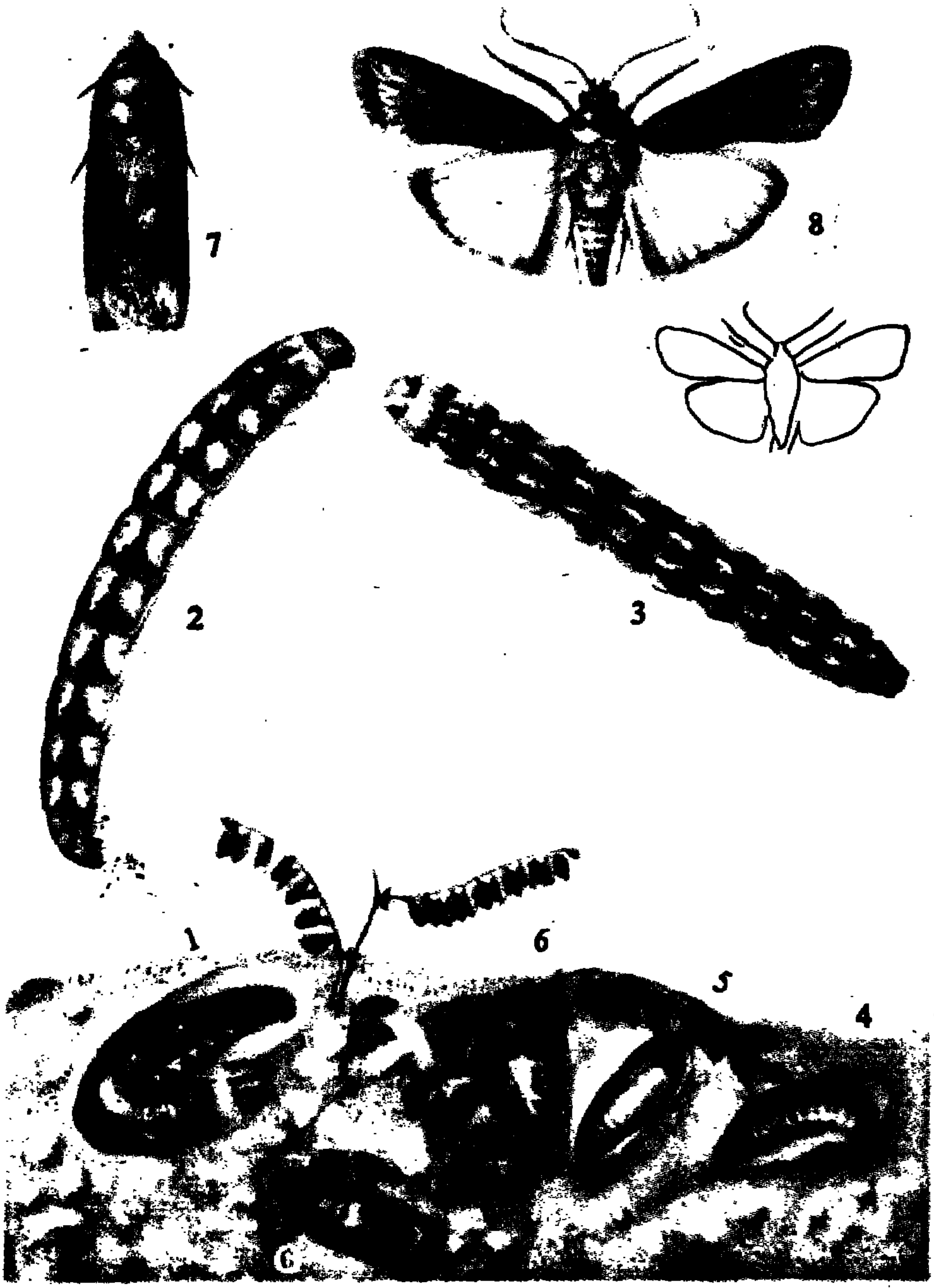


प्लेट-14—चना फली बेधक

(हेलियोथिस ओबसोलेटा, फब.)

1. अरहर की फली पर दिया हुआ अंडा 2. और 5. चने के पौधे पर सूंडी, फली खाते हुए भी 6. भूमिगत कोष्ठ में प्यूपा 7. शांत अवस्था में पतंगा 8. पंख फैलाए हुए पतंगा

(*द्वितीय कीट विज्ञान बैठक की कार्रवाई,* पृष्ठ 49)

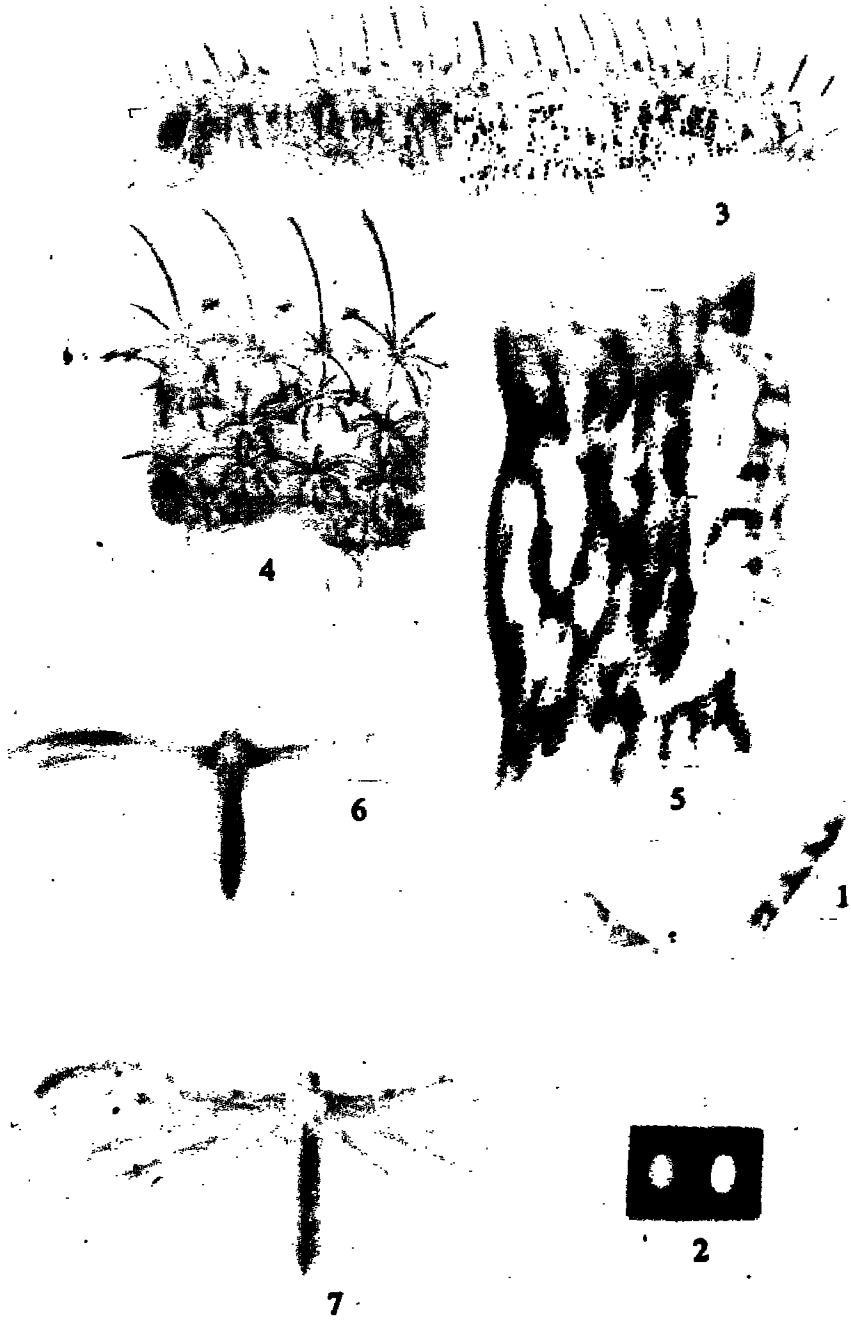


प्लेट-15—कुतरा कीट

(ऐगरोटिस इपसीलोन)

1. कटे हुए पौधे के आधार के पास दिन के समय मिट्टी में छुपी हुई सूंडी (सूंडी दिखाने के लिए मिट्टी हटाई गयी है) 2. और 3. लार्वा 4. प्यूपा कोष्ठ में लार्वा प्यूपा बन रहा है 5. प्यूपा 6. दिन के समय आराम की मुद्रा में पतंगे 7. और 8. पतंगे विश्राम और उड़ान की मुद्रा में

(द्वितीय कीट विज्ञान बैठक की कार्रवाई, पृष्ठ 48)



प्लेट-16—अरहर पिच्छक पतंगा

1. अरहर की फली पर अंडे 2. अंडे 3. लार्वा 4. लार्वा के द्वितीय और तृतीय उदर खंड
5. अरहर की फली पर प्यूपा 6. सामान्य विश्राम की मुद्रा में पतंगा 7. पतंगा
(*इंडियन इंसैक्ट लाइफ,* पृष्ठ 528)

निकलता तेज नुकीला चोंच जैसा थूथन है। इसकी लंबाई लगभग 18 मि.मी. है। पहले इस बारे में थोड़ा भ्रम था कि भारत में इसकी कितनी जातियां हैं, लेकिन अब आमतौर पर यह समझा जाता है कि भारत में पाइरिला की एक ही जाति है। यद्यपि इसकी उपस्थिति यदा कदा ही है, फिर भी यह एक गंभीर पीड़क है और भारत तथा श्रीलंका के लगभग सभी गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में पाया जाता है। पाइरिला के गंभीर प्रकोप का रिकार्ड बताता है कि 1938 में उत्तर प्रदेश में और 1941 में दक्षिण में यह फैला था। यह गन्ना का प्रमुख पीड़क है लेकिन अन्य फसलों को भी इसके द्वारा नुकसान पहुंचाये जाने के समाचार हैं, विशेषकर गन्ने के समीप वाले खेतों में। कई रिपोर्टों में बताया गया है कि बाजरा, ज्वार और मक्का पर भी कई बार इसने घातक हमला किया है।

आमतौर पर अन्य बगों की तरह यह भी पौधे का रस बार बार थोड़े थोड़े अंतरालों पर पत्तों में छेद करके पीता रहता है। यह सोचने की बात है कि जब सैकड़ों, हजारों कीट हर गन्ने के पत्ते से रस पीने में निरंतर व्यस्त रहें तो पौधे को कितनी हानि होगी। प्रत्यक्ष में जब से छोटा-सा निम्फ जन्म लेता है और जब तक वह प्रौढ़ बनकर प्राकृतिक मौत मर नहीं जाता, तब तक पौधे को क्षति पहुंचाता रहता है। पौधे को प्रत्यक्ष घाव देकर और उसका रस पीने के अतिरिक्त ये कीट एक तरह का मीठा तरल पदार्थ छोड़ते हैं जिसे मधुरस कहा जाता है। यह पदार्थ पत्ते पर छा जाता है तथा अन्य कीटों को आकर्षित करता है साथ ही एक प्रकार की काली फफूंदी की वृद्धि को भी उत्साहित करता है। नतीजा यह होता है कि सारी फसल काली काली और कमजोर-सी लगने लगती है जिस पर धूप पर्याप्त न पहुंच पाने के कारण प्रकाश संश्लेषण अच्छा नहीं होता और इससे गन्ने की उपज में ही चिंताजनक गिरावट नहीं आती बल्कि उसमें से जो चीनी निकलती है, वह न तो अच्छी होती है और न ही उसकी मात्रा पर्याप्त होती है।

प्रौढ़ कीट का जीवनकाल अपेक्षाकृत लंबा होता है जो कभी कभी छह माह या इससे भी अधिक हो जाता है। बसंत काल में यह गन्ने के नये नये पौधों के पत्तों पर काफी बड़ी संख्या में अंडे देता है जो एक प्रकार के सफेद तंतुमय पदार्थ से ढके रहते हैं। ये अंडा समूह पत्तों के हरे रंग की पृष्ठभूमि में साफ दिखाई देते हैं। बाद में, पतझड़ के मौसम में सूखे पत्तों के आवरण में अंडे दिये जाते हैं, जो जैविक और मौसमी दोनों प्रकार की प्रतिकूलताओं से सुरक्षा प्रदान करते हैं। एक मादा कई अंडा समूह देती है जिसमें कुल मिला कर कई सौ तक अंडे होते हैं। सामान्य ग्रीष्म और मानसून काल में लगभग 10 दिन में निम्फ निकल आते हैं। यह समय कम तापमान होने पर छह सप्ताह या इससे अधिक तक लंबा खिंच सकता है।

नये नये निकले निम्फ सफेद रंग के और मोम जैसे होते हैं। इनका विशेष लक्षण है इनके शरीर के पिछले भाग में मोमिया, सफेद, ब्रुश जैसे निकले दो तंतु। ये निम्फ उस

समय तक फुदकने वाले जीव बने रहते हैं, जब तक ये कई बार निर्मोचन करके प्रौढ़ नहीं बन जाते, जिनमें पूर्ण रूप से विकसित पंख होते हैं तथा उड़ने की क्षमता होती है। इस क्रिया में एक से लेकर पांच माह तक लग सकते हैं। वर्ष में चार-पांच पीढ़ियां पूरी हो जाती हैं और सामान्यतया यह पीड़क निम्फ के रूप में सर्दियां पार करके बसंत के आरंभ में प्रौढ़ बन जाता है।

इस पीड़क की संख्या को नियंत्रित रखने के लिए प्रकृति में इसके बहुत से शत्रु हैं जो एक के बाद एक प्रकट होते हैं और इसकी वृद्धि को प्रभावी ढंग से रोके रखते हैं। पांच परजीवी और एक परभक्षी कीट लगभग 90 प्रतिशत तक अंडों पर आक्रमण करते हैं। एक लेपिडोप्टेरस परभक्षी और एक विशिष्ट आंतरिक परजीवी जिसे स्टाइलोप्स कहते हैं, निम्फ और प्रौढ़ को सिर काट कर मार देता है। एक फफूंदी परजीवी भी है जो पाइरिला की समष्टि पर जंतुमारी का कारण बनता है।

इसके जीवनवृत का सबसे कमजोर बिंदु अंडा अवस्था है, जिसमें यांत्रिक साधनों से इस पीड़क को प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है। बसंत काल में नयी फसल पर बहुत थोड़ी-सी संख्या द्वारा आक्रमण किया जाता है और यह बहुत कम संख्या में ही अंडा समूह देती है जो पत्ती के हरे रंग के ऊपर स्पष्ट दिखते हैं। इसलिए सबसे अच्छी नीति इन अंडा समूहों को एकत्र कर नष्ट करने की होगी। यदि इस मानवीय अभियान को सफलतापूर्वक नहीं चलाया जा सका हो तब फसल का अच्छे दीर्घस्थायी स्पर्श कीटनाशक द्वारा उपचार किया जाना चाहिए जो फसल में तैयार होने वाले निम्फों और बाहर से आने वाले प्रौढ़ों, दोनों को समाप्त कर सके। बाद में यदि पतझड़ के मौसम में सूखे पत्तों में बहुत से अंडा समूह दिये गये हों, तब इन सूखे पत्तों को पूरी तरह हटाने का अभियान चलाना चाहिए। इन नियंत्रण उपायों में परजीवी और परभक्षियों द्वारा किये गये अच्छे कार्य को भी ध्यान में रखना चाहिए।

नियंत्रण समय सूची

कुछ गंभीर पीड़कों के नियंत्रण उपायों की युक्ति करते समय उनके मुख्य विशिष्ट लक्षण जिनका ध्यान रखना चाहिए :

(क) शीर्ष बेधक और पाइरिला भारी मात्रा में अंडा समूह देते हैं जो हरे पत्तों के ऊपर दूर से भी स्पष्ट नजर आते हैं। इस लक्षण से इन पीड़कों के अंडों के मानवीय संग्रह का उपाय अपनाने में बहुत सहायता मिलती है तथा इनको संग्रह करके नष्ट किया जा सकता है। भारतीय स्थितियों में यह काफी व्यवहार्य है, क्योंकि स्कूल के बच्चों द्वारा बड़ी सरलता से इन क्षेत्रों को साफ कराया जा सकता है। ऐसे अभियान की देखरेख भी सरल है क्योंकि यदि अंडा समूहों का संग्रह उचित ढंग से नहीं किया गया तो इसका पता आसानी से लग सकता है।

(ख) तीनों प्रकार के बेधकों यथा शीर्ष बेधक, तना बेधक और जड़ बेधक एक ही प्रकार के मृत केंद्र फसल के आरंभिक काल में पैदा करते हैं। इस प्रकार प्रभावित प्ररोहों को उपर्युक्त अभियान (क) के साथ साथ हटाया जा सकता है। शीर्ष बेधक के आक्रमण का पता फसल की हर अवस्था में लगाया जा सकता है।

(ग) पाइरिला और बेधक पीड़क दोनों ही अपनी अपनी विभिन्न अवस्थाओं में परजीवियों से ग्रस्त होते हैं। इसलिए नियंत्रण नियोजन बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए।

(घ) सभी प्रकार के बेधक अपने अंडे पौध की सतह पर देते हैं और ऊतकों में घुसने से पहले कुछ मिनट तक अंडों में से निकले लार्वा पौध की सतह पर रेंगते हैं और इस प्रकार कीटनाशक दवाओं के प्रभाव क्षेत्र से बाहर हो जाते हैं। इसीलिए नियंत्रण नियोजन के उपाय बिल्कुल सही समय पर करने आवश्यक हैं।

इन सब बातों पर विचार करते हुए नियंत्रण नियोजन निम्नलिखित तरीके से बनाना चाहिए :

(1) गन्ना बोने वाले किसानों को यह बात अच्छी तरह समझा दी जानी चाहिए कि यह घास कुल की फसल है तथा खेत के आसपास खाली जगहों में यदि ऐसी ही घास रहेगी तो गन्ने के मुख्य पीड़क कीट उनको अतिरिक्त भोजन की तरह काम में ले सकते हैं। इसलिए अच्छा होगा कि खेत के आसपास ऐसी घासें न पनपने दी जायें। यही नहीं पिछली फसल के ठूंठ भी खेत से एकदम निकाल देना गन्ने की सफल खेती के लिए आवश्यक है। यह एक सावधानीपूर्वक उठाया गया कदम है जो पीड़कों के प्रकट होने से पहले ही जरूरी है, बल्कि अगली फसल की बुआई के लिए भी अच्छा है।

(2) अगला कदम बुआई के समय दीमक और जड़ बेधक के आक्रमण के विरुद्ध उठाना चाहिए, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां इनकी समस्या हर साल सिरदर्द बनी रहती है। इसके अंतर्गत उन कूंडों का रासायनिक उपचार करना चाहिए, जिनमें गन्ने की फसल लगानी है ताकि जड़ बेधक का तरुण लार्वा गन्ने के पौधे की ओर बढ़ते समय कीटनाशक के संपर्क में आये और नष्ट हो जाय।

(3) यदि उपर्युक्त कदमों के बावजूद या कोई उपाय न करने के कारण दीमक की समस्या विकराल हो तो खेत में सिंचाई के पानी में एक प्रतिकर्षी अथवा उपयुक्त कीटनाशक मिला देना चाहिए। यह उपाय बार बार न अपनाकर जब आवश्यक हो, तभी करना चाहिए।

(4) जैसे ही नयी फसल में मृत केंद्र अथवा बेधकों और पाइरिला के अंडा समूह दिखाई दें, इनके सफाये के लिए बड़े पैमाने पर अभियान चलाने चाहिए। इनके संग्रह के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित मजदूरों को लगाना चाहिए तथा अंडा समूहों को चुन चुन कर समाप्त कर देना चाहिए। चूंकि नियंत्रण का यह उपाय पीड़कों की कई जातियों के विरुद्ध है और

पिछले वर्षों के अनुसार यह आवश्यक है कि प्रतिवर्ष कोई न कोई पीड़क प्रकट होगा। इसलिए जहां तक इनके मानवीय नियंत्रण का प्रश्न है, कोई कसर नहीं छोड़नी चाहिए। गन्ने की फसल के लिए यह जरूरी कृषि कार्य है और इसे उस समय तक करते रहना चाहिए, जब तक लक्षण प्रकट होते रहें।

(5) पाइरिला और शीर्ष बेधक दोनों ही कई बार परजीवियों से भारी रूप में त्रस्त होते हैं। इसीलिए इनके परजीवियों को बचाये रखने के लिए अंडा समूहों को तार की जाली के पिंजड़ों में रखना चाहिए जिससे छोटे छोटे परजीवी उड़ कर बाहर निकल सकें पर पाइरिला के निम्फ और बेधक के लार्वा या तो पिंजड़े में ही रह जायें या मिट्टी का तेल मिले पानी में गिरा दिये जायें। इस बारे में विस्तार कार्यकर्ताओं को चाहिए कि वे किसानों को भली प्रकार सिखायें।

(6) यदि ऊपर लिखे उपायों को भली प्रकार किया गया है तथा पड़ोस के क्षेत्र से भारी संख्या में पीड़कों का आगमन नहीं हुआ है तो फसल के मुख्य मौसम में समस्या का स्वरूप बहुत मामूली ही रह जाना चाहिए। साथ ही किसानों को कड़ी नजर भी लगातार रखनी चाहिए और जैसे ही आवश्यकता पड़े, नियंत्रण उपाय अपनाने चाहिए। मुख्य मौसम के दौरान भी पाइरिला और शीर्ष बेधक के अंडे तथा बेधकों से प्रभावित दौजियों को एकत्र करके नष्ट करते रहना चाहिए। लेकिन आमतौर पर मुख्य मौसम में रासायनिक उपचार भी करना पड़ेगा। पाइरिला का कई प्रकार के स्पर्श कीटनाशकों से नियंत्रण किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए ऐसे समय का निर्धारण किया जाना चाहिए ताकि उस समय अंडों में से लार्वा निकलने का समय हो और लार्वा की प्रथम अवस्था गन्ने में प्रवेश करने से पहले ही समाप्त हो जाय। इस उद्देश्य के लिए ऐसे कीटनाशक का चयन करना चाहिए जो कुछ समय तक टिकाऊ रहे तथा बाद में इस रासायनिक नियंत्रण के साथ साथ जैविक नियंत्रण भी मिला लेना चाहिए। यदि कुटकी भी प्रकट हो जाय, तो बेहतर होगा कि ऐसा रसायन चुना जाय जो कीट और कुटकी दोनों के लिए प्रभावी हो बजाय इसके कि केवल कुटकी के लिए प्रभावी गंधक जैसा विशेष रसायन।

गन्ना पीड़कों के नियंत्रण अभियान के लिए जो ऊपर समय सूची बताई गई है, इसके लिए हमने कीटनाशकों आदि की सिफारिश का विवरण देने की कोशिश नहीं की है। क्योंकि जो आंकड़े उपलब्ध हैं, उनका पूर्ण तालमेल नहीं हुआ है जो कि समन्वित पीड़क रोधी नियंत्रण नियोजन के लिए जरूरी है। दूसरे वे प्रत्येक पीड़क के लिए पृथक पृथक परीक्षित हैं। ये पृथक परीक्षण आधारभूत सूचनाओं के लिए बहुत आवश्यक हैं। लेकिन प्रत्येक उपचार की अंतिम सापेक्ष प्रभाविता और प्रत्येक अभियान का बड़े पैमाने पर परीक्षण और विश्लेषण करना आवश्यक है ताकि एक तरफ तो उसके व्यवहार के बारे में विश्वस्त सूचना उपलब्ध हो और दूसरी ओर यह जानकारी मिले कि फसल की विद्यमान सामान्य नियोजन के अंतर्गत उसका समुचित उपयोग कैसे हो।

6

दलहनी फसलों के पीड़क

भारत की अधिसंख्य शाकाहारी जनसंख्या के लिए प्रोटीन प्राप्ति का मुख्य स्रोत दालें हैं। पीड़क नियंत्रण की दृष्टि से इन फसलों की मुख्य विशेषता यह है कि इन्हें कई उद्देश्यों के लिए बोया जा सकता है : कुछ को केवल समृद्धिकरण के लिए बोया जाता है। वातावरणीय नाइट्रोजन से हरित खाद बनाकर मृदा के उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए भी इन्हें उगाया जा सकता है। कुछ इसकी फलियों की सब्जी की रूप में उपयोगिता के लिए उगाते हैं तो कुछ के लिए इसकी फसल से अन्न मिलता है। कई बार इन्हें उपर्युक्त एक से अधिक उद्देश्यों के लिए भी उगाया जाता है। उदाहरण के लिए कुछ दलहनी फसलों के कच्चे प्ररोह साग सब्जी बनाने के काम आते हैं। कई बार इन प्ररोहों को मनुष्य खेत में बिना धोए खा लेता है। दलहनी फसलों के इस विविधतापूर्ण उपयोगों को ध्यान में रखते हुए इसमें बचे कीटनाशक अवशिष्टों से होने वाली भयानक स्वास्थ्य समस्या के प्रति अत्यंत सावधान रहने की आवश्यकता है।

यद्यपि दलहन की 10 भिन्न किस्मों पर आक्रमण करने वाली 150 कीट जातियां हैं, किसानों के लिए आमतौर पर कुतरा कीट और अन्य पीड़क सूंडियां, और पर्ण सुरंगी के रूप में कार्य करने वाले एग्रोमायजिड मक्खी मैगट तथा तना बेधक और फली मक्खी चिंताजनक हैं। इसीलिए इनमें से हर समूह के कुछ उदाहरणों का विवरण देना आवश्यक है।

चना फली बेधक

(हीलियोथिस आर्मीजेरा हिबनेर*)*[1]

(प्लेट-14)

हीलियोथिस की विभिन्न जातियां विश्व भर में व्याप्त हैं और विविधभक्षी हैं। अमेरिका

1. *Heliothis armigera* Hiibner

में यह कपास का भयंकर पीड़क है और वहां अमेरिकन कपास डोडा सूंडी के रूप में इसे जाना जाता है। भारत में अभी तक यह कपास का कम महत्वपूर्ण कीट रहा है। हां, अब सूचना मिल रही है कि नयी उच्च पैदावार वाली किस्मों, विशेषकर महाराष्ट्र और दक्षिण राज्यों में यह चिंता का विषय बना हुआ है। ज्वार के भुट्टे पर भी इस पीड़क के भयानक आक्रमण की सूचना है। यह अरहर और चने जैसी रबी फसलों का गंभीर पीड़क है। इसी कारण भारत में इसे चना फली बेधक के आम नाम से जाना जाता है।

प्रौढ़ अवस्था में यह एकदम स्थूल बनावट वाला नोक्टुइड पतंगा होता है। इसके पंखों का विस्तार 30 से 40 मि.मी. तक और रंग जैतूनी-धूसर से लाल भूरा होता है। अगले पंखों के बाहरी हिस्से पर गहरा क्षेत्र होता है और एक गहरा दाग मिलता है। पिछले पंख पर गहरी किनारी बनी होती है। यह खाद्य पौधों के कोमल हिस्सों पर एक एक करके अंडे देता है। अंडे गोलाकार, उभरे हुए चिह्न लिए हरी-सी चमक वाले होते हैं। अंडा अवस्था तापमान के अनुसार कुछ दिन से लेकर एक सप्ताह से अधिक भी हो सकती है। नव लार्वा पत्तों के कोमल हिस्सों और प्ररोहों को खाना आरंभ करते हैं। जैसे जैसे लार्वा बड़ा होता है और फसल में फलियां बनने लगती हैं, तो प्रायः देखने में आता है कि ये फली में छेद करके अपना मुंह डालकर बनते हुए दाने को खाते हैं। लार्वा का रंग और आकार भिन्न भिन्न होता है। पूर्ण विकसित सूंडी लगभग 35 मि.मी. तक लंबी हो जाती है। रंग पद्धति बदलती रहती है और कई प्रकार के संयोग वाली होती है जिसमें पीली-हरी या पीली-भूरी धारियां किनारों के साथ साथ लंबवत होती हैं। लार्वा काल कोई दो सप्ताह तक रहता है जिसके बाद वह भूमि में प्रवेश कर मिट्टी का कृमिकोष बनाता है और तब प्यूपा बनता है। प्यूपा का रंग गहरा भूरा और लंबाई लगभग 12 मि.मी. होती है। प्यूपा बनने के एक सप्ताह बाद पतंगा निकलता है। एक ही वर्ष के दौरान इसकी पीढ़ियों की संख्या आठ तक पहुंच जाती है।

पहले इस पीड़क का नियंत्रण बहुत कठिन था। इसके लिए जो अकार्बनिक उदर विष उपलब्ध थे वे प्रभावी नहीं थे, क्योंकि इसका लार्वा फली के अंदर छेद करके दाना खाता रहता था और बाहरी सतह पर छिड़के हुए विष से अप्रभावित रहता था। लेकिन अब ऐसे दीर्घस्थायी कीटनाशक उपलब्ध हैं, जो स्पर्श और उदर दोनों प्रकार से प्रभावी होते हैं। इसलिए अब इसका नियंत्रण आसान हो गया है, केवल विभिन्न क्षेत्रों में कीटनाशक का प्रयोग उचित समय पर ही करना चाहिए।

कुतरा कीट

(एग्रोटिस स्पी.*)*[1]

(प्लेट-15)

सर्दियों के मौसम में पीड़क कीटों की गतिविधियां सीमित हो जाती हैं। कुतरा कीट अपेक्षाकृत उस छोटे से वर्ग के पीड़क हैं, जिनकी गतिविधियां रबी फसल में अधिक देखी जाती हैं। इन्हें कुतरा कीट इसलिए कहा गया है, क्योंकि ये छोटे पौधों वाली फसलों जैसे चने को या उसकी शाखाओं को पूरा ही काट कर गिरा देते हैं। इन्हें सतही सूंडी भी कहा जाता है, क्योंकि इनकी गतिविधियां अधिकतर मिट्टी के कुछ सें.मी. ऊपर तक ही सीमित रहती हैं। इनका संयुक्त नाम नोक्टुइड पतंगों की कई प्रजातियों के लिए प्रयुक्त होता है, जो कई प्रकार के रात्रिचर पतंगों से जुड़े हैं, विशेषकर एग्रोटिस और यूक्सोआ वंश की जातियां। इनमें *एग्रोटिस इप्सिलान* हुफनाजेल[2] सबसे आम और व्यापक विस्तार वाला है। इसे चिक्कट कुतरा कीट भी कहते हैं, क्योंकि इसकी पूर्ण विकसित सूंडी देखने में चिक्कट-सी लगती है। निम्नलिखित विवरण इस जाति के अध्ययन पर आधारित है। हालांकि ऐसे कई लक्षण कुछ अन्य प्रजातियों पर भी लागू होते हैं।

प्रौढ़ अवस्था में यह लाल-सी रंगत वाला गहरा भूरा पतंगा होता है, जिसका लंबवत आकार 25 मि.मी. और पंखों का विस्तार 40-50 मि.मी. होता है। दिन के उजाले में ये पत्तों के नीचे, भूमि की तरेड़ों और दरारों में छिपे रहते हैं। उस समय यदि इन्हें छेड़ा जाय तो ये मृत होने का बहाना करते हैं। यदि इन्हें अधिक छेड़ा जाय तो ये और अधिक अंधेरी जगहों पर दौड़ते हैं। इन्हें गोधूलि बेला से गहरा अंधेरा होने तक अक्सर उड़ते देखा जा सकता है। इसके बाद ये अंड निक्षेपण आरंभ करते हैं। ये अधिकतर मिट्टी के समीप पत्तों के पृष्ठ भाग में अंडे देते हैं। अंडे समूहों में दिये जाते हैं और प्रत्येक समूह में कोई 30 अंडे होते हैं। हालांकि प्रत्येक पतंगा हजारों अंडे दे सकता है। प्रत्येक अंडा गोल, उभरा हुआ और हरी सफेद आभा वाली नसों के निशान लिए होता है। अंडों में से लार्वा दो से छह दिन में निकल जाते हैं और नव लार्वा सबसे पहले अपने अंडों के आवरण को खाना आरंभ करते हैं। ये हल्की-सी आहट पर नीचे गिरकर वहीं पड़े हुए पत्तों के अंदर छुप जाते हैं। यहां ये पत्तों की बाह्य छाल या भूमि को छू रहे हरे पत्तों को खाते हैं। लार्वा जब अर्द्ध विकसित हो जाते हैं तो दिन के उजाले में वे अपने आप को ढीली मिट्टी में छुपाने की आदत डालते हैं। ये व्यवहार में सामान्यतया रात्रिचर होते हैं, लेकिन यदि बड़े झुंड में हों तो दिन में भी बाहर निकलते हैं और केवल दिन के सर्वाधिक गर्म घंटों में ही छुपने का

---

1. *Agrotis* spp.
2. *Agrotis ipsilon* Hufnagel

प्रयास करते हैं। रात में ये बाहर निकलते हैं और पत्ते या प्ररोह को काटकर मिट्टी के अंदर ले जाते हैं। यह आंशिक दबा हुआ प्ररोह लार्वा के छुपने के स्थान का निश्चित पता बताता है। कई बार लार्वा सतह से एकदम ऊपर या नीचे से भी पौधे को काट देते हैं। इस तरह इस पीड़क की विशेषता यह है कि जितना यह खाता है उससे कहीं अधिक नुकसान करता है। पूर्ण विकसित सूंडी 40-45 सें.मी. लंबी, गोल-मटोल, चिकनी, देखने में सपाट और धूसर भूरे रंग की होती है। प्रथम अवस्था के लार्वा की चाल अर्द्ध कुंडलक जैसी कूबड़ वाली होती है। यह लक्षण प्रथम निर्मोचन के बाद दिखाई नहीं देता। यह हल्की-सी छेड़छाड़ होने पर ही कुंडली मार लेते हैं। चार-पांच सप्ताह के लार्वा जीवन के बाद कुतरा कीट अपनी सामान्य गतिविधि के समय की अपेक्षा मिट्टी में और गहरे चले जाता है, मिट्टी का कोष्ठक बनाता है, जिसकी दीवार कठोर और मुलायम बनाने के लिए वह अपने मुंह से एक पदार्थ निकालता है। इसी कोष्ठक में प्यूपा बनता है। प्यूपा की कोषावस्था लंबाई लगभग 20 मि.मी. होती है। प्यूपा अवस्था तापमान के अनुसार 10 से 30 दिन या अधिक तक रह सकती है। इसके बाद पतंगा निकलता है और एक नयी पीढ़ी की शुरुआत होती है।

इस पीड़क की गतिविधियां विशेषकर उत्तर भारत में बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल में अधिक गंभीर हैं। यहां यह कभी कभी अक्तूबर में आक्रमण करता है और रबी में सामान्यतया दिसंबर-जनवरी के दौरान इसका प्रकोप सर्वाधिक होता है। हालांकि यह विविधभक्षी है, लेकिन चना, तंबाकू और आलू पर यह अधिक होता है। ये बहुत अधिक स्वजाति भक्षी भी होते हैं। कई बार तो लार्वा अपने ही शरीर को काट लेता है। उन क्षेत्रों में जहां पिछले मानूसन के दौरान बाढ़ आई हो, इसका आक्रमण ज्यादा हो जाता है। जिन क्षेत्रों में हर वर्ष जलाप्लावन होता रहता है, वहां ये हर वर्ष प्रकट होते हैं। इसकी इन विशेषताओं के कारण अब तक ज्ञात नहीं हुए हैं। रबी के दौरान इसके प्रकट होने का कारण यह नहीं है कि अन्य कीटों से भिन्न इसके लिए सर्दियों का तापमान बेहतर होता है। अध्ययनों से पता चला है कि इस पीड़क का विकास अन्य कीटों की तरह सर्दियों की अपेक्षा गर्मियों में अधिक होता है। फिर भी, इसका आक्रमण गर्मियों की अपेक्षा सर्दियों में अधिक होता है। एक विचार यह भी है कि गर्मियों में पतंगे पहाड़ियों पर चले जाते हैं। यह भी हो सकता है कि सर्दियों में इसके परभक्षी शीतनिष्क्रिय अवस्था में चले जाते हैं, इसलिए इनका प्रकोप उस समय अधिक होता है तथा गर्मियों में इन्हें परभक्षियों से बहुत हानि होती है। यह भी संभव है कि इसके परभक्षी छोटे कीटों की अपेक्षा स्थूल लार्वा के प्रति अधिक आकर्षित होते हैं। यही विचार बाढ़ वाले क्षेत्रों में इसकी व्यापकता का कारण हो सकते हैं, क्योंकि बाढ़ के कारण इसके परभक्षी नष्ट हो सकते हैं। ऐसा बताया जाता है कि जब पानी घट रहा होता है तो पतंगा गीली मिट्टी की सुगंध के प्रति आकर्षित

होता है। इस बारे में भी अध्ययन किये गये हैं कि स्वयं कुतरा कीट की विभिन्न अवस्थाओं पर बाढ़ का क्या प्रभाव पड़ता है। अंडे लगभग पांच दिनों तक पानी में डूबे रह सकते हैं; छोटे लार्वा पानी के ऊपर कुंडली मारे तैर सकते हैं और किसी सूखे स्थान पर जाकर जीवित रह सकते हैं अन्यथा डूब कर मर भी जाते हैं। बड़े लार्वा पानी में 15 मिनट तक संघर्ष करते हुए शिथिल पड़ जाते हैं। यदि वे बहुत देर तक पानी में रहने से बच जायें तो पुनः सक्रिय हो सकते हैं, प्यूपा आठ घंटे तक पानी में जीवित रह सकता है। लेकिन यदि कीचड़ में फंस जाय तो मर जाता है। लार्वा और प्यूपा दोनों ही सीधी धूप के प्रति अत्यंत संवेदनशील होते हैं और उसमें जल्दी ही कुम्हला जाते हैं।

पहले इस पीड़क का बड़े पैमाने पर नियंत्रण करना कठिन समझा जाता था और लार्वा को हाथ से चुन कर नष्ट करने का व्यावसायिक सुझाव दिया जाता था। लेकिन यह बड़े लार्वा के बारे में ही संभव था, क्योंकि उसकी उपस्थिति का पता उसके द्वारा काट कर गिराये गये पौधों से लग जाता था। ये विषाक्त आहार के प्रति भी आकर्षित होते हैं। हाल ही के वर्षों में इन पर कीटनाशक चूर्ण भुरकने की भी सिफारिश की गई है। इसके लिए सबसे उपर्युक्त उपाय मिट्टी का किसी अच्छे दीर्घस्थायी कीटनाशक द्वारा उपचार किये रखना है ताकि अंडे से निकलते ही नए लार्वा उसके संपर्क में आयें और नष्ट हो जायें।

पिच्छक शलभ सूंडी

(एक्जेलास्टिस एटोमोसा वालसिंघम*)*[1]

(प्लेट-16)

यह कीट अरहर का एक विशिष्ट पीड़क है और कई बार यह इस फसल को भारी क्षति पहुंचाता है। हालांकि यह कई एकांतर परपोषी पौधों पर भी निर्भर है। यह अरहर उगाने वाले भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। इसके भारत से बाहर नाटाल, न्यू गिनी आदि में भी मिलने के समाचार हैं। कई बार इसकी उपस्थिति एक इसी प्रकार के अन्य पिच्छक शलभ (*स्फेनार्किस काफर* जैल.)[2] के साथ साथ देखी गयी है जो इस कीट के विपरीत कुकरबिटेसी वर्गीय पौधों का भी भक्षण करता है। इसकी सूंडी अरहर की फली में दाने के सामने छेद बनाती है और अंदर पनप रहे दाने को छेद में मुंह डालकर खा जाती है। जब एक दाना खत्म हो जाता है तो सूंडी दूसरे दाने के सामने छेद बनाकर इसी तरह उसे खा जाती है और इस प्रकार यह पनप रही फलियों के अधिकतर दानों को चट कर जाती है, जिससे दाने खत्म हो जाते हैं और फिर नहीं बनते।

1. *Exelastis atomosa* Walsingham
2. *Sphenarches caffer* Zell.

इसका प्रौढ़ छोटा-सा सुंदर हरा भूरा पिच्छक जैसा पतंगा होता है (लंबाई 7 मि.मी. और पंख विस्तार 15 मि.मी.) जैसा कि इसके नाम से पता चलता है। यह टेरोफोरीडी कुल से संबद्ध है जिसमें पिच्छक पतंगों की बहुत-सी जातियां होती हैं। इसके प्रत्येक पंख में कई लंबवत धब्बे जैसे तंतुमय बौर होते हैं, जो पिच्छक बनाते हैं। जब पतंगा विश्राम की मुद्रा में होता है तो ये उसके शरीर पर दोनों ओर समकोण बनाते हैं और शानदार तरीके से लगे रहते हैं। यह गोधूलि में उड़ता नजर आता है और दिन में पत्तों के निचले भागों और अन्य सुविधाजनक स्थानों में छुपा रहता है। वास्तव में यह अपने अगले पैरों के सहारे पौधे से लटका रहता है। इसका जीवन अपेक्षाकृत दीर्घ होता है, जिससे अंडे देने के लिए उपयुक्त अवसर की कई दिनों तक प्रतीक्षा कर सकता है। ये पतंगे खाद्य पौधे की मुलायम फलियों पर एकल अंडे देते हैं। कुछ ही दिनों में प्रत्येक अंडे में से लगभग एक मि.मी. लंबा, एक छोटा-सा लार्वा निकल आता है। ये लार्वा सबसे पहले फली को खुरचकर आहार प्राप्त करते हैं और उसके बाद उसमें छेद बनाते हैं। कई बार ये अनखुली पुष्प कलियों में बेधकर विकासशील परागकोश (एन्थर) से आहार प्राप्त करते हैं। दो से चार सप्ताह में लार्वा पूर्ण विकसित हो जाते हैं और इस समय उनकी लंबाई 7 मि.मी. होती है। लार्वा के रंग का संयोजन हरी और भूरी रंगत का कई प्रकार का होता है और इस प्रकार यह उस फली, जिस पर यह रहता है, के रंग में ढलकर लगभग लुप्त हो जाता है। इसकी एक लाक्षणिक विशेषता यह है कि इसके शरीर पर बालों और कंटीले स्तबों (रोजेट) के कई गुच्छे होते हैं। फली पर या क्षतिग्रस्त खाली फली के अंदर इसका प्यूपा बनता है। लार्वा की भांति इसका कोशस्थ 'क्राईसेलिस' भी कंटीले स्तबों वाला होता है। इसका रंग भी लार्वा जैसा ही रहता है। प्यूपा अवस्था प्रचलित तापमान के अनुसार तीन दिन से एक सप्ताह तक रहती है। इसके जीवनवृत में कोई निश्चित उपरति नहीं है और यदि उपयुक्त वातावरण और खाद्य पौधे मिलें तो यह पीड़क वर्ष भर आहार ले सकता है।

चूंकि लार्वा फली के अंदर नहीं रहता, इसलिए इसे किसी भी अच्छे दीर्घस्थायी कीटनाशक द्वारा जो स्पर्श और उदर विष दोनों होता है, आसानी से मारा जा सकता है। जैसे ही फसल में फलियां बनने लगें, उसका उपचार करना चाहिए।

पर्ण सुरंगी और अन्य एग्रोमाइजिड मक्खियां

(प्लेट-17)

पत्तियों में सुरंगों का अनदेखा प्रतिरूप एक आम दृश्य है और किसी का भी ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। कई प्रकार के कीटों के लार्वा उस वर्ग में आते हैं, जो पत्तों

में इस प्रकार सुरंग-सी बना लेते हैं। दलहनी फसलों में महत्वपूर्ण पर्ण सुरंगी पीड़क एक विशेष कुल से संबद्ध हैं, जिसे एग्रोमाइजिड मक्खी कहा जाता है। एग्रोमाइजिडी कुल में ऐसी बहुत-सी छोटी और बहुत छोटी जातियां शामिल हैं। इनका रंग सामान्यतया काला धूसर और रजत जैसा होता है। इनके लार्वा अक्सर पर्ण सुरंगी होते हैं अथवा तनों या फलियों आदि में रहते हैं। इनमें मुख्य हैं - मटर पर्ण सुरंगी[1], मटर तना बेधक[2], और अरहर फली मक्खी[3]। इन सभी पीड़कों का जीवन चक्र लगभक एक जैसा है। उदाहरण के लिए मटर तना बेधक भी अपनी लार्वा गतिविधि पर्ण सुरंगी के रूप में आरंभ करता है और बाद में पर्ण वृंत द्वारा तने में अपना कार्य आरंभ करता है। अरहर फली मक्खी का लार्वा भी पहले विकासशील बीज की बाह्य छाल में टेढ़ी-मेढ़ी नालियां (सुरंगें) बनाता है और बाद में उसके अंदर छेद करता है। इस पीड़क के सामान्य नामों से आभास होता है जैसे ये किसी विशेष फसल के हों, पर ये बहुभक्षी होते हैं और कई प्रकार के अंतःक्रिया कारकों के कारण ये उस फसल को गंभीर हानि पहुंचाते हैं जिसके पीछे इनका नामकरण हुआ है। इनमें से अधिकतर कीट शीतोष्ण जलवायु में अच्छी तरह फलते-फूलते हैं और विश्व के शीतोष्ण प्रदेशों में पूरी तरह व्याप्त हैं। भारत में इनकी गतिविधि मुख्यतया शीतोष्ण मौसम तक सीमित है अर्थात बसंत और पतझड़ के दौरान तथा यदि बहुत अधिक ठंड नहीं है तो शीतकाल में भी। इस प्रकार भारत में अधिकतर यह रबी फसलों का ही पीड़क है।

विशिष्ट पर्ण सुरंगी[1] की चर्चा यहां कुछ विस्तार से की जा रही है। भारत में सर्वप्रथम सन् 1906 में वैज्ञानिकों का ध्यान इसकी ओर गया और उस समय इसे क्रूसीफेरस पर्ण सुरंगी कहा गया क्योंकि इसे तब पहली बार बंदगोभी कुल के पौधों को क्षति पहुंचाते पाया गया था। भारत के अलावा यह यूरोप, अमेरिका, रूस, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि में भी काफी व्याप्त है और वहां यह क्षति वाले पौधों के नामों के अनुसार अलग अलग नामों से जाना जाता है। भारत में यह 13 कुलों के 29 आर्थिक महत्व के पौधों पर देखा गया है। विश्व में ऐसी कुल जातियों की संख्या 90 तक है।

इसका प्रौढ़ एक छोटी-सी मक्खी होती है, जिसकी लंबाई लगभग 1.5 मि.मी. और पंख विस्तार 4 मि.मी. से कम होता है। इस मक्खी की आदतों का एक दिलचस्प पहलू यह है कि यह आहार और अंडे देने की क्रिया साथ साथ करती है। यह अपने अंड निक्षेपक से कोमल पत्तों को छेदती है और बाद में इस छेद से निकले पौधे के रस को पीती है। प्रत्येक मक्खी हर पत्ते पर ऐसे कई छिद्र बनाती है जो सभी बाद में उभरे हुए से हो जाते हैं। इनमें से कुछ छिद्रों में मक्खी एक एक अंडा देती है। चूंकि अंड निक्षेपक अंग केवल

1. *Phytomyza atricornis* Meigen 2. *Melanagromyza phaseoli* Coquillett
3. *Agromyza obtusa* Mallas

मादा मक्खी में ही होता है, इसलिए नर मक्खी ये छिद्र नहीं बना पाती। वह रस पीने के लिए मादा मक्खी के पास बैठी प्रतीक्षा में रहती है कि कब मादा वहां से हटे और उसे रस चाटने को मिले। प्रत्येक मादा अपने लगभग एक माह के जीवन काल में 350 अंडे देती है। अंडे बहुत छोटे (0.3 मि.मी. लंबे) और लंबवत अंडाकार होते हैं। इनमें से डेढ़ से पांच दिन में छोटे मैगट निकलते हैं जो पत्ते के पर्ण मध्यक पर, बिना बाह्य छाल सतहों को हानि पहुंचाए आहार शुरू कर देते हैं। इससे टेढ़ी मेढी नालियां बनना आरंभ हो जाती हैं। 4 से 12 दिन में लार्वा पूर्ण विकसित हो जाता है, जिसकी लंबाई 3 मि.मी. होती है। इसके बाद यह अपनी अंतिम लार्वा त्वचा में प्यूपा बनता है जो कुछ ही समय में कठोर हो जाती है। प्यूपा का रंग लाल-भूरा या गहरा भूरा हो जाता है। प्यूपा अवधि 6 से 12 दिन के बीच रहती है और तब उसमें से एक पूर्ण मक्खी नयी पीढ़ी का आरंभ करने के निकल आती है।

दिल्ली के मौसम में मक्खी दिसंबर या जनवरी में किसी समय प्रकट होती है और फरवरी तथा उसके आगे इसकी गतिविधियां बढ़ती हैं। मई और उसके बाद में इस पीड़क के लिए मौसम अत्यंत गर्म और शुष्क हो जाता है। यह फरवरी से अप्रैल तक चार-पांच पीढ़ियां पूरी कर चुका होता हैं। ग्रीष्म और शरद का कुछ भाग खेत की स्थितियों में प्यूपा अवस्था में बीत जाता है। यदि प्रयोगशाला में उचित तापमान और आर्द्रता उपलब्ध कराई जाय तो यह कीट बिना किसी व्यवधान के वर्ष भर अपनी पीढ़ियां बढ़ाता रहता है। जहां तक इस पीड़क के प्राकृतिक शत्रुओं का सवाल है, लार्वा के एक आंतरिक परभक्षी का पता चला है, जिसका अध्ययन किया गया है।

इस पीड़क से फसल को बचाने के उपायों के अंतर्गत सर्वप्रथम तो आक्रमण की शुरुआत में ही पौधों के क्षतिग्रस्त भागों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए ताकि पहली अवस्था में ही आक्रमण को दबा दिया जाय और उसको बढ़ने से रोक दिया जाय। यह आसान भी है, क्योंकि आरंभ में पीड़क की संख्या कम होती है और आक्रमणग्रस्त भागों का पता भी आसानी से लग जाता है। फली मक्खी के विषय में भी अरहर की आक्रमणग्रस्त फली विशेष प्रकार से मुड़ी और विकृत नजर आती है। अगला उपाय फसल का कीटनाशक द्वारा उपचार किया जाना है। इसके लिए ऐसा कीटनाशक चुना जाय जो टिकाऊ हो, फैलने वाला स्पर्श विष हो। इससे प्रथम तो वे मक्खियां विष के संपर्क में आकर मरेंगी जो पत्तियों पर छिद्र करती हैं और दूसरे इससे पर्ण सुंरगी का लार्वा भी मारा जायेगा, क्योंकि लार्वा द्वारा बनाई गई बाह्य छाल के आवरण की नलियां स्पर्श कीटनाशक के प्रति अधिक बचाव प्रदान नहीं कर सकतीं। प्रौढ़ों के लिए विष आहार की भी सिफारिश की गई है।

माहू

आम भाषा में इन कीटों को पहले पौधों की जूं कहा जाता था, लेकिन अब इनका वैज्ञानिक नाम ऐफिड काफी प्रचलित हो गया है। इस वर्ग के कुछ सामान्य लक्षणों का वर्णन दूसरे अध्याय में जिसमें इस वर्ग के सबसे भयानक पीड़क, सरसों के माहू, का विवरण दिया है, के साथ करना उचित होगा। यहां केवल यह उल्लेख करना बेहतर होगा कि एक काली जाति *एफिस क्रकीवोरा के.*[1] कई बार फलियों वाली, विशेषकर मटर की, फसलों के लिए घातक हो जाती है। आमतौर पर इसका प्रसारण कुछ ही कीटों द्वारा होता है और उनका पुनरुत्पादन विशेषकर पत्तों के कोमल भागों पर बहुत तेजी से बढ़ता है। शीघ्र ही इनकी संख्या इतनी हो जाती है कि पूरा पौधा इनसे आच्छादित हो जाता है। माहू कोषरस पीकर पौधे को क्षतिग्रस्त करता है। हालांकि माहू एक छोटा-सा जीव है, लेकिन इसकी संख्या इतनी अधिक होती है कि उसके द्वारा चूसा गया पौधे का रस बड़े कीटों जैसे सूंडियों की अपेक्षा, जिनकी पूर्व में चर्चा की गई है, बहुत अधिक होता है और पौधा इस पीड़क का शीघ्र ही शिकार बन जाता है। यद्यपि यह लघु जीव है, लेकिन चूंकि प्रत्येक कीट अपना सारा जीवन पत्तियों या कोमल शाखाओं पर बिताता है, इसलिए किसी अच्छे स्पर्श कीटनाशक के छिड़काव या भुरकाव से इन पीड़कों का नियंत्रण आसानी से किया जा सकता है। चूंकि यह पीड़क बहुत शीघ्रता से गुणन संख्या में बढ़ता है, इसलिए एक बार उपचार करने के बाद यदि इसकी हल्की-सी भी वृद्धि का पता चले तो तुरंत दुबारा उपचार करना चाहिए।

नियंत्रण समय सूची

उपर्युक्त वर्णित दलहनी फसलों के विभिन्न मुख्य पीड़कों पर विचार करते हुए उन किसानों को सलाह दी जाती है, जो इन फसलों में दिलचस्पी रखते हैं कि पीड़क कीटों के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित त्रि-आयामी उपाय करें :

(क) मिट्टी के नीचे और सतह पर छुपने वाले कुतरा कीट और अन्य कीटों के विरुद्ध मृदा उपाय :

जिन इलाकों में साल दर साल कुतरा कीट का आक्रमण होता हो, वहां पर मिट्टी की ऊपरी पतली सतह का तेज और दीर्घस्थायी मृदा कीटनाशक द्वारा उपचार किया जाना चाहिए। इसे बुआई से एकदम पहले अथवा बाद में भी मिट्टी में गुड़ाई करके मिलाया जा सकता है। यह इस बात पर निर्भर है कि उस क्षेत्र में कुतरा कीट कब आक्रमण करता है। इस उपचार से दिन में मिट्टी में छुपे रहने वाले कुतरा कीट ही विष के संपर्क में आकर नहीं

1. *Aphis craccivora* K.

मरेंगे बल्कि अन्य पीड़क जैसे चना फली बेधक, गुजिया घुन आदि भी मारे जायेंगे क्योंकि उनकी भी आदतें कुछ समान तरह की होती हैं।

(ख) अभियान चलाकर कुछ पीड़कों का यांत्रिक संग्रह और विनाश

जहां तक संभव हो, पीड़कों का आक्रमण आरंभ होते ही संयुक्त अभियान चलाकर इनका संग्रह और विनाश करना चाहिए। इन कीटों का पता मटर तना बेधक या पर्ण सुरंगी द्वारा संक्रमित पत्तों अथवा अरहर फली बेधक और कुतरा कीट द्वारा विकृत फलियों द्वारा आसानी से चल जाता है। मिट्टी में ताजा कटे प्ररोहों के होने से भी इनका पता चलता है। इस अभियान को उसी सूरत में सफल बनाया जा सकता है, जब आक्रमण अभी शुरू ही हुआ हो। यह एक ऐसा उपाय है जिसका लक्ष्य आक्रमण को प्रारंभ में ही दबाना है।

(ग) फसल का कीटनाशी द्वारा उपचार

यदि उपर्युक्त दोनों विधियों के बाद भी समस्या बनी रहे अथवा इन उपायों को किसी कारण नहीं अपनाया जा सका हो तो किसी अच्छे दीर्घस्थायी कीटनाशक के प्रसारण सूत्र से फसल का उपचार किया जाना चाहिए। यह कीटनाशक स्पर्श और उदर विष दोनों असर वाला हो। यह उपचार व्यवहार में किसी भी या सभी पीड़कों पर प्रभावी होगा। उदाहरण के लिए चना फली बेधक कीट को स्पर्श प्रभाव से मारेगा। जब वह फली में सिर डालकर बढ़ते हुए दाने को खा रहा होगा। दूसरी ओर जब कुतरा कीट उपचारित प्ररोह को खाये तो यह उसे भी मारेगा। फसल में अंडे दे रहे प्रौढ़ों के लिए भी यह घातक सिद्ध होगा। यह पर्ण सुरंगी को भी उनकी नलियों में पहुंचकर मार सकता है और माहू जैसे पीड़कों को भी। इसमें ध्यान रखने वाली बात एक ही है जिस पर कि सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए। वह यह कि पत्तियों और फलियों तथा चारे को भी मानव और पशु दोनों के आहार में उपयोग किया जाता है। इसलिए कीटनाशक की अवशिष्ट विषाक्तता के बारे में अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए।

7

तिलहनी फसलों के पीड़क

तिलहनी फसलों के वर्ग में कई प्रकार के आर्थिक महत्व के पौधों का विजातीय समुच्चय है। यह अभिसारी विकास का एक अच्छा उदाहरण है, जिसमें बिल्कुल भिन्न भिन्न कुलों के पौधों की जातियों में तेल उत्पादन की विशेषता आ गई है। लेकिन इन पौधों के दूसरे लक्षणों में अभिसारी विकास के कोई चिह्न नहीं हैं। इसका परिणाम यह है कि तिलहनी फसलों के विभिन्न पौधों के अलग अलग पीड़क हैं। नारियल के पीड़कों का विवरण अलग अध्याय में किया जायेगा, क्योंकि इसकी फसल सदाबहार है, जबकि अन्य तिलहनी फसलें वार्षिक हैं। सदाबहार पौधों और वार्षिक फसलों के पीड़कों पर नियंत्रण की व्यूह रचना अलग अलग है, इसलिए नारियल का वर्णन अन्य बागानी फसलों के साथ करना अधिक उचित है।

सरसों की फसल के पीड़क

देश में सरसों की फसल के तीन मुख्य पीड़क हैं, यथा सरसों का माहू, सरसों की आरा मक्खी और चित्रित बग। इनमें से प्रथम दो का वर्णन यहां विस्तार से किया जा रहा है।

सरसों का माहू

(लिपैफिस इरिसिमी कालटेनबाक*)*[1]

(प्लेट-18)

सरसों की फसल का सबसे भयंकर पीड़क माहू है। सरसों ब्रैसिका कुल की फसलों के अतिरिक्त जिसमें सरसों आती है, यह पीड़क कुछ अन्य आर्थिक महत्व के पौधों विशेषकर क्रूसीफेरी कुल पर भी आक्रमण करता है। अन्य महत्वपूर्ण माहू पीड़कों की भांति ही सरसों

---

1. *Lipaphis erysimi* Kaltenbach

के माहू संसार के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाये जाते हैं।

माहू समूह के कीट शारीरिक और अन्य आदतों, जीवविज्ञान, जीवनवृत्त आदि की दृष्टि से अधिक सुगठित होते हैं। इसलिए इनकी कुछ ही जातियों का सूक्ष्म और विस्तृत अध्ययन किया गया है और जो जानकारी मिली है, उसके बारे में यह धारणा बनाई गई है कि वे बहुत-सी जातियों पर भी लागू होती है।

माहू छोटे (लगभग 2 मि.मी.) और सामान्यतया गोलाकार कीट होते हैं, जिसके मुखांग बेधक और चूसने वाले होते हैं। इनमें एक और विशेष लक्षण मिलता है जो अन्य कीटों में नहीं है। इनकी पीठ पर नितंब प्रदेश से निकली एक जोड़ी नलिका जैसी बनावट मिलती है, जिन्हें विभिन्न नाम दिये गये हैं जैसे साइफन (नाल), कोर्निकल (छोटे सींग) आदि। अन्य कीट समूहों के विपरीत इस समूह के मुख्य भारतीय पीड़क भयानक विश्वव्यापी पीड़क हैं। इस पीड़क की विश्वव्यापकता का एक कारण यह हो सकता है कि ये उच्च स्तरी वायु आवेगों के साथ उड़ जाते हैं।

हालांकि कीट का आकार छोटा-सा होता है, लेकिन उसकी चूसने की क्षमता बहुत अधिक होती है। यह अपनी सिरिंज जैसी अधस्त्वचीय सूंड को पौधे के कोमल ऊतकों में घुसाकर उसमें से पौधें का रस चूसता रहता है। प्रयोगों से पता चला है कि यदि एक बार इस कीट के मुखांग पादप ऊतकों में सुनिश्चित रूप से पहुंच जायें और बाद में यदि उसके सिर को शरीर से अलग कर दिया जाय तो भी उसके चूसने के अंग काम करते रहेंगे और कटे सिर से रस टपकता रहेगा। सामान्य माहू एक प्रकार का मीठा पनीला घोल निकालता है जिसे मधुबिंदु कहते हैं। इस प्रकार वह पौधे के चूसे हुए रस का अधिकतर भाग निकाल देता है। यह जो मधुबिंदु छोड़ता है, उसे अन्य बहुत-से कीट पसंद करते हैं। विशेषकर चींटी कुल के कीट इसका सेवन आनंद के साथ करते हैं। यही नहीं, ये कीट बदले में माहू की सुरक्षा करते हैं और उसे परिवहन भी उपलब्ध कराते हैं। इन सब गतिविधियों का आर्थिक आकलन मात्र कुछ कीटों के अध्ययन करने से संभव नहीं है। लेकिन यह अनुमान कोई भी लगा सकता है कि एक पत्ते या एक कोमल प्ररोह पर ऐसे सैकड़ों-हजारों कीट छिद्र करें और रस पान करें तो उसकी स्थिति क्या होगी। मामूली हालातों में प्ररोह मुरझा जाता है और गंभीर मामलों में मर जाता है। इन कीटों द्वारा छोड़े गये मधुबिंदु से पूरे पत्ते और प्ररोह आच्छादित हो जाते हैं तथा इन पर एक प्रकार की काली फफूंदी विकसित हो जाती है जो फसल पर कुरूप ही नहीं दिखती बल्कि उससे पौधे की प्रकाश संश्लेषण क्रियाविधि में भी बाधा पहुंचती है। माहू की ऐसी भी बहुत-सी जातियां हैं, जो इतनी नहीं बढ़तीं कि उनके कारण फसल को प्रत्यक्ष भारी हानि पहुंचे। दूसरी ओर कुछ अत्यंत हानि पहुंचाने वाली जातियां हैं जो पौधों में विषाणु बीमारियां फैलाती हैं। इन जातियों की सीमित संख्या भी भयानक हानि पहुंचा सकती है; क्योंकि यदि एक बार फसल

में कोई विषाणु रोग फैल गया तो उसकी रोकथाम का कोई व्यावहारिक उपाय नहीं है।

शीतोष्ण जलवायु में माहू के जीवन इतिहास का अध्ययन करना आमतौर पर बहुत पेचीदा है। कुछ प्रजातियों के विस्तृत अध्ययन से पता चलता है कि विभिन्न पीढ़ियों के बीच अनेकरूपता तो होती ही है, साथ ही एक ही पीढ़ी के विभिन्न कीटों की आदतों और दैहिकी में भी पर्याप्त अंतर मिलता है। ठंडे देशों में इनके जीवन इतिहास की मुख्य बात यह है कि शरद में नर और मादा अर्थात लैंगिकों की पीढ़ी पैदा होती है। ये समागम करते हैं और निषेची अंडे देते हैं जो पूरा शीतकाल खाद्य पौधों पर व्यतीत करते हैं। इसके बाद जो बसंत आता है, उसमें अंडों में से अनिषेकजननीय कीट निकलते हैं जो बिना समागम के न केवल अपनी संतति पैदा कर सकते हैं, बल्कि अंडे देने के स्थान पर सीधे कीटों को जन्म देने में सक्षम होते हैं। इससे न केवल इनका पुनरुत्पादन शीघ्र होता है बल्कि मृत्यु दर भी कम होती है। नव कीट कुछ ही दिनों में प्रौढ़ बन जाते हैं और चूंकि ये सभी मादा होते हैं, इसलिए अगली पीढ़ी को जन्म देना भी आरंभ कर देते हैं। ऐसी कई पीढ़ियां शीघ्रता से जन्मती रहती हैं और पंख रहित होने के कारण ये अक्सर एक ही पौधे पर टिके रहते हैं जहां इनकी आबादी बढ़ती रहती है तथा ये पौधे का रस अधिक से अधिक चूसते जाते हैं। इनमें से कुछ पंख वाले होते हैं जिससे वे उड़कर अन्यत्र चले जाते हैं और इनकी संख्या फैलने लगती है। धीरे धीरे पंख वाले कीटों का अनुपात बढ़ता जाता है। जैसे जैसे फसल की स्थिति ऐसी होने लगती है जो पंख रहित माहू को रास नहीं आती। नतीजा यह होता है कि चारों ओर फसल पंख वाले माहू से ढक जाती है। इससे बड़े पैमाने पर इनका पलायन शुरू होता है और जो कीट अपने उपयुक्त परपोषी पर पहुंच जाते हैं, वे अलैंगिक प्रजनन आरंभ कर देते हैं। ठंडे देशों में पतझड़ तक ऐसा चलता है, जब लैंगिक अंडज पीढ़ी पुनः उत्पन्न होती है।

भारत जैसे गर्म देश में जीवन चक्र के लैंगिक भाग को सामान्यतया नहीं देखा गया है। यहां माहू की अधिकतर जातियों की संख्या सामान्यतया शीतकाल में प्रकट होती है और इसका अलैंगिक प्रजनन बसंत की समाप्ति तक चलता रहता है। इसके बाद पंख वाले माहू प्रकट होते हैं और भारी पैमाने पर पलायन आरंभ होता है। भारतीय परिस्थितियों में इस दौरान कभी कभी कोकसिनेलिड भृंग नामक परभक्षी की संख्या भी बढ़ जाती है जो माहू की बढ़ती हुई संख्या का किसी हद तक नियंत्रण करती है, फिर भी इनकी संख्या मुख्यतया जलवायविक कारणों से घटती-बढ़ती है और पूरी गर्मियों और लगभग शरद में भी गायब रहती है। सरसों के माहू में यही होता है। इस प्रकार भारत में इस पीड़क के लिए सर्दियां निकालना कठिन नहीं है, बल्कि गर्मियों में जीवित रहना मुश्किल है। सामान्य जीवनवृत में संशोधन हो सकता है, लेकिन इसके बारे में पूरा अध्ययन नहीं किया गया है। ऐसी जातियां भी हैं जो भारतीय हालातों में भी वर्ष भर प्रजनन करती हैं और जलवायु

के अनुकूल हो जाती हैं जैसे कपास का *एफिस गासिपी* [1], घास कुल की फसलों का *रोपैलोसिफम मैडिस* [2] और फली वाली फसलों का *एफिस साइटीसोरम* [3] आदि। हालांकि ये विश्वव्यापी पीड़क हैं, और शीतोष्ण प्रदेशों में भी ये फसलों के गंभीर पीड़क हैं।

इतनी तेज गति से गुणित होने वाले माहू जैसे पीड़कों का नियंत्रण अत्यंत कठिन होता है लेकिन तथ्य यह है कि इनमें से अधिसंख्यक कई प्रकार के संपर्क और स्वांगी कीटनाशकों के प्रति संवदेनशील हैं। फिर भी, इन कीटनाशक दवाओं का उपयोग अल्प अंतराल के बाद दुहराया जाता रहना चाहिए या अच्छा दीर्घस्थायी कीटनाशक चुनना चाहिए क्योंकि जो कीट इससे बच जाते हैं और जो फसल पर बाद में उड़कर आ जाते हैं, वे शीघ्र ही अपनी संख्या को विशाल कर लेते हैं। इन्हें सर्वांगी कीटनाशक इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये पौध प्रणाली में समाहित हो जाते हैं और उसके हर अंग में चले जाते हैं। ऐसे कीटनाशक अब बाजार में आ गये हैं। माहू स्वांगी कीटनाशक दवाओं के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं, क्योंकि इसे वे पौधे के रस के साथ साथ पी जाते हैं और मर जाते हैं। स्वांगी कीटनाशक का प्रभाव पौधे में काफी समय तक रहता है जिससे पौधा माहू से बचा रहता है। लेकिन ऐसे कीटनाशकों के उपयोग में सबसे बड़ी बाधा यह है कि ये स्वास्थ्य के लिए मुसीबत ढाने वाले होते हैं। विशेषकर भारत जैसे देश में इन कीटनाशकों के बारे में यह निश्चित सूचना उपलब्ध नहीं है कि ये अनाज या चारे में कब तक उपस्थित रहते हैं और इसकी न्यूनतम विष सीमा क्या है, जो मनुष्य अथवा पशुओं के आहार के लिए हानिकारक नहीं है।

सरसों आरा मक्खी

(एथालिया प्रोमिक्सा क्लग) [4]

(प्लेट-19)

इस मक्खी के नाम से ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह आम घरेलू मक्खी की तरह ही हानिकर होगी, लेकिन यह वास्तव में मधुमक्खी जैसी उपयोगी खानदान की है। साथ साथ यह किसानों की परम शत्रु है तथा सरसों और क्रूसीफेरी परिवार की फसलों का भयानक पीड़क कीट है। इसकी बनावट और आदतों संबंधी विशेषताएं भी हैं जो अध्ययन और अनुप्रयोग, दोनों ही तरह से रोचक हैं। जब यह कीट अपनी लार्वा अवस्था में होता है, तब नयी नयी फसल

---

1. *Aphis gossypii*
2. *Rhopalosiphum maidis*
3. *Aphis cytisorum*
4. *Athalia promixa* Klug.

की पत्तियों को बड़ी बेदर्दी से खाता है।

यह पीड़क लगभग सारे भारत में व्याप्त है। यह शीतकालीन पीड़क है और इसकी गतिविधियां सामान्यतया अक्तूबर से मार्च तक सीमित हैं, हालांकि कुछ प्रदेशों में यह अगस्त में भी मिला है।

इसका प्रौढ़ कुछ मोटा-सा कीट होता है, जिसके शरीर पर पीले और भूरे छिद्र होते हैं तथा पंखों का रंग लाल-भूरा होता है। इसके ततैये की तरह दो जोड़े पंख होते हैं, न कि मक्खी की तरह एक। ततैये की तरह यह अच्छा उड़ने वाला नहीं है, लेकिन इसकी गतिविधियां ततैये की भांति दिनचर हैं। कभी कभी यह खेत में एक पौधे से दूसरे पौधे पर धीरे धीरे उड़ता हुआ दिखाई देता है। इसके अंडे देने के अंग भी विशिष्ट होते हैं और वे पत्तों के किनारों को खोलकर उनमें एक एक अंडा देते हैं। इनका अंड निक्षेपक दांतेदार और आरी की तरह का होता है तथा इसी से इस कीट का नाम आरा मक्खी पड़ा है। प्रत्येक मादा बड़ी संख्या में अंडे देती है जिनकी संख्या कई बार 150 से अधिक पहुंच जाती है।

अंडों में से लार्वा निकलने का समय तापमान पर निर्भर है और उसमें एक सप्ताह से लेकर एक माह तक का समय लग सकता है। नव लार्वा का रंग हरा-धूसर होता है और शरीर पर बाल नहीं होते। यह पत्तों के किनारों को सबसे पहले खाना शुरू करता है। जैसे जैसे यह बड़ा होता जाता है, इसका रंग गहरा और गहरा होता जाता है। इसकी आहार गतिविधियां मुख्यतया प्रातः और सायंकाल के समय तक सीमित रहती हैं। दिन के समय यह मिट्टी की सतह पर छुपे रहना पसंद करता है। लार्वा का अत्यंत रोचक और महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि यह हाईमेनोप्टेरा गण के अन्य अधिकतर समूहों के विपरीत लेपीडोप्टेरा की सूंडी से सामान्य बनावट में बहुत मिलता-जुलता है और अनुभवहीन छात्र तथा किसान धोखा जा जाते हैं। लेपीडोप्टेरा सूंडियों की तरह ही हाईमेनोप्टेरा लार्वा के मुखांग काटने और चबाने वाले होते हैं तथा उनके द्वारा पहुंचाई जाने वाली क्षति का स्वरूप बहुत समान होता है। लेपीडोप्टेरा कुतरा कीट की तरह ही यह भी ऊपर चढ़ता है, नीचे आता है और जरा-सी भी आहट या छेड़छाड़ होने पर मुर्दा शरीर जैसा बन जाता है। लेकिन इनकी पहचान आसानी से की जा सकती है, क्योंकि आरा मक्खी के लार्वा में कटि प्रदेश में तीन संयुक्त पदों के अलावा उदर भाग में आठ जोड़े उपपाद होते हैं। दूसरी ओर लेपीडोप्टेरा सूंडियों में उदर पर पांच जोड़े उपपाद और तीन जोड़े कटिपाद होते हैं।

लार्वा अवस्था एक सप्ताह से एक माह तक रहती है तथा पूर्ण विकसित लार्वा की लंबाई लगभग 2 सें.मी. होती है। प्यूपाकरण के लिए यह सामान्यतः मिट्टी में जाता है। वहां यह रेशम का कोया (कोकून), जिसमें मिट्टी के कण मिले होते हैं, बनाता है। प्यूपा अवस्था एक सप्ताह से कुछ अधिक और लगभग दो सप्ताह के बीच रहती है। देश के

भिन्न भिन्न प्रदेशों में वर्ष के दौरान इसकी कई पीढ़ियां (3 से 10 तक) जन्म लेती हैं। इस पीड़क के शत्रु हाईमेनोप्टेरा परजीवी के रूप में होते हैं जो इसकी लार्वा अवस्था पर आक्रमण करते हैं।

इस पीड़क के नियंत्रण के लिए उपयुक्त समय वह है, जब लार्वा पत्तियों को खाता है। इन पत्तियों पर दीर्घस्थायी कीटनाशक का प्रयोग किया जा सकता है। कीटनाशक स्पर्श और उदर दोनों प्रभावों वाला होना चाहिए ताकि एक पौधे से दूसरे पौधे पर उड़-उड़कर अंडे देने वाले इसके प्रौढ़ भी कीटनाशक के संपर्क में आयें और अंडे देने से पहले ही समाप्त हो जायें। जितना सक्रिय कीटनाशक होगा, उतना ही उसका असर होगा। लेकिन अच्छा यह होगा कि वह दीर्घस्थायी हो ताकि जब नये नये लार्वा जन्म लें तो उन्हें भी मारने में प्रभावी भूमिका निभा सके। एक सावधानी यह बरतनी चाहिए कि उपचारित पत्तों का उपयोग सब्जी बनाने या सलाद में नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होगा। इसलिए छोटे किसानों और घर की बगिया में इसे उगाने वालों के लिए यह आवश्यक है कि वे रासायनिक नियंत्रण की अपेक्षा इस कीट का मानवीय संग्रह करें और लार्वा को चुन चुन कर नष्ट करें। अथवा पौधों को मिट्टी के तेल वाले पानी में डालकर हिलाने से यह पीड़क नियंत्रण में रहेगा।

सरसों के पीड़कों के नियंत्रण के लिए समय सूची

सरसों के पीड़कों की समस्या के महत्व को देखते हुए बड़े खेतों पर सरसों की खेती करने वाले किसानों को निम्नलिखित प्रकार से उनका नियंत्रण करने के लिए तैयार रहना चाहिए :

(1) यदि नयी नयी फसल पर चित्रित बग अथवा आरा मक्खी का संक्रमण हो तो उसका उपचार दीर्घस्थायी कीटनाशक जैसे गामा बी.एच.सी. अथवा एंडोसल्फान से करना चाहिए जो स्पर्श और उदर विष दोनों प्रकार से काम करते हैं। यदि प्रकोप जारी रहे तो इस उपचार को दो से तीन सप्ताह के अंतराल पर दुहराना चाहिए।

(2) ऊपर दिये गए उपचार को उस समय भी दुहराना चाहिए जब बाद की अवस्था में पुष्प समूहों पर माहू दिखाई देना शुरू हो जाय। इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि फसल के उन पत्तों को मानव आहार तथा पशुओं के चारे में उपयोग न किया जाय, जिन पर कीटनाशकों का प्रयोग किया गया हो।

मूंगफली के पीड़क

मूंगफली के मुख्य पीड़कों में लाल रोमिल सूंडी, मूंगफली पर्ण सुरंगी, तना बेधक, माहू और दीमक हैं। इनमें से प्रथम और अंतिम के बारे में पहले ही बताया जा चुका है तथा दूसरे और तीसरे की चर्चा नीचे की जा रही है। माहू पीड़कों के बारे में सरसों के माहू का जो

वर्णन किया है, वही इस पर लागू होता है, क्योंकि दोनों के सामान्य जीवन इतिहास और नियंत्रण उपायों में पर्याप्त समानता है।

मूंगफली पर्ण सुरंगी

(स्टोमोप्टेरिक्स सबसेसिविला जेलर*)*[1]

यह पीड़क मूंगफली का विशिष्ट कीट है, हालांकि भारत के विभिन्न भागों में बहुत से अन्य पौधों पर भी इसे पाया गया है। छोटी-सी सूंडी पौधे के पत्तों में सुरंग बनाती है, उसको खाकर कंकाल-सा कर देती है और जाल-सा बना देती है। यह दक्षिण भारत में विशेषकर बहुत अधिक हानि पहुंचाता है और वहां इसे स्थानीय बोली में सुरुलपुची अथवा मुडुपुची कहा जाता है। जिन खेतों में इसका अधिक प्रकोप होता है, वहां पौधे ऐसे नजर आते हैं मानों आग से झुलस गये हों। इसके वैज्ञानिक नाम भी बदलते रहे हैं तथा इसे *ऐनाकैम्पसिस नर्टेरिया*[2], *ऐप्रोएरेमा नर्टेरिया*[3] और *स्टोमोप्टेरिक्स नर्टेरिया*[4], आदि नाम दिये गये। विश्व में इसकी व्याप्ति भारत, दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका और इंडोनेशिया में है।

प्रौढ़ अवस्था में यह छोटे आकार का कुछ ताम्र रंगी पतंगा होता है, जिसके पंखों का विस्तार एक सें.मी. से कुछ कम होता है। यह गेलीकीआइडी कुल का कीट है। इसकी गतिविधियां रात्रिकालीन हैं और यह प्रकाश के प्रति अत्यंत आकर्षित होता है। दिन में यह मिट्टी के ढेलों या दरारों के बीच छुपा रहता है। इसकी मादा खाद्य पौधों पर एकल अंडे देती है, जिनकी संख्या सैकड़ों में होती है। अंडे अक्सर पौधों की सतह पर गड्ढों में दिये जाते हैं। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर इनकी आकृति मूंगफली जैसी अर्थात आकार अनियमित लंबवत होता है। सतह गड्ढेदार और रंग हल्का हरा होता है। अंडों में से सामान्य रूप से तीन दिन में लार्वा निकल जाते हैं। अंडे से निकला नव लार्वा लगभग 1.5 मि.मी. लंबा होता है। निकलने के बाद यह थोड़ा इधर उधर चलता है और बाद में पत्ते में सुरंग बनाता है जिससे पत्ते पर सफेद भूरी धारियां-सी बन जाती हैं। इससे इसकी उपस्थिति का आभास मिलता है। अंदरूनी भाग पर रेशम की-सी परत जम जाती है। सुरंगी के रूप में कोई आठ दिन का जीवन बिताने के बाद लार्वा उसे काट कर बाहर निकलता है और कई पत्तों के साथ जाल-सा बना देता है तथा अपने लिए रेशमी धागों से एक कोष्ठक बना लेता है। पूर्ण विकसित लार्वा की लंबाई 6 से 8 मि.मी. तक होती है और रंग मटियाला हरा होता है। नर पतंगा बनने वाले लार्वा की एक विशिष्ट पहचान यह होती है कि लार्वा की त्वचा में से बैंगनी अंडकोष की जोड़ी साफ दिखती है। लार्वा अवस्था 9 से 17 दिनों

---

1. *Stomopteryx subsecivella* Zeller
2. *Anacampsis nerteria*
3. *Aproaerema nerteria*
4. *Stomopteryx nerteria*

की होती है। प्यूपा निर्माण लगभग 9 मि.मी. लंबे टारपीडो आकृति के कृमिकोष में होता है जो लार्वा कोष्ठक के पास ढीला-सा लटका रहता है। प्यूपा लगभग 4.5 मि.मी. लंबा और रंग में पीले से लेकर लाल भूरा-सा होता है। प्यूपा अवधि लगभग चार दिन की होती है। उपयुक्त जलवायु और समुचित आहार उपलब्ध हो तो यह कीट वर्ष भर प्रजनन करता रहता है।

दक्षिण भारत में इस पीड़क पर कम से कम दो प्यूपा और तीन लार्वा परजीवियों द्वारा आक्रमण किया जाता है।

इसके जीवन इतिहास की विशिष्टता बताती है कि जब लार्वा सुरंग बना लेता है तो वह कीटनाशकों, विशेषकर भुरकाव वाले कीटनाशकों के प्रति सुरक्षित हो जाता है। इसलिए इस अवस्था पर प्रसारण वाले स्पर्श कीटनाशकों का छिड़काव करना चाहिए। बाद में जब लार्वा सुरंग से बाहर आ जाय और पत्तों का जाल बनाकर अपना कोष्ठक बना ले तब भुरकाव का तरीका उपयोगी हो सकता है। सबसे उपयुक्त नियंत्रण का उपाय यह है कि लार्वा के सुरंग बनाने से पूर्व ही अच्छे दीर्घस्थायी कीटनाशक का छिड़काव कर दिया जाय। प्रकाश जालों से ऐसा करने के समय का पता लगाया जा सकता है क्योंकि प्रौढ़ प्रकाश की ओर बहुत आकर्षित होते हैं। इसलिए कीटनाशकों का उपयोग उस समय करना अधिक बेहतर रहेगा, जब देखा जाय कि पतंगे प्रकाश जाल की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इससे अंडों से निकलते ही लार्वा कीटनाशक के संपर्क में आकर मर जायेंगे। इस अभियान की निगरानी के दौरान लार्वा द्वारा निर्मित पर्ण सुरंगों और कोष्ठकों पर ध्यान रखना चाहिए जो उपचार के बावजूद बचे रहने वाले लार्वा बनाते हैं। इन्हें एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए ताकि पीड़क की संख्या न बढ़ सके।

मूंगफली तना बेधक

(स्फेनोप्टेरा पेरोटेट्टी गुरिन*)*[1]

इस कीट के भारत से बाहर भी होने के बारे में कोई सूचना नहीं मिली है। प्रौढ़ अवस्था में इसे जवाहर भृंग के नाम से जाना जाता है (बुपरेस्टीडी परिवार)। इसके गहरे भूरे रंग पर धात्विक चमक होती है। हालांकि जवाहर भृंग की अन्य चमकदार प्रजातियों की अपेक्षा इसका आकार (लगभग 10 से 12 मि.मी. लंबा) कम होता है। इसका लार्वा मूंगफली के तने में छेद करता है और आमतौर पर नीचे की ओर बढ़ता है। यह मुख्य जड़ में नली बनाता है जिससे पौधा मर जाता है। मूंगफली के अतिरिक्त यह अन्य कई फलीदार फसलों

---

1. *Sphenoptera perotetti* Guerin

जैसे लोबिया, चना, कुलथी, जंगली सनई आदि पर भी आक्रमण करता है।

मादा भृंग अपने अंडे या तो पौधे के तने के निचले हिस्से में अथवा जमीन पर देती है। अंडे पपड़ी की तरह चपटे और दीर्घ वृतीय होते हैं। इसका लार्वा प्ररूपी बुप्रेस्टिड ग्रब की तरह का सपाट सिर वाला होता है जिसका अगला हिस्सा चौड़ा और पिछला हिस्सा शुंडाकार होता है। यह तने को काटकर उसमें रास्ता बनाता है और वहां आहार ग्रहण करता है। पूर्ण विकसित लार्वा सफेद रंग का और लगभग 4 सें.मी. लंबा होता है। यह लार्वा बिल में प्यूपा बनता है और प्यूपा अवस्था में इसका रंग दूधिया सफेद होता है। प्यूपा अवधि 10 दिन तक रहती है जिसके पश्चात प्रौढ़ निकलता है जो अगली पीढ़ी का प्रारंभ करता है। पहले इसका नियंत्रण बहुत कठिन माना जाता था और इससे बचाव के लिए एक ही सावधानी बरती जाती थी कि प्रभावित पौधे को जड़ से उखाड़ कर नष्ट कर दिया जाय ताकि उसके साथ लार्वा और प्यूपा दोनों ही नष्ट हो जायें। इस प्रकार प्रौढ़ बनकर वे स्वस्थ पौधों पर अंडे नहीं दे पायेंगे लेकिन अब ऐसे कीटनाशी रसायन उपलब्ध हैं, जिनका परीक्षण किया जा सकता है, लेकिन इस पीड़क की आदतों एवं जीव विज्ञान संबंधी अध्ययन इतना कम है कि व्यापक पैमाने पर इसके नियंत्रण के लिए कोई तार्किक सुझाव देना संभव नहीं है। इस पीड़क पर और अध्ययन किये जाने की बहुत आवश्यकता है।

मूंगफली के विभिन्न पीड़कों के नियंत्रण की अनुसूची

इस फसल के बहुत से मुख्य पीड़कों पर विचार करते हुए इसके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित निर्देश सुझाये जा सकते हैं।

(क) जिन क्षेत्रों में बुआई के बाद दीमकों का प्रकोप अधिक होता है, वहां एल्ड्रिन जैसे दीर्घस्थायी मृदा कीटनाशक से मिट्टी का उपचार करना चाहिए। इस कीटनाशक का बुआई के समय इस प्रकार उपयोग किया जाना चाहिए कि वह बीज और अंकुर के एकदम आसपास हो। उदाहरण के लिए बीज के साथ साथ कूंडों में भी इसे डाला जा सकता है।

(ख) पहली बौछार के साथ ही आंशिक नियंत्रण के लिए, मुख्यतः लाल रोमिल सूंडी के पतंगों के प्रकट होने की सूचना देने के लिए प्रकाश जाल लगाने चाहिए। जैसे ही प्रकाश जाल में पतंगे आने लगें, निम्नलिखित के संग्रह के लिए नियमित अभियान चलाये जायें। (1) रोमिल सूंडी के अंडा समूह (2) पर्ण सुरंगी के आक्रमण के चिह्न दिखाने वाले पत्ते (3) माहू की आरंभिक उपस्थिति दिखाने वाले पत्ते, और (4) तन बेधक के प्रकोप से ग्रस्त प्ररोह। इस कार्य के लिए छोटे छोटे बच्चों को भी प्रशिक्षित किया जा सकता है। यदि अभियान को सहकारी स्तर पर व्यापक क्षेत्र में आयोजित किया जाय तो मूंगफली की फसल के पीड़कों को आरंभिक अवस्था में ही नियंत्रित किया जा सकता है और इसके लिए अधिक लागत

और अनिश्चित उपयोगिता वाले रासायनिक उपायों की जरूरत नहीं रहेगी।

(ग) यदि किसी कारणवश उपर्युक्त अभियान प्रभावी नहीं रहते और माहू तथा सूंडी जैसे पीड़कों का प्रकोप गंभीर जान पड़े तो फसल का उपचार गामा बी.एच.सी. जैसे किसी दीर्घस्थायी कीटनाशक द्वारा किया जाना चाहिए जो माहू और कम अवस्था की रोमिल सूंडी के लिए बहुत प्रभावी है। यही नहीं, अन्य कई पीड़कों पर भी इससे नियंत्रण रहेगा। इसके बाद फसल पर दो तीन सप्ताह तक निगरानी रखनी चाहिए और यदि रोमिल सूंडी या पर्ण सुरंगी अथवा तना छेदक दुबारा अपना सिर उठाते नजर आयें तो फसल पर पुनः किसी दीर्घस्थायी कीटनाशक का छिड़काव करना चाहिए। ऐसे कीटनाशक का चुनाव करें जो माहू और रोमिल सूंडी के लिए पर्याप्त विषाक्त हो। इन कीटनाशकों का अपशिष्ट भी ऐसा होना चाहिए जो पर्ण सुरंगी और तना बेधक के लार्वा और इन पीड़कों के प्रौढ़ों पर भी उस समय असर दिखा सके जब वे उपचारित पत्तों पर इधर-उधर आयें। इन अभियानों की सफलता इस बात पर निर्भर है कि कितने बड़े क्षेत्र में सहकारी आधार पर अभियान चलाया जाता है।

तिल के पीड़क

देश में तिल की फसल पर तीन मुख्य पीड़कों का आक्रमण होता है। ये हैं पत्ती और फली सूंडी, श्येन शलभ और गाल मक्खी। इनमें से प्रथम दो का विवरण यहां दिया जा रहा है।

पत्ती और फली सूंडी

(एन्टीगास्ट्रा कैटालौनालिस डुपोंचल*)*[1]

(प्लेट-20)

यह तिल (*सीसेमम ऑरिएंटेल* अथवा *इंडीकम* लिनाइयस)[2] का खतरनाक पीड़क है। हालांकि जब तिल की फसल खेत में नहीं होती तब यह तिल वंश की अन्य जंगली जातियों पर भी पाया जाता है। इसका लार्वा शिखर प्ररोह और नव फली दोनों पर ही आक्रमण करता है। यदि पौधे पर आरंभिक अवस्था में ही इसका आक्रमण हो गया हो तो वह मर जाता है और बाद की अवस्था में प्ररोह के संक्रमण से वृद्धि और पुष्पन प्रक्रिया प्रभावित होती है। भारत के अलावा इस जाति (एन्टीगास्ट्रा कैटालौनालिस) की उपस्थिति यूरोप, अफ्रीका, साइप्रस,मास्टा, इंडोनेशिया और दक्षिण पूर्व एशिया में पायी गयी है।

1. *Antigastra catalaunalis* Duponchal
2. *Sesamum orientale* or *indicum* Linnaeus

प्रौढ़ अवस्था में यह मध्यम आकार का पतंगा होता है जिसके पंखों का विस्तार 15 से 20 सें.मी. होता है। अगले पंखों का रंग लाल-पीला और उन पर टेढ़े मेढ़े लाल रंग के आलंकारिक चिह्न बने होते हैं। पिछले पंखों का रंग हल्का पीला होता है जो कुछ पारदर्शी से लगते हैं। ये रात्रिचर हैं और दिन के समय टूटे पत्तों आदि के नीचे छुपे होते हैं। रात्रि में ये प्रकाशानुवर्ती (फोटोट्रॉपिक) होते हैं और प्रकाश के प्रति आकर्षित होते हैं। आमतौर पर ये पत्तियों के पीछे और बढ़ते हुए प्ररोहों के शिखर भाग पर एकल अंडे देते हैं। अंडे हरे रंग के होते है जिनमें से मौसम के अनुसार दो से सात दिन में लार्वा निकल जाते हैं। तत्काल निकले लार्वा का रंग सफेद और लंबाई लगभग 2 मि.मी. होती है। बाद में रंग बदलकर हरा हो जाता है और पूर्ण विकसित लार्वा की लंबाई 15 मि.मी. तक पहुंच जाती है जिस पर गहरे भूरे धब्बे भी पड़े होते हैं। इसकी विशेष आदत यह है कि अंडे से निकलते ही थोड़ी देर पत्ते को खाने के बाद या पत्ते पर सुरंग बनाने के बाद ये अपने शरीर से निकाले गये रेशमी धागों से पत्तों को आपस में जोड़कर एक गुच्छा सा बनाकर उसमें रहने लगता है। जैसे जैसे लार्वा बड़ा होता जाता है, आसपास की पत्तियों को गुच्छे में जोड़ता जाता है, जिससे गुच्छे का आकार बढ़ता जाता है। इस प्रकार लार्वा अपनी सुरक्षा और प्रचुरता के लिए अपना आवास स्वयं बनाते हैं। इस सुरक्षा आवरण के बावजूद एक हाईमनोप्टेरस परजीवी लार्वा पर आक्रमण करता है। जब फली (बेधरी) बनती है तो लार्वा उसमें छेद करके बीज खाता है।

लार्वा अवधि 10 दिन से एक माह तक रहती है। प्यूपा बनने के लिए पूर्ण विकसित लार्वा जमीन पर उतर जाता है और नीचे पड़े पत्तों के अंदर अथवा भूमि की तरेड़ों या छिद्रों में घुसता है। प्यूपा का रंग शुरू की अवस्था में हरा और बाद में भूरा हो जाता है। प्यूपा अवधि 4 से 20 दिन तक रहती है। इसके बाद पतंगा प्रकट होता है जो चार पांच दिनों के अंदर अगली पीढ़ी के लिए अंडे देना आरंभ कर देता है। प्रयोगशाला में यह एक वर्ष में 14 तक पीढ़ियां पूरी कर लेता है जबकि प्राकृतिक स्थिति में मौसम के तापमान और आर्द्रता के अनुसार यह संख्या बदलती रहती है।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि इसके लार्वा की पत्तों में छुपकर आहार ग्रहण करने की आदत होने के कारण इसका नियंत्रण हल्के भुरकाव या छिड़काव से पूर्ण संभव नहीं है। इसलिए इस पीड़क के समुचित नियंत्रण के लिए पहले बचाव के उपाय करने चाहिए जिसके अंतर्गत शलभों को मारने के लिए दीर्घस्थायी कीटनाशक का अंडे देने से पूर्व प्रयोग करना चाहिए ताकि पतंगा अंडा देने से पूर्व ही खत्म हो जाय। इसके बाद झूलते गुच्छों वाले पत्तों को देखते ही एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए। प्रथम अभियान का समय पूर्व वर्षों के अनुभव से तय किया जाय कि कब फसल पर आक्रमण आरंभ होता है।

श्येन शलभ

(एकेरॉन्टिया स्टिक्स वेस्टवुड*)*[1]

(प्लेट-21)

यह कीट भारतीय स्थितियों में जितना हानिकारक है, उससे कहीं अधिक ध्यान आकर्षित करता है। हालांकि यह कभी कभी देश में काफी भारी नुकसान कर सकता है जितना इसके साथी अन्य देशों में करते हैं। यह स्फिंगडी नामक कुल का वंशज है जिन्हें आमतौर पर श्येन शलभ स्फिंक्स पतंगा या डैथ्स हैड माथ कहा जाता है। ये सभी नाम इसकी रचना या व्यावहारिक लक्षणों पर आधारित हैं। यह हट्टा-कट्टा कीट होता है जिसका प्रौढ़ लंबा-तगड़ा शलभ होता है जिसके पंखों का विस्तार कई सें.मी. का होता है। ये तीव्र गति से उड़ने वाले शलभ हैं और जैसे ही सांझ होती है, प्रकाश की ओर बाज जैसे झपटते हैं। पूर्ण विकसित सूंडी की लंबाई 5 सें.मी. तक और मोटाई 1 सें.मी. तक होती है। इनकी आदत होती है कि यह सिर और शरीर के अग्र भाग को आगे-पीछे करके नरसिंही मूर्ति जैसी स्थिति बना लेता है। इसके साथ साथ उदर के पिछले हिस्से में एक सींग जैसे प्रक्षेप से यह लार्वा और भी अधिक भयानक दिखता है अन्यथा इसका शरीर काफी स्थूल और लुभावने हल्के रंगों के मिश्रण वाला होता है।

भारत में सामान्य तौर पर जो जाति *(एकेरॉन्टिया स्टिक्स)* तिल के पीड़क के रूप में मिलती है, उसके इंडोनेशिया, श्रीलंका, फिलीपींस और बर्मा में भी मिलने की खबर है। तिल के अलावा इसका प्रकोप आलू, बैंगन, सेम आदि पर भी मिलता है। दिल्ली जैसे शहरी क्षेत्रों में इसका आक्रमण बालसम जैसे सजावटी पौधों पर भी पाया गया है। मधुमक्खी पालकों के लिए भी यह बहुत हानिकर है क्योंकि उनके छत्तों से शहद चुराने का प्रयास करता है। हालांकि इस प्रयास में कई बार यह मक्खियों के डंक मारने के कारण मर भी जाता है।

एकेरॉन्टिया स्टिक्स का प्रौढ़ लंबा लाल-भूरे रंग का शलभ है जिसके पंखों का विस्तार कई बार 10 सें.मी. से भी अधिक होता है। अगले पंख गहरे भूरे मिश्रित रंग के होते हैं जिन पर गहरी काली लहरें होती हैं और हर पंख पर एक बड़ा पीला धब्बा होता है। पिछले पंखों की पृष्ठभूमि गेरुए रंग की होती है जिस पर दो चौड़ी, गहरी भूरी, लहरदार आरपार पट्टियां होती हैं। सिर और वक्ष का रंग भी गहरा भूरा होता है और वक्ष पर कपाल का चिह्न होता है। उदर सामान्यतः गेरुआ होता है जिस पर गहरी भूरी आरपार पट्टियां होती हैं।

---

1. *Acherontia styx* Westwood

पतंगा सामान्यतः आहार पौधे के पत्तों के पिछले हिस्से पर एकल अंडे देता है जिनका आकार काफी बड़ा, रंग पहले हरा-सफेद और बाद में पीला पड़ जाता है। कुछ ही दिनों में अंडों में से लार्वा निकल जाते हैं जो आरंभ में हल्के पीले रंग के होते हैं। शीघ्र ही ये पत्ते खाना आरंभ करते हैं और इनके शरीर के पृष्ठपार्श्वीय भाग पर चौड़ी और तिरछी हरी पट्टियां बनने लगती हैं। सामान्य स्वरूप में यह प्ररूपी स्फिंगिड लार्वा लगता है जिसका सिर लक्षणात्मक और सींग पुच्छल होते हैं। कुल मिलाकर यह डरावना और जहरीला दिखाई देता है। जबकि यह बिल्कुल हानिकर नहीं होता और इसे हाथ में लेना सुरक्षित है। जब लार्वा पूर्ण विकसित होता है तो इसके रंग में कुछ अधिक ही परिवर्तन आता है। इसका रंग भूरा पड़ जाता है और यह तने से नीचे उतर कर प्यूपा बनने के लिए जमीन में घुस जाता है। लार्वा अवधि लंबी होती है और कई बार यह दो महीने या इससे भी अधिक तक चलती है। प्यूपा अवधि भी लगभग इसी प्रकार लंबी होती है।

लार्वा और प्रौढ़ अवस्था के दौरान इसके रंग और स्वरूप में जो परिवर्तन होता है वह बचाव में किये गये प्रयास का आभास कराता है। लार्वा जब पत्तियों से आहार ग्रहण करता है तो उसका रंग उनसे मिलता जुलता है और जब वह जमीन पर उतरता है तो उसका रंग बदल कर मिट्टी जैसा हो जाता है। इसके स्वरूप में जो भयानकता होती है, वह निश्चित रूप में इसके परभक्षियों को दूर रखने के लिए होती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि इतना बड़ा कीट अपने भक्षियों के विरुद्ध बचाव का प्रयत्न करे क्योंकि इसका आकार ही बड़े परभक्षी को इस पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करता है। लार्वा अवस्था में इस पर आक्रमण करने वाले परभक्षियों में एक डिप्टेरस और एक हाईमनोप्टेरस होता है।

उपर्युक्त विवरण को ध्यान से देखने पर यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि इस पीड़क के बड़े स्तर पर नियंत्रण के लिए एक अच्छा उदर विष आवश्यक है, जिसका स्पर्श प्रभाव भी उतना ही प्रभावकारी हो। छोटे पैमाने पर जैसे क्यारियों आदि में, इतने बड़े कीट को जो हानिकारक नहीं है, हाथ से पकड़कर नष्ट करना आसान है।

तिल के पीड़कों की नियंत्रण अनुसूची

अनुसूची बनाने के लिए विचारणीय बातें :

(क) तिल के तीन मुख्य पीड़कों में से गाल मक्खी के लिए कोई रासायनिक नियंत्रण ज्ञात नहीं है। इस पीड़क के नियंत्रण के लिए एक मात्र ज्ञात उपाय यही है कि संक्रमित सामग्री को एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए। श्येन शलभ के लार्वा का आकार काफी बड़ा होता है। जिससे उसे मानवीय संग्रह द्वारा एकत्र करके नष्ट किया जा सकता है। पर्ण वेल्लक

की सूंडियां पत्तियों में छुपने का स्थान बनाती हैं, इसलिए इनको और संक्रमित प्ररोहों के संग्रह को नष्ट करने का सुझाव दिया जाता है। चूंकि इन तीनों का मानवीय संग्रह द्वारा नियंत्रण किया जा सकता है, इसलिए ऐसे अभियान चलाना बहुत व्यावहारिक है।

(ख) तिल पर्ण वेल्लक और श्येन शलभ फसल की आरंभिक अवस्था में प्रकट होती हैं और काफी समय तक रहती हैं, इसलिए ऐसे स्पर्श और उदर वाले दीर्घस्थायी कीटनाशकों की सिफारिश की जाती है जो पर्याप्त प्रभावी हों।

नियंत्रण समय सूची

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित नियंत्रण समय सूची व्यवहार्य है :

(1) प्रत्येक मौसम में कीटों के मानवीय नियंत्रण के लिए दो अभियान चलाये जाने चाहिए। इनमें पहला फसल के आरंभ में (1) श्येन शलभ और (2) पर्ण वेल्लक द्वारा प्रभावित पत्तियों और फलों को नष्ट करने के लिए चलाया जाय तथा दूसरा गाल मक्खी द्वारा हानि शुरू करने के तुरंत बाद प्रभावित पौधों को नष्ट करने का चलाया जाना चाहिए।

(2) यदि उपर्युक्त अभियानों के बावजूद पर्ण वेल्लक और श्येन शलभ का प्रकोप गंभीर हो तब फसल का उपचार किसी अच्छे दीर्घस्थायी कीटनाशक द्वारा किया जाना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो पुनः 25 दिन बाद इस उपचार को किया जाय। दो से अधिक उपचारों की आवश्यकता एक मौसम में शायद ही पड़े।

अरंडी की फसल के पीड़क

इस फल के तीन मुख्य पीड़क हैं, अर्द्ध कुंडलक, सम्पुट बेधक और गाल मक्खी। इन तीनों में से प्रथम के बारे में बताया जा रहा है।

अरंडी अर्द्ध कुंडलक

(एकीआ जैनाटा लिनायस*)*[1]

(प्लेट-22)

यह अरंडी फसल का सबसे घातक पीड़क है। इसका लार्वा अरंडी के पत्तों पर इतना भारी आक्रमण करता है कि कई बार तो पेड़ एकदम ठूंठ नजर आता है। इस कीट की एक और विशेषता यह है कि अधिकतर शल्कपक्षीय (लेपिडोप्टेरा) वर्ग के प्रौढ़ों के विपरीत इसका पतंगा हानिकर है और फल चूसने वाला सामान्य पतंगा है। यह सर्वज्ञात है कि

1. *Achaea Janata* Linnaeus

शल्कपक्षीय (लेपिडोप्टेरा) वर्ग के पीड़क अपनी प्रौढ़ अवस्था में हानिरहित होते हैं तथा लार्वा अवस्था में ही विभिन्न फसलों और पदार्थों को हानि पहुंचाते हैं। कई फल चूसने वाले पतंगों की जातियों का मामला दूसरा है जो नींबू वर्गीय फलों की गंभीर पीड़क होती हैं। इन मामलों में कीटों की प्रौढ़ अवस्था में उनके पतंगे नींबू वर्गीय फलों को हानि पहुंचाते हैं। जबकि अधिकतर मामलों में इन कीटों के लार्वा विभिन्न जंगली प्रजातियों से आहार ग्रहण करते हैं। अर्द्ध कुंडलक की विशिष्टता यह है कि लार्वा अवस्था में यह अरंडी का गंभीर पीड़क होता है और प्रौढ़ अवस्था में नींबू वर्गीय पौधों का। यदि इस स्थिति में इस पर विचार किया जाय तो कीट विज्ञान आर्थिकी में इसका विशिष्ट स्थान है।

उपर्युक्त नाम के अतिरिक्त अन्य कई नामों से भी इसे जाना जाता है जैसे *ओफीउसा मेलीसेर्टा*[1], *नाक्टुआ टिग्रिना*[2], *एकीआ कैटेला*[3], *कैटोकाला*[4] ट्रेवर्सा आदि। विश्व में इसका वितरण भारत, श्रीलंका और थाईलैंड में है।

प्रौढ़ अवस्था में इसका शलभ हल्के लाल-भूरे रंग का, 60 से 70 मि.मी. पंख विस्तार वाला होता है। अगले और पिछले दोनों पंखों पर टेढ़े-मेढ़े सजावटी निशान तथा बड़े, हल्के और गहरे भूरे धब्बे होते हैं। सान्ध्यचर होने के कारण दिन में ये गिरे हुए पत्तों के नीचे छुपे रहते हैं और सांझ होते ही बाहर निकल आते हैं। ये मुलायम पत्तों पर यत्र-तत्र अंडे देते हैं। कई बार दीर्घावधि तक पूर्व अंड निक्षेपण काल चलता है जो तीन सप्ताह या इससे भी अधिक हो जाता है। प्रत्येक पतंगा कई सौ (450 या अधिक) तक अंडे देता है। अंडे अपेक्षाकृत बड़े होते हैं (लगभग एक मि.मी. के)। इनके शीर्ष दबे हुए और ऊपर धारियां-सी होती हैं। बड़े आकार के होने के बावजूद इनको पत्तों पर देख पाना कठिन होता है। क्योंकि रंग में ये नीले-हरे होते हैं। निक्षेपण के 2 से 5 दिन बाद अंडों में से लार्वा छेद बनाकर बाहर निकलता है। लार्वा पत्ते को अपना आहार बनाने से पहले अंडे के बचे हुए खोल को खाता है। प्रथम अवस्था के लार्वा की लंबाई कोई 3.5 मि.मी. होती है और इसके चूषक पदों में प्रथम दो जोड़े अविकसित होते हैं। इसलिए इसकी चाल भी अजीब हो जाती है। जब यह आगे बढ़ता है तो बीच में कूबड़ (कुंडलक)-सा बन जाता है और ज्यों-ज्यों यह आगे बढ़ता है, ऐसे ही कुंडलक बनते-बिगड़ते रहते हैं। इसीलिए इसे अर्द्ध कुंडलक का सामान्य नाम दिया गया है। ये पूर्ण कुंडलक, जो पूर्ण कुंडल बनाते हैं, से भिन्न होते हैं। चलने की प्रक्रिया में इसके कूबड़ का ऊपर उठना और इसके सिर पर एक सफेद चिह्न प्रभेद के चिह्न जैसा लगता है और इसीलिए दक्षिण भारत के रूढ़िवादी हिंदू इसे दासारी पुरूगु यानी भक्त कीड़ा कहते हैं। उम्र के साथ साथ लार्वा का आकार और पेटूपन बढ़ता जाता है और 4 या 5 निर्मोचन के पश्चात पूर्ण विकसित हो जाने पर इसकी लंबाई 60-65

---

1. *Ophiusa melicerta*
2. *Noctua tigrina*
3. *Achaea catella*
4. *Catocala traversa*

8

सब्जियों के पीड़क

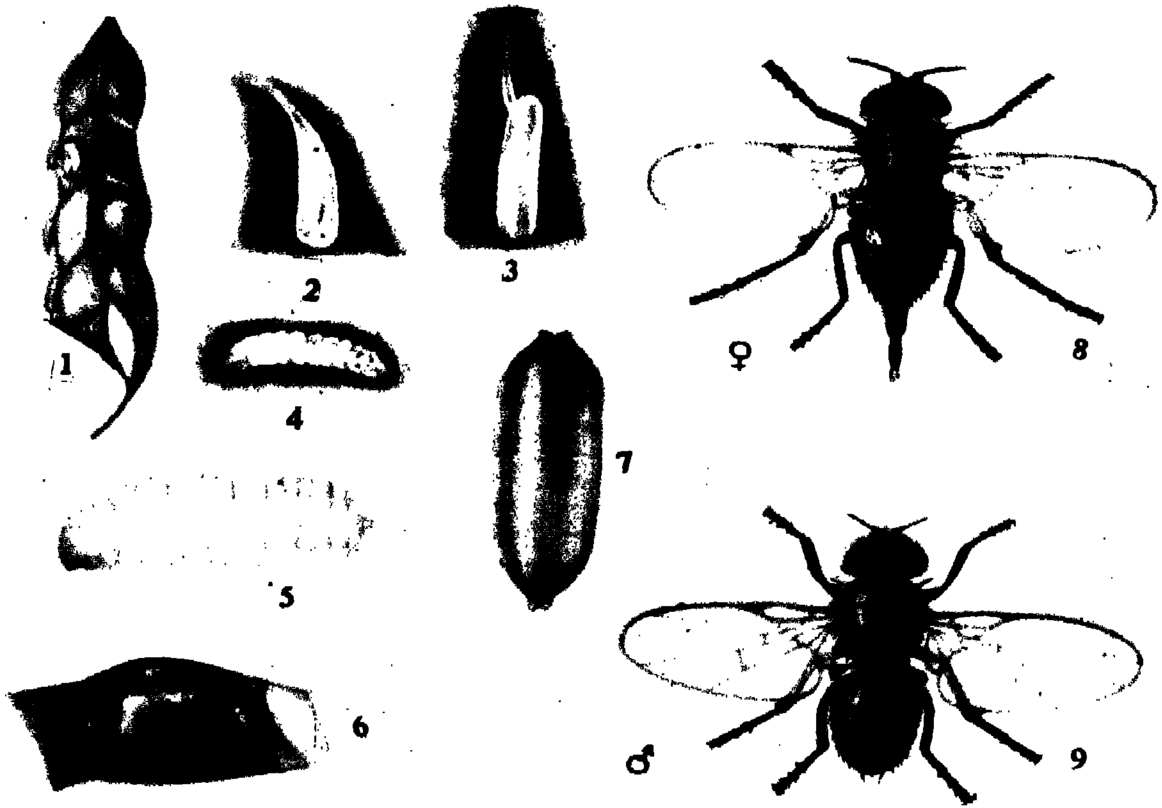
जिस तरह अनेक प्रकार की सब्जियां हैं, उसी प्रकार इनके पीड़कों की संख्या भी अनेक है। फिर भी, इस अध्याय में केवल प्रमुख पीड़कों जैसे फल मक्खी, कद्दू का लाल भृंग, बैंगन बेधक और हड्डा भृंग आदि की ही चर्चा की जायेगी। सरसों के माहू और सरसों की ही आरा मक्खी जो बंदगोभी, शलगम, मूली आदि की फसलों को संक्रमित करते हैं, की चर्चा पहले ही क्रूसीफेरी तिलहनी फसलों के पीड़कों के रूप में की जा चुकी है। आलू और भिंडी की फसल को क्षति पहुंचाने वाले कीट जैसिड की चर्चा कपास के पीड़कों के अंतर्गत की जायेगी।

फल मक्खी

(प्लेट-23)

इस वर्ग में कुछ बहुत हानिकर कीट हैं जो उद्यान मालिकों और बागवानों के परम शत्रु हैं। इनमें से अधिकतर या तो फल के पक जाने पर आक्रमण करते हैं जैसे आम, अमरूद, लुकाट आदि पर अथवा अपरिपक्व मुलायम अवस्था पर जिनमें बहुत-सी कद्दू वर्गीय सब्जियां हैं। दोनों ही मामलों में आक्रमणग्रस्त फल पूरी तरह नष्ट हो जाते हैं। जिन पर शुरू की अवस्था में आक्रमण होता है, वे पकते नहीं, और जिन पर बाद में आक्रमण होता है, वे सड़कर नीचे गिर जाते हैं। जिन फलों को गिरने से पहले ही तोड़ लिया जाता है, उनके गूदे में भी काफी संख्या में गंदे गंदे सफेद मैगट पड़ जाते हैं, जो दरअसल फल मक्खियों के लार्वा ही होते हैं। जिन फलों पर इनका प्रकोप होता है, उनका प्रतिशत बहुत अधिक हो जाता है और कई बार तो घर की बगिया में लता वर्गीय सब्जियां बोने वाला निराश हो जाता है, क्योंकि उसे एक भी अच्छा फल नहीं मिल पाता। यहां तक कि करेला भी नहीं। बड़े पैमाने पर फल सब्जियां उगाने वालों को ऐसा नुकसान नहीं उठाना पड़ता क्योंकि या तो वे ऐसी सब्जियां उगाते ही नहीं जो बुरी तरह संक्रमित होने वाली हों और यदि बोते

प्लेट-17—अरहर फली मक्खी (*ऐगरोमाईजा ओबट्यूसा* माल.)



1. अंड निक्षेपण दिखाने के लिए खोली गई केजेनस काजना की फली 2. ताजा दिये गये अंडे 3. पूर्ण विकसित अंडे 4. ताजा निकला लार्वा 5. पूर्ण विकसित लार्वा 6. फली में क्षतिग्रस्त दाना 7. प्यूपा 8. प्रौढ़ मादा मक्खी 9. प्रौढ़ नर मक्खी

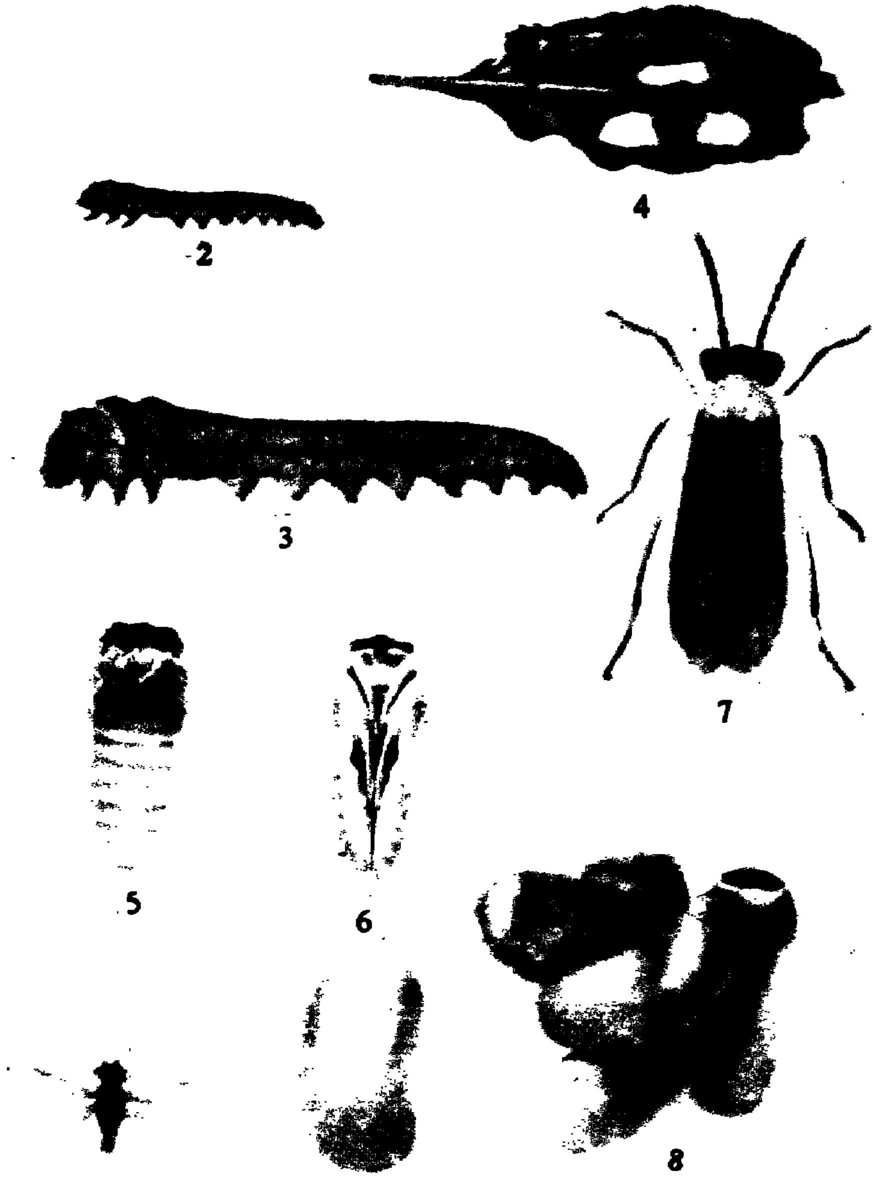
(*इंडि.जर.एग्री.साइ.* खंड 8, प्लेट 5)



प्लेट-18—सरसों का माहू

सरसों की शाखाओं पर पुष्प समूहों और फलियों पर असंख्य माहू। चित्र में बाईं ओर (नीचे) पंख युक्त प्रौढ़ हैं जब कि शेष चित्रों में पंख रहित प्रौढ़ को बड़ा करके दिखाया गया है।

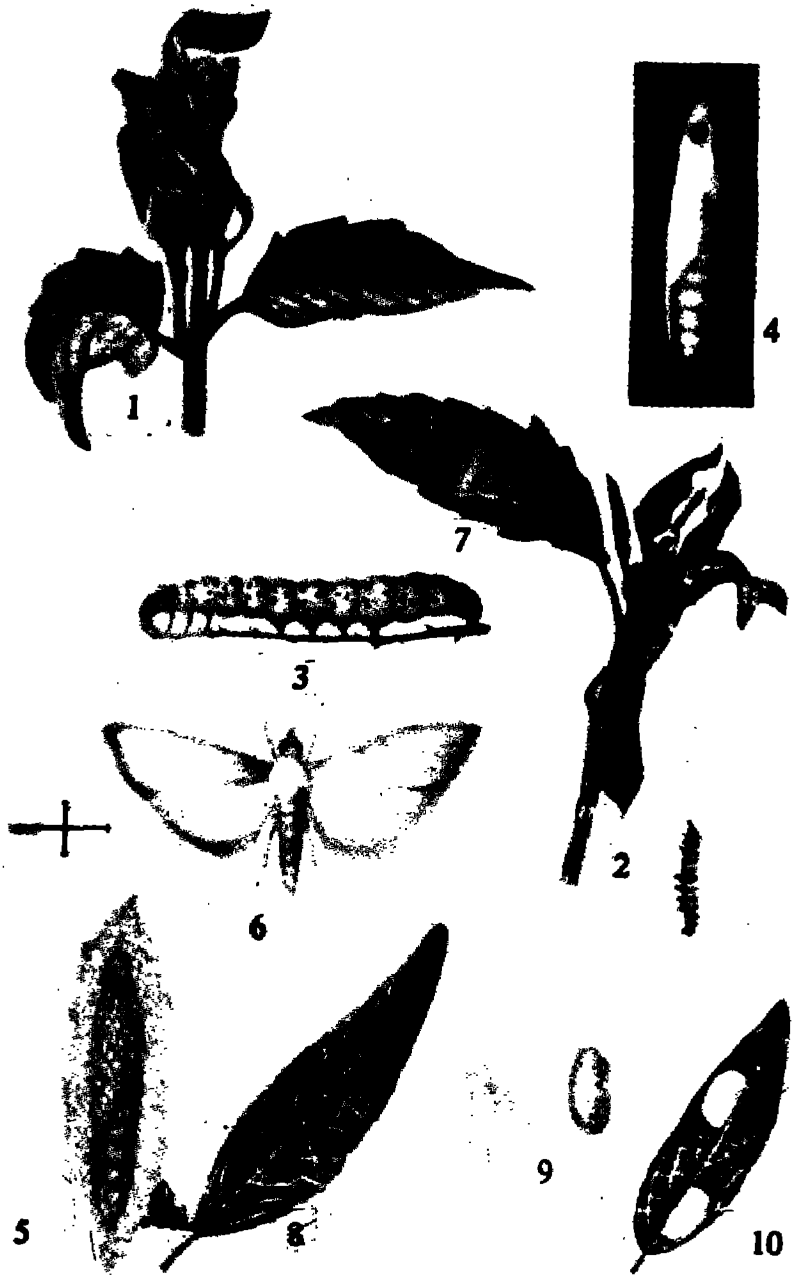
(कीट विज्ञान संभाग संग्रह, भा.कृ.अ.सं.)



प्लेट-19—सरसों आरा मक्खी

1. नव लार्वा 2. अर्ध विकसित लार्वा 3. पूर्ण विकसित लार्वा 4. सरसों की पत्तियां खाता हुआ लार्वा 5. प्यूपा का पृष्ठ चित्र 6. प्यूपा का निचला चित्र 7. पूर्ण कीट 8. कृमिकोषों का झुंड 9. एक कृमिकोष 10. परजीवी

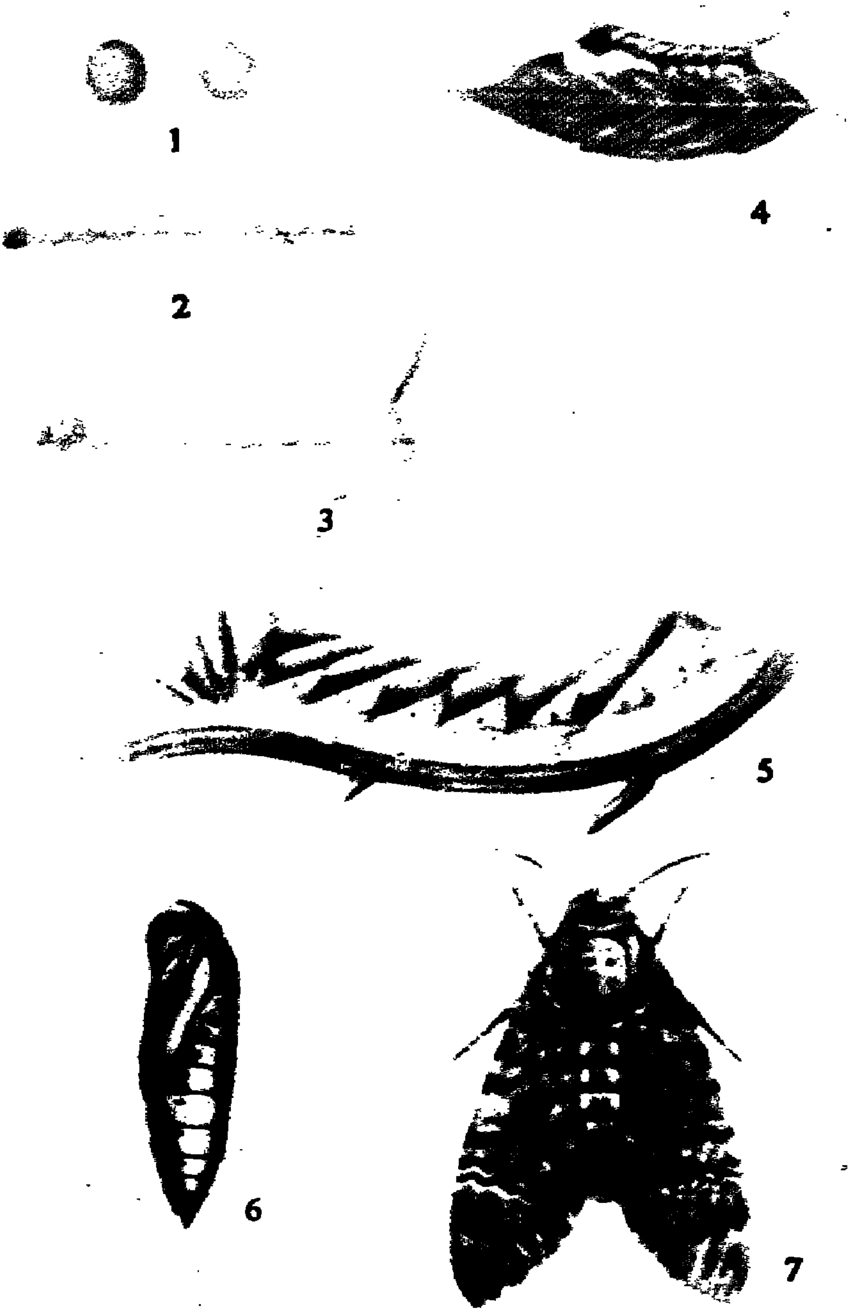
(*इंडि. इंसैक्ट लाइफ,* प्लेट 19, पृष्ठ 164)



प्लेट-20—तिल पत्ती और सूंडी

1. तिल (*सीसामम इंडीकम*) का प्ररोह जिसे लार्वा ने गोल कर दिया 2. दूसरा प्ररोह जिस पर से लार्वा रेशमी धागे से लटक कर नीचे उतर रहा है। 3. लार्वा 4. प्यूपा 5. कृमिकोष में प्यूपा 6. शलभ 7. पत्ते पर शलभ 8. पत्ते पर अंडे 9. अंडे 10. प्ररोह पर जाल बनाने से पहले नव लार्वा बाह्य त्वचा से आहार ग्रहण करते हुए

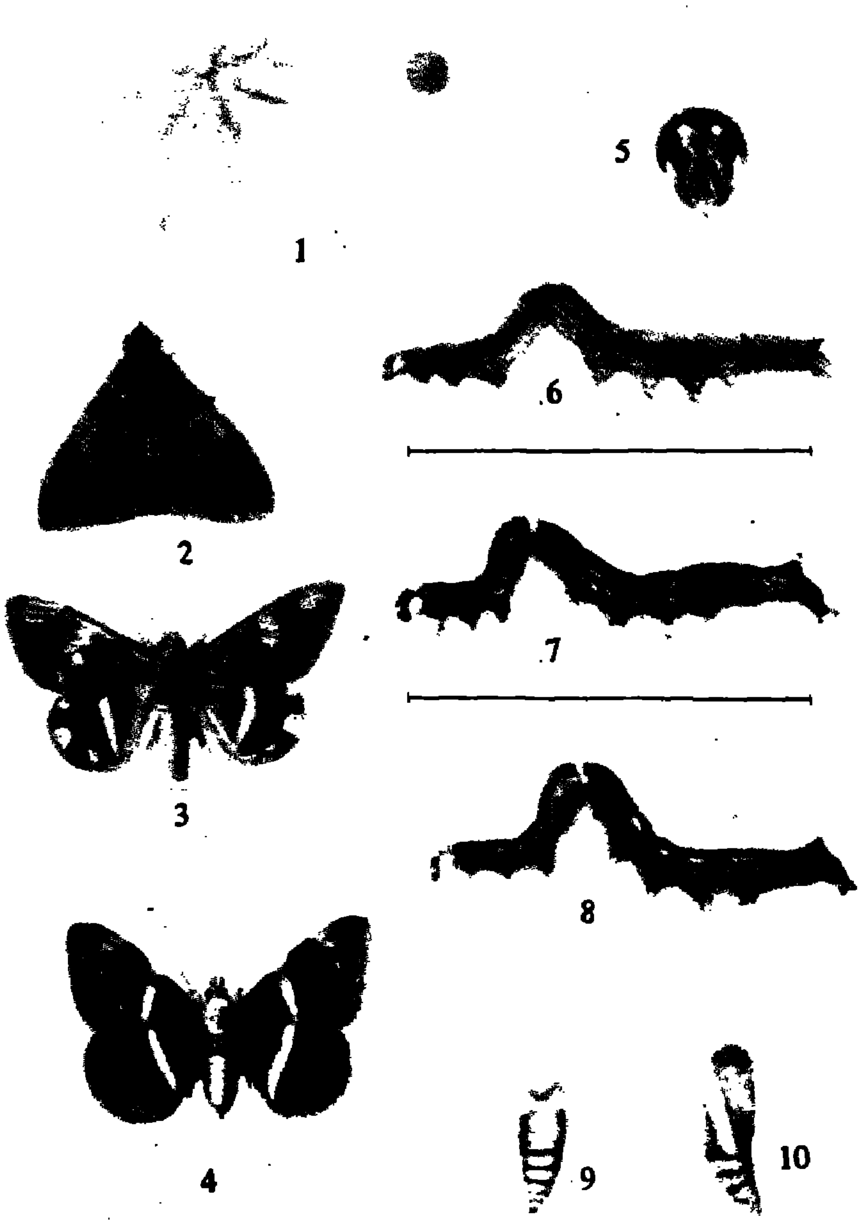
(*सम साउथ इंडियन इंसैक्ट्स*, प्लेट 27, पृष्ठ 441)



प्लेट-21—श्येन शलभ

1. अंडे 2. नव लार्वा 3. व 4. अर्ध विकसित लार्वा 5. पूर्ण विकसित लार्वा 6. प्यूपा 7. पतंगा

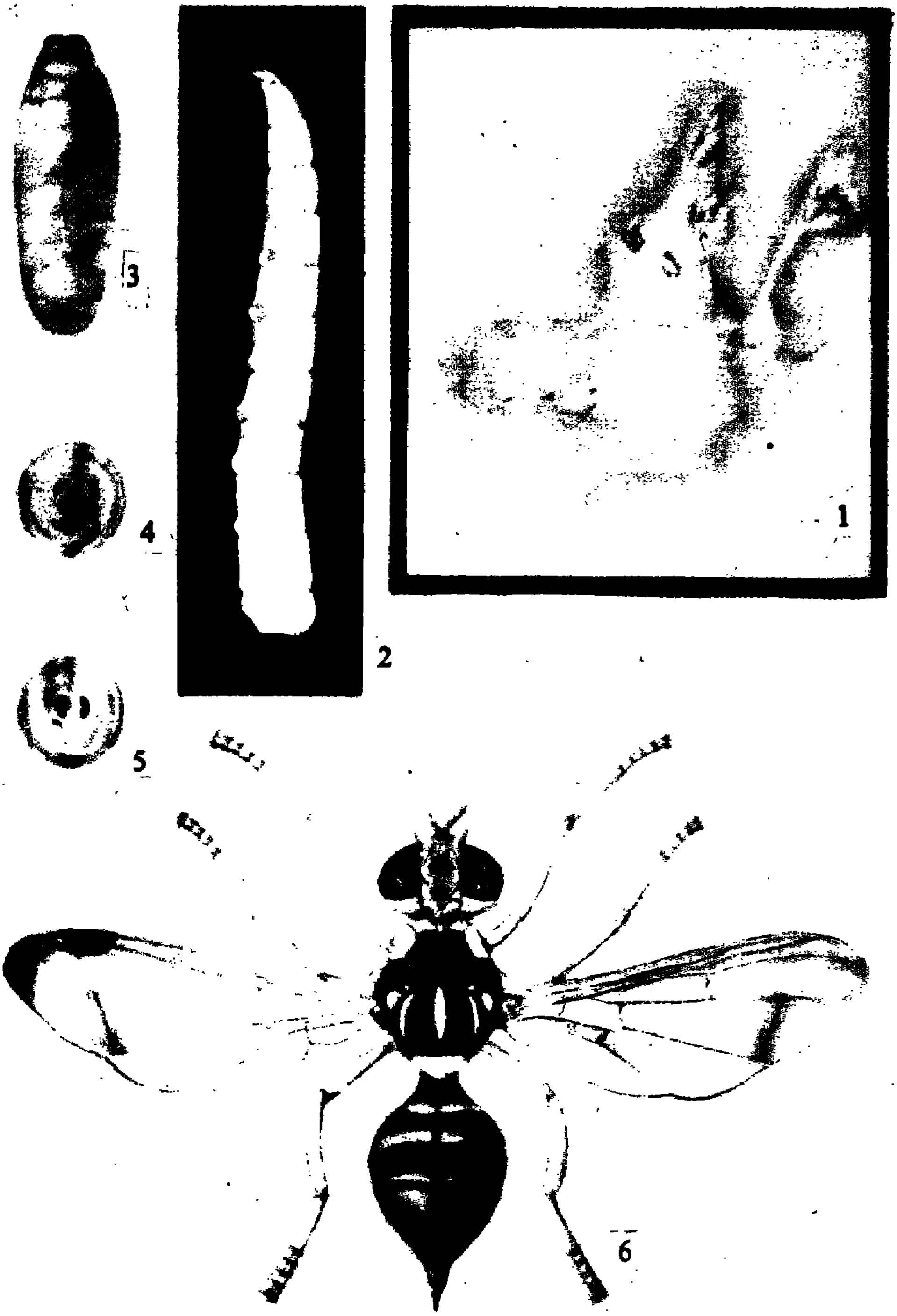
(*इंडियन इंसैक्ट लाइफ,* पृष्ठ 464)



प्लेट-22—अरंडी अर्द्ध कुंडलक

. पत्ते पर अंडे 2-4. प्रौढ़ 5. लार्वा शीर्ष 6-8. लार्वा अवस्थाएं 9. व 10. प्यूपा अवस्थाएं

(*कृषि विभाग, भारत, अनु.लेख*-11, पृष्ठ 59 व 64)



प्लेट-23—फल मक्खी

1. फल के अंदर मैगट 2. लार्वा 3-5. प्यूपा और उसके सिरों का विवरण 6. प्रौढ़

(*सम साउथ इंडियन इंसैक्ट्स*, प्लेट 16)



प्लेट-24—कद्दू का लाल भृंग

1. अंडा 2. और 3. नव और पूर्ण विकसित ग्रब 4. गिरे हुए पत्तों का आहार करते पूर्ण विकसित ग्रब 5. प्यूपा कोष में प्यूपा 6. प्रौढ़ भृंग 7. खीरे के पत्ते पर आहार करते हुए भृंग

(*द्वितीय कीट विज्ञान बैठक की कार्र.*, पृष्ठ 302)

भी हैं तो बचाव के पूरे उपाय करते हैं। साथ ही फल मक्खियों द्वारा पहुंचाई गई क्षति का आकार इतना अधिक होता है कि उद्यान मालिक और बागवान फल मक्खी के प्रकोप को ध्यान में रखते हुए अपनी नीति और योजना को परिवर्तित करते हैं।

हालांकि फल मक्खियों की अधिकतर प्रजातियां विविधभक्षी होती हैं और कई मामलों में तो इनके द्वारा खाये जाने वाले पौधों की संख्या सैकड़ों में होती हैं। फिर भी बहुत-सी मक्खियां ऐसी हैं जिनकी पसंद सीमित होती है। उदाहरण के लिए लता वर्गीय फलों की मक्खी *डैकस डोर्सलिस* हेंडेल[1] केवल करेले पर पलती है और वह भी बंदिता में। दूसरी ओर *डैकस कुकुरबिटी* कोक्विलेट[2] लता वर्गीय फलों की अनेक किस्मों और सब्जियों पर आक्रमण करती है लेकिन जिन फलों पर *डी. डोर्सलिस* आक्रमण करती है, उन पर वह कभी कभी ही आक्रमण करती है। फल मक्खी की तीसरी प्रमुख प्रजाति *डैकुस सिलियेटुस* लोईयू[3] की पसंद लगभग वही है जो *डी.कुकरबिटी* की है, जबकि *डैकुस जोनाटस*[4] की पसंद *डोर्सलिस* और *कुकरबिटी* के बीच की है। बेर की फल मक्खी (*कार्पोमिया बेसुवियाना* कोस्टा)[5] भी अपनी परपोषी आदत के लिए सीमित है और *जिजीफस* वंश, जिसके अंतर्गत बेर भी आते हैं, के कुछ वृक्षों के फलों पर ही आक्रमण करती है।

फल मक्खियों की प्रौढ़ अवस्था सामान्यतः लंबी होती है जो कि कुछ मामलों में एक वर्ष से भी अधिक होती है। इनकी सामान्य बनावट और आकार घरेलू मक्खियों से मिलता जुलता है लेकिन इसके पंखों का रंग लौह जैसा और पारदर्शी होता है। ये फल के छिलके के अंदर हल्का-सा छिद्र बनाकर अंडे देती हैं और छिद्र बनने से फल के अंदर से जो रिसाव छिलके पर आता है, वह राल या गोंद जैसा बन जाता है। अंडों से निकले नव-मैगट कुछ ही दिनों में फल के गूदे में छेद कर प्रवेश करते हैं और अपना शेष लार्वा जीवन वहीं व्यतीत करते हैं। यह लार्वा अवधि कई सप्ताह की होती है। इस अवधि में फल पूरी तरह सड़ जाता है और लार्वा बाहर निकलकर जमीन में प्यूपा बनने के लिए चले जाते हैं। ये जमीन के अंदर कुछ ही सें.मी. नीचे प्यूपा बनते हैं। प्यूपा अवस्था आमतौर पर कुछ ही सप्ताह रहती है, हालांकि कुछ प्रजातियां इस स्थिति में पूरी सर्दियां व्यतीत करती हैं। बेर की फल मक्खी के बारे में बताया गया है कि इसकी प्यूपा अवस्था 14 दिन से 300 दिन तक रहती है। व्यवहार में आर्द्रता और तापमान के अनुसार लगभग सभी जातियां वर्ष में कई पीढ़ियां पूरी करती हैं।

बहुत-सी फल मक्खियों का वितरण बहुत व्यापक है। यह अनापेक्षित भी नहीं है क्योंकि फल एक देश से दूसरे देश में कई प्रकार से जाते हैं और उनका प्रभावी

---

1. *Dacus dorsalis* Hendel
2. *Dacus cucurbitae* Coquillett
3. *Dacus ciliatus* Loew
4. *Dacus zonatus*
5. *Carpomyia vesuviana* Costa

संगरोध (क्वारेन्टाइन) संभव नहीं है। एक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि फल मक्खी की एक विशिष्ट प्रजाति, मेडिटेरेनियन फल मक्खी भारत में नहीं पाई जाती। इसके लिए संभवतः कुछ दिलचस्प परिस्थिति की रचना उत्तरदायी है जो भारतीय उपमहाद्वीप में है। अभी हाल के वर्षों में एक महत्वपूर्ण तथ्य दिखाई दिया है कि *डैकस डोर्सलिस* जाति के हवाई द्वीप में प्रवेश के साथ ही वहां मेडिटेरेनियन फल मक्खी की संख्या में भारी गिरावट आई है। बताया जाता है कि पहली मक्खी जिन स्थानों पर अंडे देती थी, वहीं पर दूसरी मक्खी ने अपने अंडे दिए और उसे वहां से अपदस्थ कर दिया। यदि ऐसा है तो यह संभव है कि *डैकस डोर्सलिस* ने भारत में मेडिटेरेनियन फल मक्खी को जमने नहीं दिया।

इस वर्ग के पीड़कों के नियंत्रण के लिए इसके प्रौढ़ों की आदतें बहुत सहायक हैं। ये मक्खियां मधुबिंदु, पौध स्राव तथा पके और दूषित हुए फलों के रस तथा गूदे को खाती हैं। इसमें फलों से निकला वह स्राव भी शामिल है जो मक्खियों के अंडा देने के लिए बनाये गये छेदों से बहता है। इसका परिणाम यह होता है कि इन मक्खियों को आकर्षित करने के लिए कई प्रकार के ललचाने वाले विष काम में लाये जा सकते हैं। इसके प्रौढ़ दीर्घजीवी होते हैं, इसलिए वे मौसम के उतार चढ़ावों का सामना करते हैं तथा प्रतिकूल अवस्था में झाड़ियों व पेड़ की जड़ों के सूखे पत्तों के नीचे उपयुक्त पारिस्थितिक निकेत में घुस जाते हैं। इस अवस्था में इन मक्खियों का यांत्रिक संग्रह करके भी आसानी से सफाया किया जा सकता है और सावधानी से इनका पता लगाया जा सकता है। इन निकेत में कीटनाशक के छिड़काव द्वारा भी इन्हें नष्ट किया जा सकता है।

फल मक्खी की अपरिपक्व अवस्था पर आक्रमण करने वाली परजीवी जातियों की संख्या दो दर्जन से भी अधिक है। इनमें से अधिकतर जातियां इसकी प्यूपा अवस्था पर आक्रमण करती हैं। इससे फल मक्खी की संख्या स्पष्टतः बहुत अधिक न बढ़कर सीमित ही रहती है। फिर भी नियंत्रण की इस विधि द्वारा इसकी संख्या इतनी कम नहीं हो पाती कि यह फसल के लिए विनाश का कारण न बने।

फल मक्खी के जीवनवृत की विशिष्टिताओं को देखते हुए उसके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपायों की सिफारिश की जाती है। इन सभी उपायों के लिए आवश्यक है कि उन्हें व्यापक पैमाने पर और बड़े क्षेत्रों में साथ साथ किया जाय। कम पैमाने पर किये गये प्रयास निश्चित रूप में व्यर्थ होंगे।

(क) संक्रमित फलों को फल मक्खी की लार्वा अवस्था सहित एकत्र और नष्ट करना :

आधुनिक तकनीकों के होते हुए भी यह विधि फल मक्खी की समस्या के समाधान के लिए बहुत प्रभावी है, विशेषकर भारतीय परिस्थितियों में। दुर्भाग्यवश उसे गंभीरता के साथ नहीं अपनाया गया है। दूषित फलों की पहचान बहुत से फलों में अत्यंत आसान है, विशेषकर

उस हालत में जब कीड़ा फल के अंदर हो। अधिकतर फल तो गिर जाते हैं और अन्य विकृत हो जाते हैं। इसलिए फल मक्खी के नियंत्रण के लिए नियमित रूप से ऐसे फलों को एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए।

(ख) प्यूपा अवस्था को मिट्टी में नष्ट करना

यह दूसरा उपाय है जिसे नियमित रूप में करते रहना चाहिए। इसके लिए संक्रमित पेड़ों के नीचे और संक्रमित खेतों की मिट्टी को दीर्घस्थायी कीटनाशकों से उपचारित करना चाहिए। भूमि की जुताई करने से भी प्यूपा जमीन के ऊपर आ जाता है और उसके शत्रु उसे खा सकते हैं। दूसरे मौसम की प्रतिकूलताओं के भी वे सामने आयेंगे और नष्ट होंगे। इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों में किए गए अनुभवों से पता चला है कि बसंत के आरंभ होने का समय उपयुक्त है, क्योंकि इसके बाद ही इनका प्रकोप आरंभ होता है। स्थानीय प्रजातियों की थोड़ी जानकारी करने से इस अभियान को और उपयुक्त समय पर किया जा सकता है। इस क्रिया को उस समय भी किया जा सकता है जब पीढ़ी से पीढ़ी तक प्यूपाकरण होता हो।

(ग) प्रौढ़ों का विनाश

इसके अंतर्गत (i) उन निकेतों में कीटनाशकों का छिड़काव किया जाय जहां आमतौर पर प्रौढ़ों की गतिविधियां होती हैं, (ii) जाल और लोलुप विषाहार के प्रति उन्हें आकर्षित किया जाय जिसके लिए लैंगिक आकर्षी जैसे विभिन्न आकर्षी काम में लिए जा सकते हैं। और (iii) प्रौढ़ों को मारने की अपेक्षा उन्हें बांझ बना दिया जाय ताकि भविष्य में संततियां पैदा ही न हों। इसके लिए प्रौढ़ों को जाल के प्रति आकर्षित करके बंध्याकरण रेडियोधर्मिता द्वारा अथवा रासायनिक बंध्यता तत्व मिलाकर बांझ बनाना चाहिए न कि लोलुप विषाहार में किटनाशी मिलाकर। आकर्षित लोलुप आहार को समुचित स्थानों पर रखा जा सकता है अथवा खेत या वृक्षों के आसपास उपयुक्त स्थानों पर लगाया या छिड़का जा सकता है।

इस प्रकार फल मक्खी को विभिन्न अवस्थाओं में नियंत्रित कर नष्ट करने की बहुत संभावनाएं मौजूद हैं। फिर भी, फल मक्खी के नियंत्रण के उपाय शायद ही किये जाते हों। क्योंकि केवल व्यक्तिगत स्तर पर इसके नियंत्रण के प्रयास सफल नहीं होते। इसके लिए तो सहकारी और सामूहिक स्तर पर अथवा बहुत बड़े बागानों के मालिकों द्वारा प्रयास करने चाहिए। दूसरे शब्दों में फल मक्खी का नियंत्रण बहुत आसान है लेकिन नियंत्रण का आयोजन कठिन है। इस पीड़क के लिए बड़े पैमाने पर नियंत्रण उपाय करना उपयुक्त ही नहीं, जरूरी भी है।

कद्दू का लाल भृंग

(रैफिडोपैल्पा स्पी.)[1]

(प्लेट-24)

इस पीड़क की कई प्रजातियां हैं, जो पूर्वी अफ्रीका से लेकर भारत सहित आस्ट्रेलिया तक मिलती हैं। इस पीड़क का कई वर्गों में विवरण दिया जा चुका है जिनमें से दो मुख्य हैं *आलेकोफोरा*[2] और *रैफिडोपैल्पा*[3]। उपर्युक्त पीड़क को न्यू वर्ल्ड में *डियाब्रोटिका*[4] के सामान्य वंश नाम से संबोधित किया गया है।

जैसा कि इसका नाम दर्शाता है, प्रौढ़ अवस्था में यह पीड़क केसरिया रंग का लंबवत भृंग होता है जिसकी लंबाई 5 से 8 मि.मी. तक होती है। सब्जी उगाने वाले सभी लोग, यहां तक कि घर की बगिया में सब्जी उगाने वाले भी, इन भृंगों से परिचित हैं। ये भृंग कद्दू वर्गीय सब्जियों के पत्तों पर विशेषकर मिलते हैं, पर करेला इस मामले में अपवाद है। इनकी गतिविधि शरद् ऋतु के बाद उस समय आरंभ होती है, जब कद्दू वर्गीय सब्जियों की अगैती फसल उग आती है। कई बार तो इसका प्रकोप नये पौधों पर इतना तीव्र होता है कि सारी की सारी फसल बौनी पड़ जाती है। इससे न केवल बीज और श्रम की ही हानि होती है, बल्कि इन सब्जियों का उत्पादन भी देर से होता है और बाजार में अच्छे पैसे नहीं मिल पाते क्योंकि अगैती फसल की कीमत सामान्यतः अच्छी मिलती है। हालांकि फसल को क्षति तो बाद की अवस्थाओं में भी होती रहती है, लेकिन वह उतनी प्रदर्शन योग्य नहीं होती जितनी पौधा अवस्था में। इस पीड़क का लार्वा भी फसल को बहुत क्षति पहुंचाता है। लार्वा जड़ और तनों में ही छेद नहीं करता, बल्कि भूमि को छू रहे फल के भाग में भी छिद्र कर देता है।

सर्दियों में भृंग शीत के प्रकोप से बचने के लिए शांत अवस्था में उपयुक्त निकेतों में छुपे रहते हैं। ये निकेत ऐसे कोने वगैरह होते हैं, जहां सूखी लताओं के ढेर पड़े हों अथवा अन्य घास फूस के ढेर भी इनके लिए सुविधाजनक होते हैं। जैसे ही हल्की गर्मी पड़ने लगती है, सर्दियों के दौरान छुपे बैठे भृंगों के समूह बाहर आने शुरू हो जाते हैं। यह बसंत का समय होता है, जब कद्दू वर्गीय सब्जियां अंकुरण काल में होती हैं और भृंग इन्हें खाना बहुत पसंद करते हैं। इस भीषण चराई का सामना नव पौध नहीं कर पातीं और भृंगों का आहार बन जाती हैं। इसी काल में भृंग की प्रजनन गतिविधि भी आरंभ होती है। यदि मिट्टी में उपयुक्त आर्द्रता है तो भृंग उन्हीं पौधों की जड़ों के आसपास अंड निक्षेपण भी

---

1. *Rhaphidopalpa* spp.
2. *Aulacophora*
3. *Rhaphidopalpa*
4. *Diabrotica*

करने लगते हैं। अंडा देने के लिए जिन उपयुक्तताओं का होना जरूरी है, उनके बारे में अभी स्पष्ट ज्ञात नहीं हुआ है। एक ही प्रकार की स्थितियों में कुछ लोगों ने प्रचुर मात्रा में अंडों और लार्वा का पता लगाया, जबकि अन्य को न तो अंड निक्षेपण ही मिला और न ही प्रजनन। लेकिन यह तो निश्चित ही है कि जिन मृदाओं में आर्द्रता नहीं होती, वहां अंडा जनन नहीं होता। यदि अंडा देते समय भूमि में आर्द्रता हो और बाद में वह सूख गई हो तो अंडों में से लार्वा का निकलना बुरी तरह प्रभावित होता है। अधिक आर्द्रता से भी अंडों में से लार्वे का निकलना दुष्प्रभावित होता है। इस पीड़क से फसल को बचाने के लिए इस तथ्य का सदुपयोग करने का सुझाव दिया गया है। अंडे एकल और सामूहिक दोनों तरह के दिये जाते हैं। एक मादा एक बार में लगभग 300 तक अंडे देती है।

आर्द्रता और पर्यावरणीय मौसम के आधार पर अंडों की ऊष्मायन (इन्क्यूबेशन) अवधि 6 से 15 दिन तक भिन्न भिन्न होती है। अंडों से निकलते ही लार्वा बहुत सक्रिय हो जाता है और अपने पास ही जड़ों अथवा तने को छेदना आरंभ कर देता है। जमीन पर पड़े पत्तों में भी वे छेद कर लेते हैं और छुपकर खाते रहते हैं। ये फलों में भी उस स्थान से छेदकर प्रवेश कर जाते हैं, जो जमीन को छू रहे हों। प्रत्येक इंस्टार (निर्मोकरूप) की समाप्ति पर लार्वा निर्मोचन को मिट्टी में घुसता है और बाद में वापस आहार लेने ऊपर आता है। दो या तीन सप्ताह के अंदर चार पांच लार्वा इंस्टार अवस्थाएं पूरी होती हैं। अंतिम इंस्टार के बाद जब लार्वा पूर्ण विकसित हो जाता है, तब यह भूमि के अंदर एक से 25 सें.मी. तक लंबी नली प्यूपा बनने के लिए तैयार करता है। इस प्यूपा कोष्ठ को वह टेढ़ा-मेढ़ा बनाता है, जिससे कि पानी का उसमें प्रवेश न हो। यही नहीं, यह भी विश्वास किया जाता है कि यह एक तरह का स्राव निकालकर प्यूपा कोष्ठ को जलसह (वाटरप्रूफ) बना लेता है। प्यूपा अवधि 1 से 3 सप्ताह तक होती है। इस प्रकार एक जीवनवृत 4 से 8 सप्ताह या अधिक तक चलता है। वर्ष के अंत में जो संतति पैदा होती है, उसकी प्रौढ़ावस्था कई महीनों के लिए शीतनिष्क्रिय अवस्था में चली जाती है। आमतौर पर वर्ष में तीन या चार पीढ़ियां पूरी होती हैं। इस पीड़क का कोई विशिष्ट जैव नियंत्रण नहीं है। इसलिए यह आश्चर्य नहीं है कि यह पीड़क बहुत गंभीर है, आश्चर्य यह है कि जितना गंभीर यह है उससे कहीं ज्यादा गंभीर क्यों नहीं है।

इस पीड़क और परपोषी फसल के मौसम इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ है कि जो संतति शरद ऋतु के बाद बसंत से पहले पैदा होती है, वह सबसे खतरनाक होती है क्योंकि इस समय अधिकतर बसंतकालीन कद्दू वर्गीय फल, सब्जियां उगाई जाती हैं। साथ ही उस समय शीतकाल की निष्क्रिय अवस्था से जागृत इसकी पीढ़ी के भृंगों की अपरिपक्व अवस्था से मृदा मुक्त होती है। इसलिए इसके नियंत्रण करने और इसकी संख्या में वृद्धि न होने देने - दोनों ही कार्यों के लिए बसंत का आरंभिक समय सबसे उपयुक्त

होता है। प्रौढ़ावस्था के दौरान यह पीड़क बहुत संवेदनशील भी होता है। इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त उपाय निम्नलिखित हो सकते हैं।

(क) पाश फसल

मौसम के आरंभ में ही कुछ छिटपुट पौधे इधर उधर लगा देने चाहिए, ताकि जैसे ही शीत निष्क्रियावस्था खत्म हो, भृंग अपने निकेतों से निकलकर उनकी ओर आकर्षित हों। इन पौधों पर तेज दीर्घस्थायी कीटनाशक दवा छिड़क रखनी चाहिए ताकि प्रौढ़ भृंग जैसे ही उसकी ओर आकर्षित हों, वे अंडे देने से पूर्व ही मर जायें। इन पौधों के आसपास की मृदा को भी तेज मृदा कीटनाशक से उपचारित कर देना चाहिए ताकि यदि अंडे दे दिए गये हों तो उनसे लार्वा निकलते ही विष के संपर्क में आकर खत्म हो जायें और जड़ों अथवा तने तक न पहुंच सकें।

(ख) प्रतिकर्षक

यह कीट कई प्रकार के प्रतिकर्षकों, यहां तक कि राख से भी प्रतिकर्षित होता है। इस विधि का उपयोग उस स्थिति में और बढ़ जायेगा यदि सारे क्षेत्र पर प्रतिकर्षक न डालकर थोड़े क्षेत्र को छोड़ दिया जाय और उसमें पाश फसल उपर्युक्त विधि के अनुसार लगा दी जाय। यह भी सलाह दी जाती है कि प्रतिकर्षक पदार्थ में कीटनाशी चूर्ण भी मिला दिया जाय ताकि जो भृंग प्रतिकर्षित न हो सकें वे विष के संपर्क में आकर खत्म हो जायें।

(ग) मानवीय संग्रह और नाश

आज के आधुनिक युग में यह सुझाव अत्यंत प्राचीन लग सकता है लेकिन इस भृंग के लिए भी यह तकनीक अत्यंत उपयुक्त है। सुबह के ठंडे मौसम में भृंग बहुत सुस्त होते हैं और उस समय किसी बर्तन में मिट्टी का तेल मिले पानी में इन्हें पौधे हिलाकर गिराकर मारा जा सकता है। इन्हें हाथ से भी पकड़ा जा सकता है। यह तकनीक उस स्थिति में अधिक कारगर है अगर घरेलू बगिया में इस पीड़क का नियंत्रण करना हो। बड़े खेतों में भी यदि एक आदमी लगातार तीन दिन तक सुबह सुबह एक घंटे इस क्रिया को करे तो दो एकड़ के क्षेत्र से लगभग 7,000 भृंग पकड़ सकता है।

(घ) यांत्रिक सुरक्षा

यदि घर की बगिया में कुछ ही पौधों को इस भृंग से सुरक्षित रखना हो तब यह भी सलाह दी जाती है कि उन पौधों पर हल्की जाली लगा दी जाय जो मलमल की या तार की भी हो सकती है। इससे संवेदनशील पौध अवस्था में फसल की रक्षा हो सकेगी अन्यथा वह नष्ट हो जायेगी।

(ड) अपरिपक्व अवस्था में नियंत्रण उपाय

(i) चूंकि अंडे आर्द्र भूमि पर दिये जाते हैं और उनसे निकले लार्वा जड़ों या तनों तक पहुंचने से पहले मृदा के संपर्क में आते हैं, इसलिए पौधों के आसपास की मृदा को तेज कीटनाशक से उपचारित करना चाहिए ताकि यदि उपर्युक्त उपायों के बावजूद अंडे दे दिए गए हैं तो उनसे निकले लार्वा कीटनाशक के संपर्क में आकर मर जायें और पौध ऊतकों में प्रवेश न कर सकें।

(ii) क्योंकि इस पीड़क की अपरिपक्व अवस्थाएं घास फूस और सूखी लताओं के ढेर में छुपी रहती हैं, इसलिए यह परामर्श दिया जाता है कि ऐसी सामग्री को फसल लेने के बाद में जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। साथ ही खेत की जुताई भी कर देनी चाहिए ताकि मौसम और अन्य प्राकृतिक शत्रुओं से ये नष्ट हो जायें। यह उस समय अधिक जरूरी है, जब बसंतकालीन फसल ली जा चुकी हो और वर्षाकालीन फसल बोने का समय आने वाला हो। इसी क्रिया को उस समय भी दुहराया जाना चाहिए जब दूसरी फसल ली जा रही हो ताकि भृंग सुरक्षित निकेतों में जाकर छुपने से पहले ही मार दिए जायें। कद्दू वर्गीय लताओं के ढेर इस भृंग को शरण लेने के लिए बहुत आकर्षित करते हैं, इसलिए सलाह दी जाती है कि फसल काटने के बाद उसी जगह के समीप उसके घासफूस को एकत्र कर जला दिया जाय।

बैंगन बेधक

(प्लेट-25)

बैंगन के पौधे की दो प्रजातियों की पीड़क सूंडियों में से एक (*ल्यूसीनोडिस ओर्बोनैलिस* गुनी)[1] पर्णवृंतों और बड़े पत्तों की मध्य शिराओं, नव प्ररोहों और फल-कलिकाओं तथा बैंगन के फलों में छेद करती हैं, जबकि अन्य (*यूजोफेरा पर्टीसेला* रैगोनाट)[2] की गतिविधि बैंगन के पौधे के केवल तने और उसके निचले हिस्से तक सीमित रहती हैं। यहां तक कि इनकी गतिविधियां जमीन में कुछ ही इंच ऊपर तक रहती हैं। पहले वाली सूंडी रंग में गुलाबी-बैंगनी होती है, जबकि दूसरी का रंग क्रीमी-सफेद होता है। पहले वाली के अंडे लंबवत होते हैं जबकि दूसरी के पपड़ी जैसे।

ल्यूसीनोडिस जाति के प्रौढ़ सफेद रंग के शलभ होते हैं, जिनके पंखों पर गुलाबी-भूरे चिह्न होते हैं। ये सामान्यतः पत्तों की सतह पर छितरे हुए लंबवत अंडे देते हैं। एक मादा

---

1. *Leucinodes orbonalis* Guenee
2. *Euzophera perticella* Ragonot

150 से अधिक अंडे देती है। 27° से. के तापमान पर अंडों में से लार्वा 4 दिन में निकल जाते हैं और इसके तुरंत बाद छोटे छोटे लार्वा पौधे के ऊतकों में प्रविष्ट हो जाते हैं। उस समय प्रवेश छिद्र इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनका पता नहीं चलता। इसलिए स्वस्थ नजर आने वाले फलों और तनों में भी ये काफी संख्या में हो सकते हैं। हां, जब ये लार्वा पर्णवृंत अथवा नव प्ररोह में प्रवेश कर जाते हैं तो प्रभावित हिस्सा मुरझा कर कुम्हला जाता है। लार्वा अवधि विभिन्न स्थितियों के अनुसार बदलती है जो 27° पर लगभग 9 दिन की होती है। यदि प्रभावित ऊतक सड़ने लग जाय तो लार्वा वहां से निकलकर ताजा फल या प्ररोह में प्रविष्ट हो जाते हैं। पूर्ण विकसित लार्वा भी फलों को छोड़कर प्यूपा बनने के लिए अपेक्षाकृत शुष्क निकेतों की ओर चले जाते हैं। प्यूपा अवधि लगभग डेढ़ सप्ताह की होती है तथा प्रौढ़ अवस्था मात्र कुछ ही दिनों की। इस पीड़क की अगली पीढ़ियां भी तापमान के अनुसार बिना किसी अंतराल के जारी रहती हैं और यह अविकल्पी उपरति में नहीं जाता। बैंगन की विभिन्न किस्मों में इस पीड़क के प्रति अलग अलग संवेदनशीलता पायी जाती है। कुछ कार्यकर्ताओं ने पाया कि गोल किस्म की अपेक्षा लंबी किस्म के फल कम प्रभावित होते हैं।

यूजोफेरा पर्टिसेला के प्रौढ़ भी उसी पाईरालिडी परिवार के शलभ होते हैं जिसके *ल्यूसीनोडिस* होते है। बैंगन के अलावा यह जाति मिर्च, टमाचार और कई बार आलू पर भी आक्रमण करती है। शलभ एकल अथवा समूह में नए पत्तों के उस कोने पर आमतौर पर अंडे देते हैं, जहां शिराएं मध्य शिरा से मिलती हैं। कई बार अंडे पर्णवृंतों और नव प्ररोहों के मुलायम भागों पर भी पाये गये हैं। अंडे की अवस्था 3 से 10 दिन तक रहती है, हालांकि अधिकतर अंडों में से 4 से 6 दिन में लार्वा निकल जाते हैं। अंडे से निकलने के तुरंत बाद छोटे छोटे लार्वा मिनटों में ही तनों या पर्णवृंत ऊतकों में प्रविष्ट हो जाते हैं। यह अंदर ही अंदर ऊतकों को खाते रहते हैं तथा प्रविष्टि छिद्र से इनका मल बाहर निकलता हुआ देखा जा सकता है। पर्यावरणी तापमान के अनुसार लार्वा की पूर्ण वृद्धि लगभग एक से दो माह में हो जाती है, जिसके दौरान यह 4-5 बार निर्मोक करता है। इस अवधि के दौरान यह भूमि के 2-3 इंच ऊपर तने में आहार प्राप्त करता रहता है। इस जाति के बारे में यह भी रिपोर्ट मिली है कि शीतकाल में या नवंबर से फरवरी तक इसकी लार्वावस्था शीतनिष्क्रियता में बीतती है। इसका प्यूपा कोमल मटमैले सफेद अथवा भूरे से कोया में बनता है जो आमतौर पर उस नलिका में मिलता है जहां लार्वा भोजन करता है। कई बार लार्वा उस नलिका से बाहर निकलकर पौधे की सतह पर भी प्यूपा बनता है अथवा नीचे भूमि पर रेंगकर आता है और तरेड़ों में प्यूपा बनता है। प्यूपा अवधि 9 से 16 दिन के बीच होती है।

जहां तक बैंगन बेधक के नियंत्रण का संबंध है, इसके लिए फसल पर आक्रमण

की शुरुआत होते ही नजर रखनी चाहिए। क्योंकि नव प्ररोहों पर इसके प्रकोप को आसानी से पहचाना जा सकता है और नष्ट किया जा सकता है। रासायनिक नियंत्रण उसी समय करना चाहिए जब आरंभिक सावधानी नहीं बरती गई हो या रस चूसने वाले बग अथवा *एपीलैकना* का भी प्रकोप शामिल हो। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रासायनिक छिड़काव से प्रकोप आगे नहीं बढ़ेगा, लेकिन जो बेधक पहले ही फलों अथवा पौधों में प्रवेश कर चुके हैं, उन पर इसका शायद ही कोई असर हो। बैंगन की फसल की पेड़ी लगाने से ही नहीं बचना चाहिए। अपितु उसकी पुरानी जड़ों को भी निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए ताकि पुराने पौधों पर बैंगन बेधक आश्रय न बनाये रखें और एक मौसम की फसल से दूसरे मौसम की फसल तक संक्रमण न हो।

हड्डा भृंग

(प्लेट-26)

एपीलैकना वंश के भृंग इस दृष्टि से विशिष्ट हैं कि वे किसान के शत्रु होते हैं, जबकि कोक्सीनेलीडी कुल (लेडी बर्ड भृंग) के शेष सहायक वंश बहुत उपयोगी मित्र हैं, क्योंकि वे परभक्षी होते हैं और ये काफी बड़ी संख्या में माहू, खपरी कीट, कुटकी आदि को प्रभावी नियंत्रण में रखते हैं। शाकभक्षी वंश का *एपीलैकना* विकासवाद के सिद्धांत का उलट प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि लेडी बर्ड भृंग जहां मांसभक्षी होता है वहां अन्य अधिकतर भृंग जातियां फिर शाकभक्षी आदतों की हो गई हैं। *एपीलैकना* अधिकतर कद्दू वर्गीय (कुकुरबिटेसी) और आलू वर्गीय (सोलेनेसी) कुलों के पौधों से आहार प्राप्त करते हैं और मुख्यतया बैंगन और आलू ही इनको प्रिय हैं। हालांकि कई बार अन्य कुकुरबिटेसी कुल की सब्जियों पर भी इनका गंभीर प्रकोप देखा गया है। इनकी आहार आदत भी विलक्षण है। लार्वा और प्रौढ़ दोनों ही पत्तियों को इस प्रकार खाते हैं कि उसका हरा भाग समाप्त हो जाता है और शेष पत्ता कंकाल बन जाता है। इसमें शिराओं का जाल-सा ही शेष रह जाता है। ये पत्ते बाद में सूख जाते हैं और गंभीर प्रकोप के समय पूरी फसल विकृत नजर आती है।

इन भृंगों का आकार आमतौर पर गोल होता है और सिर वक्ष के बीच धंसा हुआ लगता है। इसके रंग में भी अंतर मिलता है जो भूरे-पीले से गहरे पीले पृष्ठ का होता है, जिस पर काले दाग या धब्बे होते हैं। अत्यंत सावधान किसान ही इसे पहचान सकता है क्योंकि यह *कोक्सीनैल्ला* से रंग और आकार में मिलता-जुलता होता है। यह माहू और खपरी कीट से प्रभावित फसलों में मिलता है तथा इनका भक्षण करता है।

अंडे सामान्यतः पत्तों के निचले हिस्सों पर दिये जाते हैं तथा पीले समूहों में अच्छी

तरह नजर आते हैं। एक समूह में सैकड़ों दीर्घवृत्तीय (इलिप्टिकल) अंडे पत्ते की सतह से उर्ध्व दिशा में चिपके होते हैं। 3-4 दिन में अंडे में से छोटे छोटे विशिष्ट आकृति के लार्वा निकलते हैं, इनका सिर चौड़ा और शरीर संकरा तथा कंटीली रचनाओं से ढका होता है। अपनी आहार गतिविधि ये पत्ते की निचली सतह तक ही सामान्यतया सीमित रखते हैं। लार्वा अवस्था 12 से 18 दिन तक रहती है जिसमें तीन लार्वा इंस्टार होते हैं। प्यूपा भी पत्ते की सतह पर ही बनता है। उस समय लार्वा अपने उदर के अंतिम हिस्से को पत्ते की सतह से, अपने शरीर से निकले गाढ़े चिपकने वाले स्राव की सहायता से जोड़ लेता है। प्यूपा निर्माण अंतिम लार्वा त्वचा में होता है जो पीठ की ओर से फट जाती है। प्यूपा अवधि 3 से 6 दिन तक रहती है जिसके बाद प्रौढ़ प्रकट होता है। प्रौढ़ भी पूरा भुक्कड़ होता है और पत्ते के निचले तथा ऊपरी दोनों हिस्सों को खूब खाता है। इसका जीवन एक महीने से कम से लेकर दो महीने से अधिक तक रहता है।

जहां तक इसके नियंत्रण का संबंध है, यदि इलाका छोटा हो तो शुरू में ही अंडों का पता लगाकर उन्हें एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए। इसकी लार्वा और प्रौढ़ अवस्था को भी मिट्टी का तेल मिले पानी के पात्र में पौधे को हिलाकर गिराया जा सकता है। यह क्रिया सुबह के समय उपयुक्त रहती है। यदि इलाका विस्तृत हो तो अच्छे दीर्घस्थायी स्पर्श और उदर विष का उपयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक किया जा सकता है।

9

रेशा फसलों के पीड़क

भारत में चार प्रमुख रेशा फसलें हैं - कपास (*गॉसिपियम* प्र.)[1], पटसन (*कॉर्कोरस* प्र.)[2], सन (*क्रोटेलेरिया जुंसिया* लिनायस)[3] और मेस्टा (*हिबिस्कस कैनाबिनस* लिनायस)[4]। यहां इसकी प्रथम दो फसलों के प्रमुख पीड़कों की ही चर्चा की जायेगी।

कपास पीड़क

कपास के पीड़कों की स्थिति पर्याप्त पेचीदा है। इसकी विभिन्न अवस्थाओं पर लगभग एक सौ तीन से अधिक पीड़क आक्रमण करते हैं। इसलिए इनका नियंत्रण करना भी उतना ही पेचीदा है। सौभाग्य से इनमें से कुछ ही इतने गंभीर हैं कि उनका आर्थिक महत्व है। विभिन्न क्षेत्रों में इन पीड़कों के नियंत्रण के जो उपाय किये गये हैं, वे भी अनिश्चित हैं। इसके लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं : (क) पीड़क जातियों का बाहुल्य जिनमें कई साथ साथ पाये जाते हैं, (ख) बहुत से पीड़कों के अनेक परभक्षी शत्रु हैं और जब पीड़कों के नियंत्रण के लिए रसायनों का प्रयोग किया जाता है तो परभक्षी और परजीवी भी उसकी चपेट में आ जाते हैं जिससे उनकी संख्या कम हो जाती है और (ग) बढ़ती हुई कपास फसल की शारीरिक दशा ऐसी होती है कि इसकी सूक्ष्म-जलवायु पीड़कों के लिए अत्यंत अनुकूल रहती है तथा पूरे के पूरे पौधे को रासायनिक दवाओं द्वारा प्रतिरक्षित नहीं किया जा सकता। इसलिए यहां दो आंतरिक भक्षियों और दो बाह्य अशनकारी (फीडर) का विवेचन किया जा रहा है।

---

1. *Gossypium* spp.
2. *Corchorus* spp.
3. *Crotalaria juncea* Linnaeus
4. *Hibiscus cannabinus* Linnaeus

चितकबरी डोडा सूंडी

(प्लेट-27)

कपास की फसल की चितकबरी डोडा सूंडी की कम से कम तीन किस्में हैं जिनमें से दो गंभीर हैं। इनके नाम हैं: *ऐरिस इंसुलेना* [1] और *ऐरिस विटेल्ला* [2]। उन्नीसवीं सदी से इन रात्रिचर शलभों को विभिन्न नाम दिये गये जिनमें संभवतया सर्वप्रथम *टारट्रिक्स इंसुलेना* [3] नाम बोइसडुअल ने सन् 1833 में दिया। लेकिन इसका वर्तमान नाम अब काफी समय से चला आ रहा है। इन कीटों का वितरण भी बहुत व्यापक है। उदाहरण के लिए *ई. इंसुलेना* स्पेन, सिसली, क्रीट, सीरिया, फिलिस्तीन, मिस्र, भारत, बर्मा, मैलागैसी और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। कपास के अलावा इस पीड़क का प्रकोप मालवसी कुल के अन्य पौधों पर भी होता है जिनमें भिंडी *एबेलमोस्कस ऐसक्युलेन्ट्स* [4] की फसल भी शामिल है। भिंडी अत्यंत आर्थिक महत्व की फसल है। कुछ देशों में मक्का की फसल पर भी इसका प्रकोप पाया गया है।

इस पीड़क की लार्वा अवस्था एक विनाशकारी प्रावस्था है। इस अवस्था में यह नवजात पौधों के तने और प्ररोह में छेद करती है तथा बाद में नये स्कवायरों तथा साथ ही साथ कलियों और डोडों को भी खाती हुई अंदर घुस जाती है। लार्वा 4-5 बार निर्मोक करता है। इसका मुख्य लक्षण यह है कि शरीर की सतह अनियमित चित्रित और कांटेदार होती है। इसलिए कई देशों में इन्हें कांटेदार डोडा सूंडी और अन्यों में चितकबरी डोडा सूंडी कहा जाता है। पूर्ण वृद्धि-प्राप्त लार्वा की लंबाई भी 2 सें.मी. से कम होती है।

प्रौढ़ अवस्था में यह मध्यम आकार का शलभ होता है जिसकी लंबाई एक सें.मी. और पंख विस्तार लगभग 2 सें.मी. होता है। शरीर का रंग चमकीला हरा और उदर चांदी के रंग जैसा प्रतीत होता है। पंखों पर तीन अलग अलग तरह की आड़ी रेखाएं होती हैं। इसकी तीनों अवस्थाओं की अवधि तापमान और वातावरणीय आर्द्रता पर निर्भर होती है तथा बड़ी मात्रा में बदलती रहती है। प्रौढ़ अवस्था एक सप्ताह से कम और दो माह से अधिक तक पाई गई है। शलभ ताजा पत्तों और ताजा स्कवायरों आदि पर एकल छितरे हुए अंडे देते हैं। अंडों में से लार्वा निकलने में 3 दिन से कम अथवा 10 दिन से भी अधिक समय लग जाता है। अंडे से निकलते ही लार्वा पौधे की सतह पर कोई आधा घंटे तक इधर-उधर रेंगते हैं और बाद में पौध ऊतकों को छेदना आरंभ कर देते हैं। लार्वा अवस्था लगभग एक सप्ताह से दो माह तक होती है। प्यूपा निर्माण सामान्यतया पड़ी हुई सामग्री, पौध सतह और मृदा की तरेड़ों या खाली जगहों में होता है। प्यूपा निर्माण से पूर्व

---

1. *Earias insulana*
2. *Earias vitella*
3. *Tortrix insulana*
4. *Abelmoschus esculentus*

लार्वा मटमैले सफेद रंग का रेशमी कोया बनाता है। प्यूपा अवधि भी कुछ दिन से लेकर दो माह से अधिक तक हो सकती है।

इस पीड़क के प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या भी पर्याप्त है। चितकबरी डोडा सूंडी के अंडों, लार्वा और प्यूपा पर कीट परजीवी आक्रमण करते हैं। ये जीव इस पीड़क की संख्या को नियंत्रण में रखने में बहुत सहायक हैं, फिर भी कपास उत्पादक क्षेत्रों में कई बार यह पीड़क भयंकर रूप ले लेता हे।

इस पीड़क के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय प्रभावी हैं :

(क) कपास के बे-मौसम में पीड़क को आश्रय देने वाले पौधों का विनाश

इस पीड़क में शीतनिष्क्रियता नहीं होती, हालांकि मौसम का इसकी गतिविधियों पर काफी असर पड़ता है। यह कपास की एक फसल से दूसरी फसल तक निरंतर रहता है। इसके लिए यह कपास के डंठलों में कटाई के बाद आश्रय लेता है। अथवा अन्य परपोषी पौधों पर चला जाता है। इसलिए यह सलाह दी जाती है कि कपास की फसल लेने के बाद उसके डंठलों और अन्य अवशिष्टों को खेत से निकाल कर जला दिया जाय तथा साथ ही इसके पीड़क को आश्रय देने वाले अन्य जंगली पौधों को भी बड़े पैमाने पर नष्ट कर देना चाहिए। इस पीड़क से भिंडी की फसल को भी पूर्ण सुरक्षा देने के लिए अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए, विशेषकर बे-मौसम में उगाये जाने पर। अन्यथा न केवल भिंडी की फसल को ही हानि पहुंचेगी बल्कि आने वाली कपास की फसल पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा।

(ख) संक्रमित पदार्थों का संग्रह और नाश

जब पास की नयी उगी फसल पर इसका संक्रमण आरंभ होता है तो पौधों और प्ररोहों को दूर से देखने से इसका पता चल जाता है। ऐसे संक्रमित प्ररोह कुम्हला कर लटक जाते हैं जिन्हें आसानी से हटाकर जला या दबा देना चाहिए। इसी प्रकार पौधे से ग्रस्त डोडे और स्कवायर गिर जाते हैं, उन्हें एकत्र कर नष्ट किया जा सकता है। अच्छे परिणामों के लिए इस क्रिया को केंद्रित और संगठित रूप में बड़े क्षेत्रों में किया जाना चाहिए।

(ग) रासायनिक नियंत्रण के लिए अच्छे दीर्घस्थायी स्पर्श कीटनाशक का चयन करना चाहिए। सफलता के लिए दो सावधानियां आवश्यक हैं। (i) कीटनाशक का प्रयोग उस समय पर करना चाहिए जिस समय अंडों में से सबसे अधिक लार्वा निकलते हैं ताकि पौध ऊतकों में प्रवेश से पहले ही नये नये निकले लार्वा विष के संपर्क में आकर नष्ट हो जायें और (ii) कीटनाशकों के उपयोग से पहले परजीवियों की गतिविधियों का खेत में सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए। अक्सर परजीवी और परभक्षी जितना पीड़क नियंत्रण करते हैं उसे रासायनिक नियंत्रण निरर्थक कर देता है।

गुलाबी डोडा सूंडी

(पेक्टीनोफोरा गोसिपेला सांडर्स*)*[1]

(प्लेट-28)

कपास की गुलाबी डोडा सूंडी का प्रसार बहुत व्यापक है और शायद विश्व स्तर पर यह इसका सबसे भयंकर पीड़क है। इसका मूल स्थान दक्षिण एशिया क्षेत्र माना जाता है जहां से व्यवहारतः इसका प्रसार सारे विश्व के कपास उत्पादन क्षेत्रों में हुआ। साथ ही इस क्षेत्र में कपास की विदेशी किस्मों के आगमन ने इसकी गंभीरता को और बढ़ा दिया। इस प्रकार इस क्षेत्र में अमरीकी कपास गुलाबी डोडा सूंडी से अधिक प्रभावित है, जबकि स्थानीय कपास किस्में प्राकृतिक रूप में इस पीड़क के प्रति टिके रहने में सक्षम हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि विदेशी पीड़क उस देश में भयंकर रूप ले लेते हैं, जहां उनका प्रवेश हुआ हो। अमेरिका में बहुत-से कृषि पीड़क इस वर्ग में आते हैं। भारत में गुलाबी डोडा सूंडी और कपास के अन्य पीड़कों का आरंभिक दिलचस्प उदाहरण मिलता है जब विदेशी किस्मों के आने से देशी पीड़कों का रूप अत्यंत उग्र हो गया था। अभी हाल में बड़े स्तर पर विभिन्न फसलों के विदेशी जननद्रव्यों (जर्मप्लाज़्म) के समावेशन के कारण ऐसे बहुत से उदाहरण सामने आये हैं।

इस पीड़क के वैज्ञानिक नाम में वंश का रूप *डिप्रेसैरिया*[2], *जैलेकिया*[3] और *प्लैटिड्रा*[4] से लेकर *पेक्टिनोफोरा* तक कई बार बदला है। लेकिन जातीय घटक *गोसिपेला* अपरिवर्तित रहा। इसका सामान्य नाम लार्वा की हानिकर अवस्था पर उसके गुलाबी रंग के कारण ही हुआ है। लेकिन यह सोचना गलत है कि कपास से संबंधित प्रत्येक गुलाबी लार्वा इस गुलाबी डोडा सूंडी से संबद्ध है। दो और गुलाबी रंग की सूंडियां कपास की फसल से संबद्ध हैं, लेकिन उनका आर्थिक महत्व इस पीड़क के मुकाबले नगण्य है। गुलाबी डोडा सूंडी का रंग उसकी आरंभिक और कुछ स्थितियों में अंतिम अवस्था में गुलाबी नहीं होता। हालांकि यह कपास का विशिष्ट पीड़क है, फिर भी मालवसी कुल के जंगली पौधों का भी इसके पास विकल्प है।

गुलाबी डोडा सूंडी का लार्वा पके हुए कपास डोडों को सर्वाधिक हानि पहुंचाता है। ये अत्यंत लघु अवस्था में डोडों में प्रवेश कर जाते हैं। जिन छिद्रों से ये प्रविष्ट होते हैं, वे बाद में बंद हो जाते हैं। इस प्रकार लार्वा उसके अंदर रह कर बीज और रेशा निर्माण करने वाले ऊतकों को खा जाता है। कई बार प्रकोप इतना अधिक होता है कि एक एक

---

1. *Pectinophora gossypiella* Saunders
2. *Depressaria*
3. *Geleclchia*
4. *Platyedra*

डोडे से 10 तक सूंडियां पाई जाती हैं। और कपास के 75 से 100 प्रतिशत डोडे संक्रमित मिलते हैं। यदि संक्रमित डोडा न गिरे और पौधे पर ही लगा रहे तो पकने के बाद जब डोडा खुलता है तो क्षति से बचा हुआ रेशा भी धब्बायुक्त मिलता है। डोडे से निकले बिनौले में तेल का अंश भी कम होता है तथा रेशे की कताई और ओटाई की किस्म भी घट जाती है। जब लार्वा नवजात डोडों में प्रवेश करता है तो वे गिर जाते हैं। ये कलियों और फूलों में भी छेद करके प्रवेश कर जाते हैं। चितकबरी डोडा सूंडी की तरह गुलाबी डोडा सूंडी भी अन्य कई प्रकार के, विशेषकर मालवसी कुल के, पौधों से भी आहार लेते हैं।

गुलाबी डोडा सूंडी का प्रौढ़ गहरा मटियाला भूरे रंग का शलभ होता है जिसके शरीर का आकार एक सें.मी. लंबा होता है। इसका जीवन काफी लंबा होता है तथा मादा के बारे में कहा जाता है कि कुछ स्थितियों में तो वह लगभग दो माह तक रह जाती है। ये रात्रि में सक्रिय होती हैं और सपाट पपड़ी जैसे सफेद से एकल अंडे नवजात प्ररोह के विभिन्न हिस्सों पर देती हैं। फिर भी, यदि उपलब्ध हों तो अर्द्ध विकसित डोडों को ये अधिक पसंद करती हैं। अंडे की अवस्था 3 से 7 दिन तक रहती है। इनमें से एक मि.मी. लंबे रंगहीन लार्वा निकलते हैं। यह डोडे के अंदर प्रविष्ट होकर बीज खाना आरंभ करता है और जब एक बीज खत्म हो जाता है तो दूसरे पर चला जाता है। यह एक कोष्ठक से दूसरे में भी चला जाता है। जिस छिद्र से यह प्रविष्ट होता है, वह शीघ्र ही बंद हो जाता है, यहां तक कि संक्रमित और संक्रमण रहित डोडे में भेद करना कठिन होता है। इससे इसके नियंत्रण के लिए संक्रमित डोडों को एकत्र कर नष्ट करना व्यवहार्य नहीं रहता।

लार्वा का विशिष्ट गुलाबी रंग नियमानुसार अंतिम दो इंस्टार के दौरान पैदा होता है। जो लार्वा खुले पुष्पों से आहार पाते हैं, उनका रंग क्रीम जैसा ही रहता है। सामान्यतया लार्वा केवल तीन बार निर्मोक करता है। इसकी अवस्था की अवधि भी दो प्रकार की पाई जाती है। एक अल्प जीवन चक्र और दूसरी दीर्घ जीवन चक्र। अल्प जीवन चक्र किसी भी लेपीडोप्टेरस शल्कपक्षीय की तरह का ही होता है जो वातावरणीय तापमान के अनुसार एक माह या अधिक तक हो सकता है जबकि दीर्घ जीवन चक्र में लार्वा की लंबी शीतनिष्क्रियता होती है, जो कुछ कार्यकर्ताओं के अनुसार दो वर्ष तक हो सकती है। दिलचस्प बात यह है कि वर्ष में कुछ समय विशेषतः पतझड़ के अंतिम समय के दौरान दोनों तरह के लार्वाओं की संख्या पाई जाती है। एक सामान्य तरीके से प्यूपा बनता है तो दूसरा दीर्घ शीतनिष्क्रियता की तैयारी करता है। लार्वा दो या दो से अधिक बीजों को खोखला करता है और अपने द्वारा उत्पादित रेशमी धागे से उनके बीच घुसकर स्वयं को बांध लेता है और इस शीतावास में शीतनिष्क्रियता में प्रवेश करता है। दो बीजों के बीच बनाई यह आराम

की अवस्था इस पीड़क की गंभीरता का एक मुख्य कारण है। इस अवस्था में यह न केवल प्रतिकूल मौसम से लंबे समय तक बचता है बल्कि दूर दूर तक फैल जाता है। इसी अवस्था के कारण गुलाबी डोडा सूंडी विश्व के अधिकतर कपास उत्पादक क्षेत्रों में मिलती है। हालांकि यह खेत का पीड़क कीट है लेकिन बिनौले के साथ साथ व्यावसायिक मार्गों के द्वारा विभिन्न स्थानों पर पहुंच जाता है। यदि स्वस्थ बीज के साथ लार्वा युक्त दुहरा बीज बो दिया जाय तो शीतनिष्क्रियता वाला लार्वा अपने शीतावास से बाहर आकर सतह तक नलिका बनाकर आ जाता है और प्यूपा निर्माण के लिए पुनः नीचे जाता है। इस प्रकार शलभ निकलता है तो वह विद्यमान फसल को संक्रमित करने के लिए तैयार होता है, क्योंकि मादा का जीवनकाल लंबा होता है। वह अंडे देने के लिए फसल के विकास की प्रतीक्षा कर सकती है। प्यूपा निर्माण की जगह की भी विस्तृत सीमाएं हैं। डोडे, फाहे, बिनौले में, मृदा की तरेड़ों और बिलों में एवं उपर्युक्त बताये गये दोहरे बीज बंधन में कहीं भी प्यूपा निर्माण हो सकता है। प्यूपा का आकार सामान्यतया एक सें.मी. से कम होता है और प्यूपा काल से तीन सप्ताह के बीच में होता है।

इस पीड़क के प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या भी काफी है। अंडा अवस्था में कुछ बग इसके परभक्षी हैं और लार्वा तथा प्यूपा अवस्था में लगभग एक दर्जन कीट परजीवी हैं।

इस पीड़क के नियंत्रण के लिए सबसे उत्तम उपाय दूसरे बीज के बीच लार्वा की आराम की स्थिति के दौरान उसे नष्ट करना है। इस अवस्था में इन्हें कपास की फसल लेने के तुरंत बाद नष्ट करना चाहिए। यह बहुत व्यवहार्य और उचित कदम है जिसे किसी भी सूरत में उचित मौसम आरंभ होने से पूर्व अथवा कपास के बीजों के फैलने से पहले उठा लेना चाहिए। इन्हें धुआं देकर, गर्म करके अथवा बिनौले को अच्छी तरह धूप देकर नष्ट किया जा सकता है। साथ ही यह भी सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिए कि पर्याप्त बड़े क्षेत्र में एक भी बिनौला अनुपचारित न रह जाय। इस विधि की सफलता के लिए यह बहुत आवश्यक है। दूसरी अतिरिक्त सावधानी फसल लेने के बाद खेत में बचे कपास के डंठलों को नष्ट करना है जिसे किसी भी हालत में तुरंत अथवा अगली फसल की बुआई से पहले कर लेना चाहिए ताकि पिछली फसल से अगली फसल तक कीट न पहुंच सकें।

फसल के दौरान निम्नलिखित उपाय सुझाये जाते हैं :

(क) चितकबरी जोडा सूंडी से ग्रस्त पुष्पों, पुष्प कलियों और प्ररोहों का शीघ्र ही संग्रह करके नष्ट करना, और (ख) प्रथम अवस्था के लार्वा और अंडे देने से पूर्व शलभों के विरुद्ध स्पर्श कीटनाशी का उपयोग।



प्लेट-25—बैंगन के पीड़क

यूजोकेरा पर्टिसेल्ला : 1. तने के अंदर अपने बिल में लार्वा 2. बिल से बाहर निकला गया लार्वा 3. तने में प्यूपा 4. विश्राम अवस्था में पतंगा 5. ल्यूलीनोड्स आर्बोनेलिस : लार्वा 5. तने में छेद का परिणाम - शीर्ष प्ररोह का कुम्हलाना 7. कृमिकोष 8. प्यूपा 9. पतंगा 10. एपिलैक्ना: पत्ते पर अंडा समूह 11. भृंग, अंडे और लार्वा 12. प्यूपा

(*सम साउथ इंडियन इंसैक्ट्स*, प्लेट 30, पृष्ठ 428)



प्लेट-26—हड्डा भृंग

एपीलेकना डोडेकास्टिगला : 1. अंडा 2. लार्वा. 3. प्यूपा 4. भृंग 5. *एपीलेकना* 28-पंक्टेटाः भृंग, 6. भृंग (दोनों प्रजातियां) पौधे पर अंडे, लार्वा, प्यूपा और प्रौढ़ तथा उनके द्वारा की गई क्षति प्रदर्शित

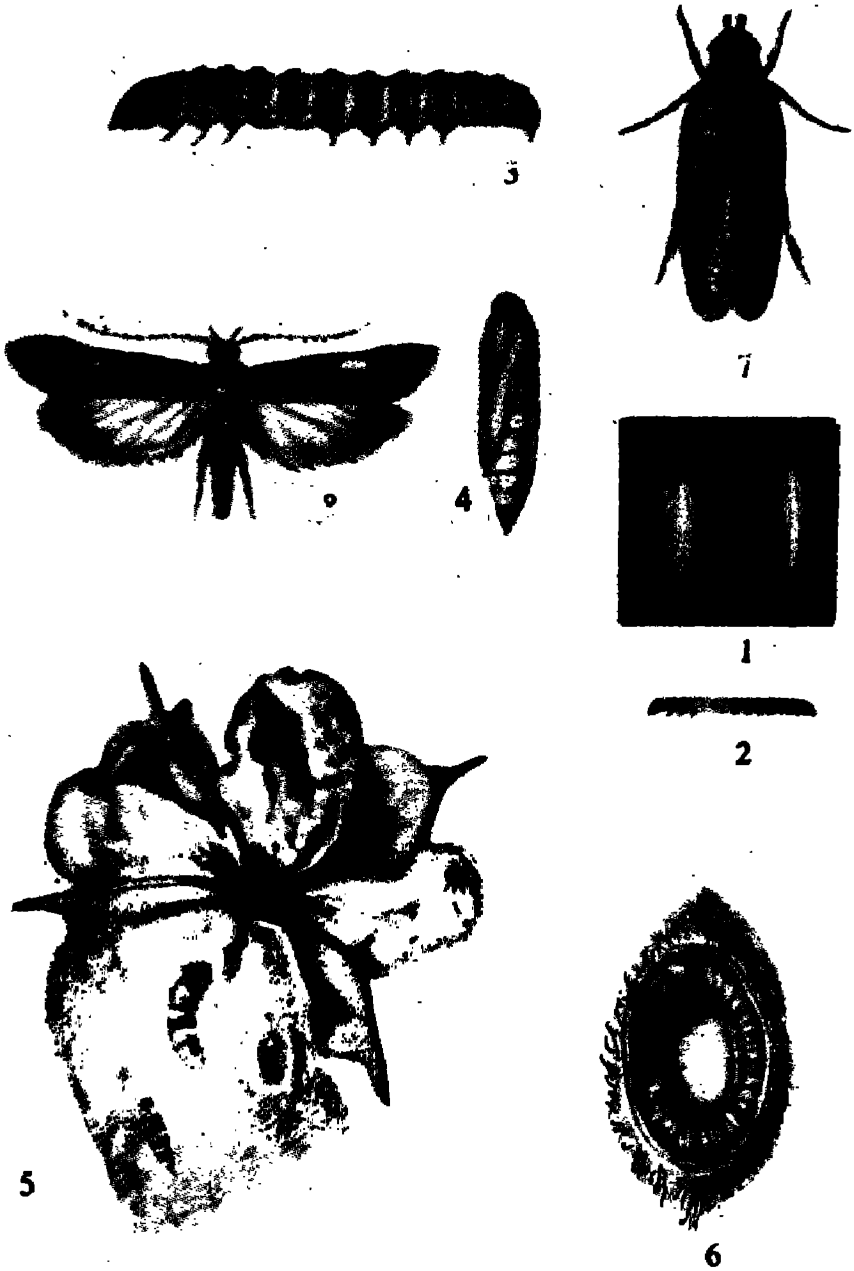
(*सम साउथ इंडियन इंसैक्ट्स*, प्लेट 6, पृष्ठ 292)



प्लेट-27—चितकबरी डोडा सूंडी

1. एरिआस इंसुलैना का लार्वा, पार्श्व चित्र, 2. संक्रमित डोडा 3. कपास का संक्रमित प्ररोह 4. ई. इंसुलैना 5. ई. इंसुलैना का लार्वा, पृष्ठ भाग का चित्र 6. ई. इंसुलैना, पीली किस्म 7. ई. कुप्रेओरिडिस 8. ई. बिटेला

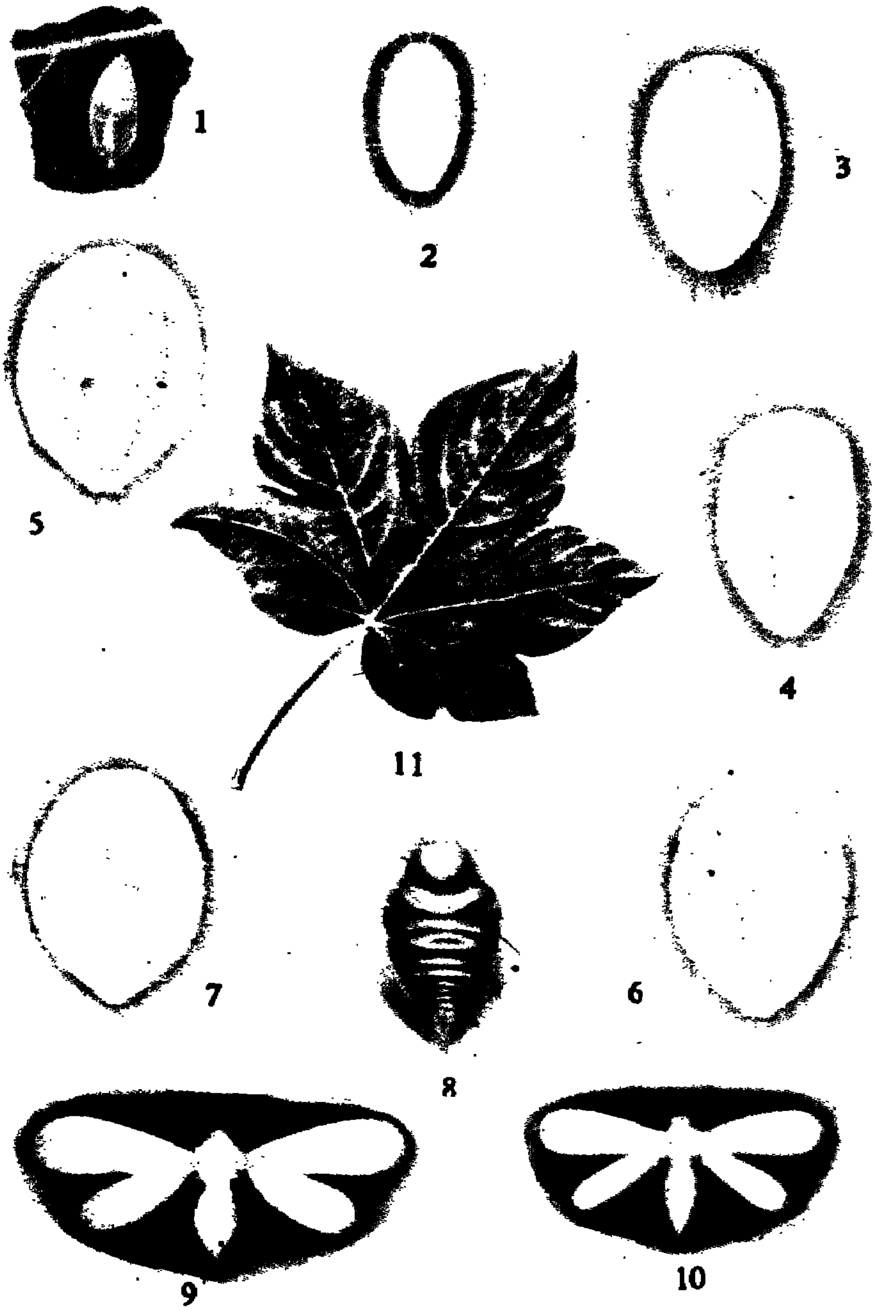
(*इंडियन इंसैक्ट लाइफ,* पृष्ठ 456)



प्लेट-28—गुलाबी डोडा सूंडी

1. अंडे 2. नवजात लार्वा 3. पूर्ण विकसित लार्वा 4. प्यूपा 5. संक्रमित कपास डोडा 6. बिनौले के अंदर लार्वा 7. और 8. शलभ

(*सम साउथ इंडियन इंसैक्ट्स*, प्लेट 42, पृष्ठ 454)



प्लेट-29—कपास की सफेद मक्खी

1. अंडा 2. प्रथम इंस्टार का लार्वा 3. द्वितीय इंस्टार का लार्वा 4. तृतीय इंस्टार का लार्वा 5. चतुर्थ इंस्टार का लार्वा 6. प्यूपा 7. रिक्त प्यूपा कोष 8. परजीवीग्रस्त प्यूपावरण 9. नर 10. मादा 11. लार्वा और प्यूपा द्वारा संक्रमित पत्ता

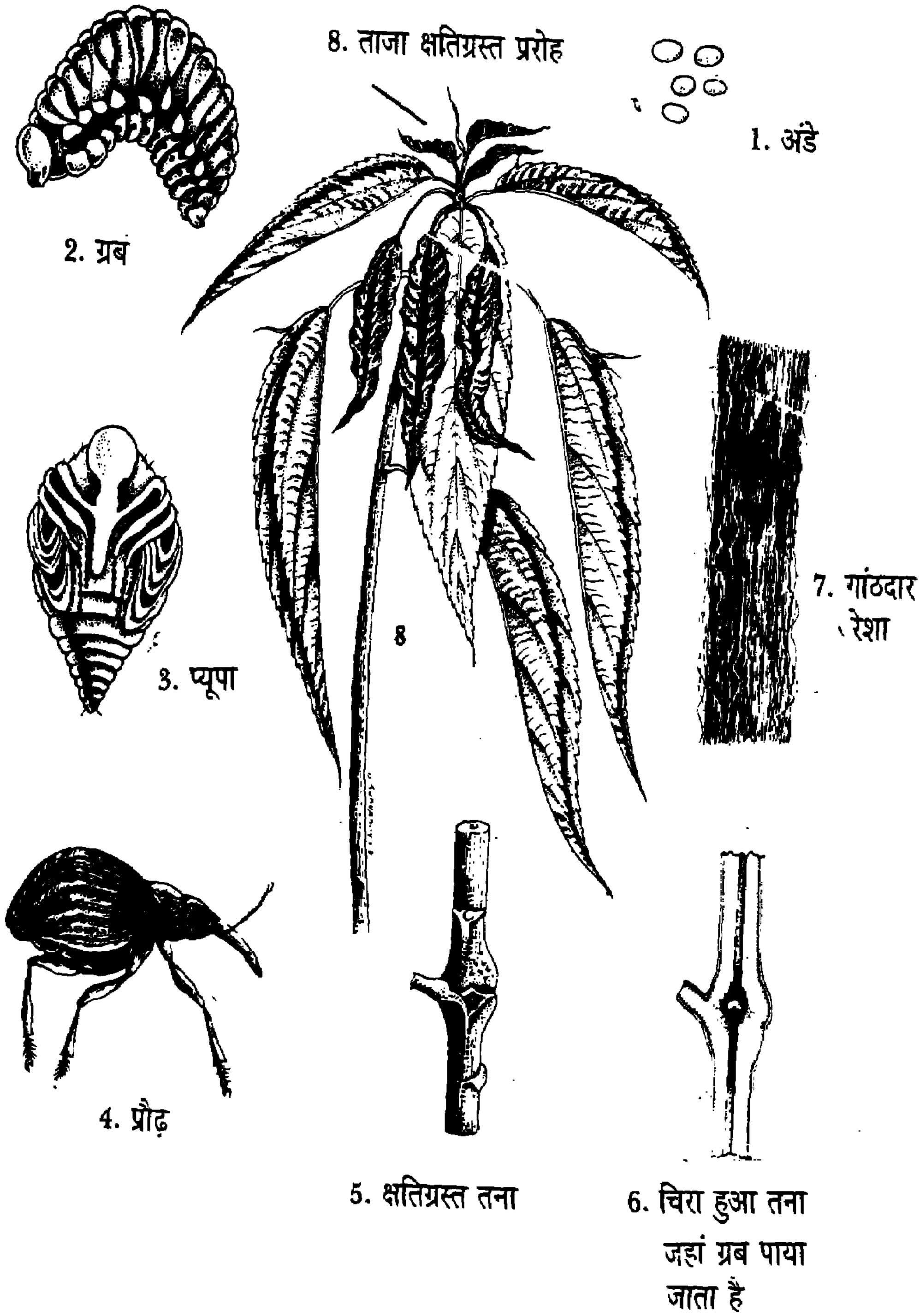
(*पूसा बुलेटिन* नं. 196, प्लेट 1)



प्लेट-30—पटसन अर्द्ध कुंडलक

1. और 2. परपोषी पौधे की शाखा पर लार्वा अवस्था 3. मिट्टी के अंदर प्यूपा 4. प्यूपा 5. विश्राम अवस्था में प्रौढ़ 6. और 7. प्रौढ़

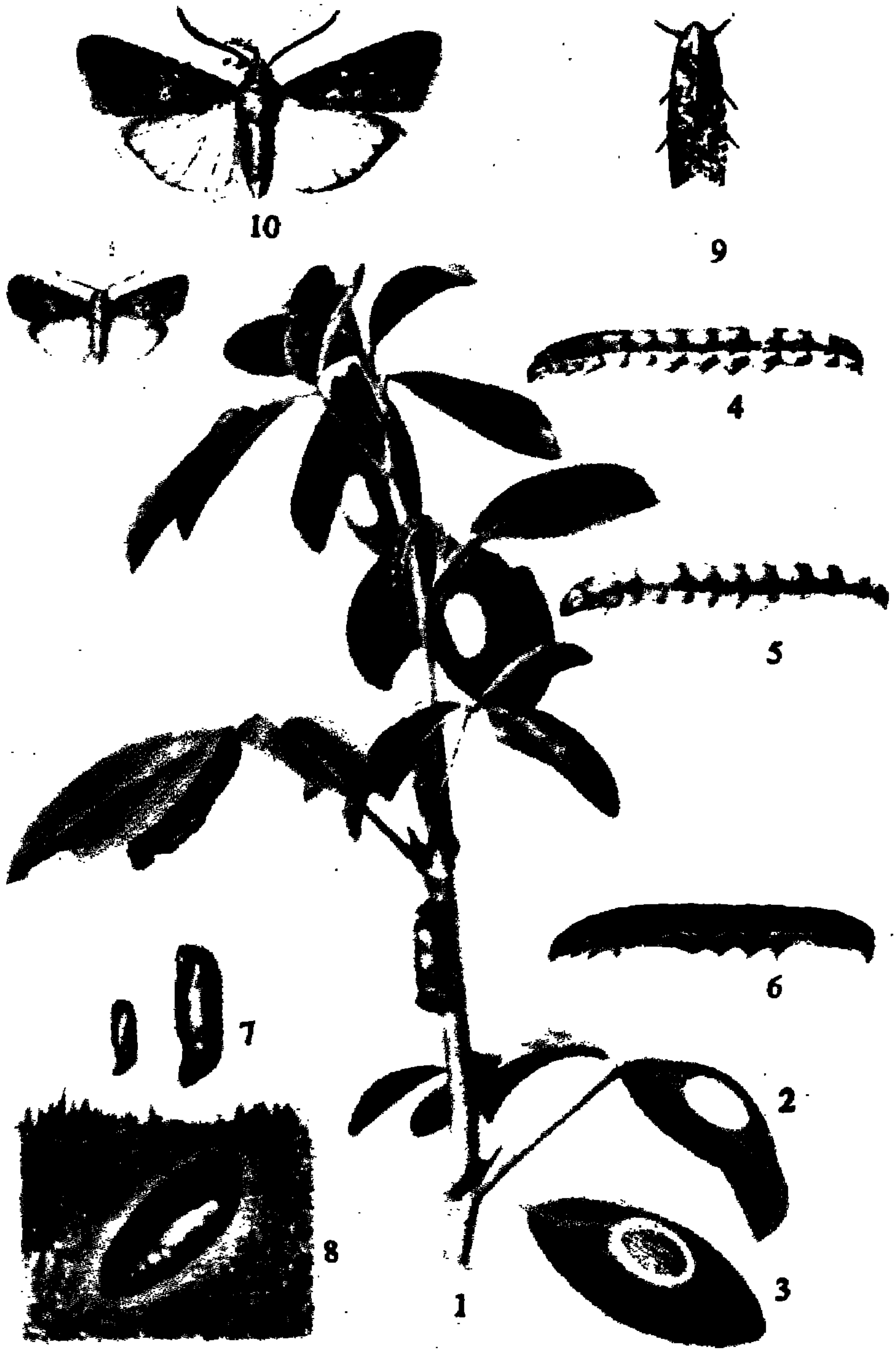
(*कीट विज्ञान विभाग संग्रह,* भा.कृ.अनु.सं.)



प्लेट-31—पटसन तना घुन

1. अंडे 2. ग्रब 3. प्यूपा 4. प्रौढ़ 5. क्षतिग्रस्त तना 6. चिरा हुआ तना जहां ग्रब पाया जाता है 7. गांठदार रेशा 8. ताजा क्षतिग्रस्त प्ररोह

(*जूट बुलेटिन*—जून 1967, पटसन अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर)



प्लेट-32—स्पोडोप्टेरा

1. संक्रमित शाखा 2. बालों से ढके अंडा समूह 3. खुले रखे अंडे 4-6. लार्वा अवस्थाएं 7. प्यूपा अवस्थाएं 8. जमीन के अंदर प्यूपा अवस्था 9. विश्राम की मुद्रा में प्रौढ़ 10. प्रौढ़

(*कीट विज्ञान विभाग संग्रह,* भा.कृ.अनु.सं.)

कपास का जैसिड

(एमरैस्का बिगुटुला बिगुटुला इशीडा*)*[1]

जब से भारत में विदेशी कपास का आगमन हुआ है, तब से कपास जैसिड कपास उत्पादकों के लिए गंभीर समस्या खड़ी कर रहा है। इसी पीड़क के आक्रमण के फलस्वरूप 1913-14 में पंजाब के कुछ क्षेत्रों में कपास की एक विदेशी किस्म पूरी तरह असफल हो गई थी। तब से भारत के कई भागों में कपास की खेती के लिए यह बाधा बन गया है। और कुछ अत्यंत बेहतरीन कपास किस्में भी इसलिए नहीं बोई जातीं, क्योंकि वे जैसिड के सामने नहीं टिक सकतीं।

जैसिड को पत्ती फुदका के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि उसकी अधिकतर गतिविधियां पत्ती की सतह तक सीमित होती हैं। इसकी टांगें विशेष रूप से विकसित और संशोधित हैं ताकि टिड्डी और टिड्डे की तरह फुदक सके। सामान्यतया यह बहुत स्फूर्ति वाला कीट है और हल्की-सी छेड़छाड़ पर भी अपनी विशिष्ट शैली में झपट्टे से उड़ जाता है। अमेरिका में लोग इसीलिए इसे पैंतरेबाज और तेज शिकारी भी कहते हैं। इसकी उड़ान ऐसी आड़ी-तिरछी होती हैं कि उसका पीछा करना मुश्किल होता है। हालांकि अगला पड़ाव लेने से पूर्व इनकी उड़ान कुछ ही मीटर तक चलती है, लेकिन कुछ जातियों के बारे में बताया जाता है कि वे झुंड बनाकर दूर दूर तक जाते हैं। ये कीट रात्रि में सक्रिय होते हैं और प्रकाश के प्रति काफी संख्या में आकर्षित होते हैं।

भारत में इस पीड़क की अनेक जातियां हैं लेकिन जिस वंश ने सर्वाधिक आकर्षित किया है, वह *एम्पोस्का* वाल्श[2] है। विश्व के विभिन्न हिस्सों में *एम्पोस्का* की 14 जातियों को कपास की फसल पर आक्रमण करते पाया गया है जिनमें से 12 भारत में मिलती हैं। इनमें से भारत में *ई. डिवास्टंस*[3] डिस्ट. का आर्थिक महत्व सबसे अधिक है। यह छोटा-सा कीट है जिसकी निम्फ अवस्था में लंबाई लगभग 1 से 3 मि. मी. के बीच होती है। प्रौढ़ अवस्था में इसका रंग मौसम के अनुसार बदलता है।

निम्फ और प्रौढ़ दोनों अवस्थाओं में यह समान क्षति पहुंचाता है। अन्य वर्गों की तरह यह भी पौध ऊतकों के कोष्ठ रस को चूसते हैं। यह भी विश्वास किया जाता है कि पौधे को रस विहीन करते समय ये उसमें एक अविष (टॉक्सिन) भी छोड़ते हैं जिसके परिणामस्वरूप फुदका दाह (हॉपरबर्न) उत्पन्न होता है। जैसिड रोधी कपास की किस्मों पर भी जैसिड के आक्रमण से पत्ते मुरझा जाते हैं और सूख जाते हैं। दूसरी अन्य सुग्राह्य

---

1. *Amrasca biguttula biguttula* Ishida
2. *Emposca* Walsh
3. *E. devastans* (अब इसे एमरैस्का बिगुटुला बिगुटुला के नाम से जाना जाता है।)

किस्मों पर आक्रमण के परिणामस्वरूप चित्तियां पड़ जाती हैं और उसके बाद पूरी परत, भूरे परिगलित धब्बे पड़कर मुड़ जाती है इस प्रकार पौधों की पूर्ण प्रकाश-संश्लेषी क्रिया बहुत अधिक अवरुद्ध हो जाती है। इसीलिए जैसिड को कपास का अत्यंत भयानक पीड़क माना जाता है। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि अमेरिका में यह पीड़क उतना भयंकर नहीं है, जितना भारत में, विशेषकर अमरीकी कपास किस्मों पर होता है। अफ्रीका के तंजानिया, इथोपिया और इरीट्रा जैसे कपास उत्पादक क्षेत्रों में भी यह सबसे महत्वपूर्ण पीड़क है।

इस पीड़क के बहुत से एकांतर परपोषी पौधे भी हैं जो मालवसी और सोलेनिसी कुल के हैं। अंडे आमतौर पर बाह्य छाल और शिरा समूहों के बीच दिये जाते हैं और उनमें से 4 से 11 दिन के बीच लार्वा निकल जाते हैं। निम्फ पांच बार निर्मोक करते हैं तथा पूरा जीवन चक्र लगभग दो सप्ताह से डेढ़ महीने के बीच होता है जो तापमान और आर्द्रता के आधार पर घटता-बढ़ता है। पंजाब में इसकी ग्यारह पीढ़ियां रिकार्ड की गयी हैं।

कपास जैसिड की आदतों और व्यवहार के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि कपास की विभिन्न जातियों पर इसका प्रकोप भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। इसी आधार पर कपास की जैसिड विरोधी किस्मों के विकास पर पर्याप्त कार्य हुआ है और ऐसी बातें ज्ञात हुई हैं कि जैसिड की प्रतिरोधिता का आधार क्या है। पत्तों का रोमयुक्त होना और पत्तों की शिराओं का कठोर होना ऐसी विशेषताएं हैं जिनसे जैसिड का मुकाबला किया जा सकता है। इन विशेषताओं से उसके आहार करने और अंडे देने दोनों में रुकावट आती हैं। लेकिन कुल मिलाकर लाभजनक परिणाम नहीं मिले हैं।

यह आश्चर्य है कि अभी हाल तक भी इसके प्राकृतिक शत्रु का कोई उल्लेख नहीं था। लेकिन भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने इसके लगभग आधा दर्जन परभक्षियों का पता पिछले कुछ वर्षों में लगाया है। यदि यह प्राकृतिक नियंत्रण न होता तो संभवतः इस पीड़क द्वारा बहुत अधिक हानि होती।

आधुनिक संश्लेषित कीटनाशकों के आविष्कार से पहले कपास जैसिड का नियंत्रण एक अनसुलझी पहेली था। अब ऐसे बहुत से सर्वांगी और स्पर्श कीट रसायन उपलब्ध हैं जो वास्तव में कपास की फसल को जैसिड के आक्रमण से मुक्त रख सकते हैं। वास्तव में अब स्थिति यह है कि कपास की चितकबरी डोडा सूंडी या गुलाबी डोडा सूंडी के नियंत्रण के लिए प्रयोग किया गया कीटनाशक स्वतः ही जैसिड को भी नियंत्रण में रखता है। आंतरिक अशनकारी जैसे चितकबरी और गुलाबी डोडा सूंडी के नियंत्रण के लिए किये गये प्रयोगों से बिना उनकी संख्या को कम किये भी अधिक उपज प्राप्त हो सकी है जो जैसिड जैसे बाह्य अशनकारी के नियंत्रण के फलस्वरूप हुई है।

यह दिलचस्प बात है कि गुलाबी डोडा सूंडी जैसा कीट पौध सतह पर अंडे देता है तो उसके नवजात लार्वा पौध ऊतकों के अंदर आहार करते हैं जबकि जैसिड अपने अंडे पौध के ऊतकों के अंदर देता है और उसका लार्वा और प्रौढ़ पौधे के ऊपर आहार करते हैं। इस अंतर के फलस्वरूप ही इन दोनों पीड़कों के नियंत्रण के उपाय भी भिन्न हैं।

कपास की सफेद मक्खी

(बेमिज़िया टैबेसी गेनाडियस*)*[1]

(प्लेट-29)

सफेद मक्खी का साधारण नाम चूसने वाले, छोटे, लगभग एक मि.मी. के कीटों के समूह के लिए काम में लिया जाता है। इसे खपरी कीट से अलग पहचानना मुश्किल होता है और केवल प्रौढ़ अवस्था में ही अंतर स्पष्ट किया जा सकता है। उस समय उनमें एक जोड़ी मैदा जैसे सफेद पंख होते हैं, जिनमें कुछ नसें दिखाई देती हैं और ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे मोम लगा हो। इसलिए उन्हें चूर्ण पंख भी कहा जाता है। अंडे आमतौर पर पत्ते की सतह से एक बहुत छोटे डंठल के साथ लगे होते हैं। अंडे से निकलते ही लार्वा बहुत सक्रिय होता है और उसके सामान्य क्रियाशील टांग व शृंगिकाएं होती हैं। वह उपयुक्त भोजन स्थान की खोज में निकलता है, जहां पहुंचकर वह अपना शेष संक्षिप्त जीवन बिताता है। वहां वह शीघ्र ही प्रथम अवस्था का निर्मोक करता है और पैर रहित, पपड़ी जैसा, सपाट और दबा हुआ पत्ती पर रहता है। उनका शरीर भी उन्हीं के द्वारा छोड़े गये मोमिया स्राव से ढक जाता है। इसके बाद वे दो बार और निर्मोक करते हैं तत्पश्चात प्यूपों का निर्माण होता है और पूर्ण कीट प्रकट होते हैं। प्यूपा और अंडा अवस्था के अतिरिक्त प्रौढ़ तथा अपरिपक्व अवस्थाओं में यह कीट पौधे का रस चूसकर उसे निर्जीव कर देता है।

पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि से कीटों का यह वर्ग बहुत दिलचस्प है क्योंकि सभी प्रकार के वर्गों में केवल यही वर्ग है जिसमें किसी प्रकार के प्यूपा का निर्माण होता है। इस प्रकार यह उन कीटों के बीच का कहा जा सकता है जो प्यूपा बनते हैं और जिनमें प्यूपा अवस्था नहीं होती। सफेद मक्खी का प्यूपा अल्प विकसित प्रकार का होता है। इस इंस्टार के प्रथम भाग में यह अपना आहार लार्वा की तरह रस चूस कर प्राप्त करता है लेकिन बाद में निष्क्रिय हो जाता है।

कपास की सफेद मक्खी लगभग 50 तरह के पौधों पर आक्रमण करती है, लेकिन देश के कुछ भागों में यह कपास की बहुत महत्वपूर्ण पीड़क है। इस पीड़क के प्रकोप से

1. *Bemisia tabaci* Gennadius

कपास के पौधे की हर अवस्था की शारीरिक क्रिया गड़बड़ा जाती है। वानस्पतिक वृद्धि नष्ट हो जाती है और डोडा निर्माण गंभीर रूप से रुक जाता है। डोडों का गिरना भी बढ़ जाता है तथा उनके खुलने में भी रुकावट आती है। इस सीधे नुकसान के अतिरिक्त पीड़क एक तरह का मधुबिंदु छोड़ता है जो पत्तों पर फैल जाता है और फफूंदी को बढ़ने का प्रोत्साहन देता है, जिससे पत्ते काले हो जाते हैं। इससे पौधे की प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार सफेद मक्खी के आक्रमण से कपास की मात्रा और गुणवत्ता बुरी तरह प्रभावित होती है। इस पीड़क के बारे में यह भी कहा जाता है कि यह कुछ विषाणु रोगों का वाहक भी होता है, विशेषकर तंबाकू की फसल में।

इस जाति की एक मादा एक बार में लगभग 70 अंडे देती है जिनमें से चार सप्ताह में लार्वा निकल आते हैं। प्रायः यह कीट अनिषेक जनन, अर्थात बिना नर-मादा के बीच समागम के प्रजनन करता है। अंडे प्रायः सवृंत होते हैं जिनका रंग पहले हल्का पीला होता है और बाद में भूरा पड़ जाता है। नये लार्वा के शरीर पर शूक होते हैं जो उसके अंडाकार चपटे शरीर के किनारों से निकलते हैं।

चूंकि यह जाति विविधभक्षी है इसलिए वर्ष के विभिन्न मौसमों में एक फसल से दूसरी पर जाती रहती है। इससे इसे आहार और प्रजनन में कोई परेशानी नहीं होती, क्योंकि कोई न कोई परपोषी पौधा हर मौसम में उपलब्ध रहता ही है। कृषि फसलों में यह कीट कपास, तोरिया, मूली, तरबूज, खीरा, मिर्च, बैंगन, टमाटर, आलू, तंबाकू आदि पर आक्रमण करता है। बहुत सारे जंगली परपोषी पौधों से भी यह आहार पाता है।

कपास की फसल में पर्यावरणीय परिवर्तन के प्रति सफेद मक्खी बहुत सुग्राह्य है और कपास के पौधे के शरीर क्रिया तथा पोषण स्तर से भी प्रभावित होती है। अधिक तापमान और कम आर्द्रता इस पीड़क की संख्या को कई गुणा बढ़ा देते हैं। वास्तव में 33^0 सें. से अधिक तापमान इस पीड़क के अंड निक्षेपण हेतु बहुत उपयुक्त है। कपास के पौधे के कोशिका रस (सैल सैप) के पी एच स्तर से भी इसका सकारात्मक संबंध बताया जाता है।

एक चेलसिड परजीवी कीड़ा बड़े निम्फों और प्यूपा पर आक्रमण करता है तथा कई बार परजीवीकरण 30 प्रतिशत से अधिक होता है। *क्राइसोपा* और *कोक्सीनेलिड्स* नामक जातियों के कुछ परभक्षी भी इस पीड़क की विभिन्न अवस्थाओं पर आक्रमण करते हैं।

सफेद मक्खी के नियंत्रण के लिए बहुत से आधुनिक स्पर्श कीटनाशी बहुत प्रभावी हैं। वास्तव में डोडा सूंडी के नियंत्रण के लिए प्रयोग किए गए कीटनाशकों के द्वारा सफेद मक्खी का नियंत्रण भी स्वतः ही हो जाता है।

कपास पीड़कों के नियंत्रण के लिए अनुसूची

कपास पीड़कों की पेचीदा स्थिति को ध्यान में रखते हुए इसके उपयुक्त नियंत्रण को दो समूहों में बांटा जा सकता है (क) डोडा सूंडी जैसे आंतरिक अशनकारी के लिए, और (ख) जो पौध सतह पर रहते हैं उनके लिए, जिसमें जैसिड, माहू, सफेद मक्खी आदि शामिल हैं। आंतरिक अशनकारी के लिए कीटनाशकों के प्रयोग का समय इस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए कि वे बाह्य अशनकारी पर भी समान रूप से प्रभावी हों। इसमें विभिन्न स्थानों पर पीड़कों के प्रकट होने के अलग अलग समय का ध्यान रखना चाहिए। इन बातों को ध्यान में रखते हुए एक उपयुक्त अनुसूची निम्नलिखित है :

(क) जिन क्षेत्रों में दीमक, घुन की सूंडियों आदि से वर्ष दर वर्ष गंभीर क्षति होती हो, वहां दीर्घस्थायी कीटनाशकों से मृदा का उपचार करना चाहिए।

(ख) जैसे ही जैसिड, सफेद मक्खी, माहू आदि पीड़क प्रकट होने लगें, फसल पर कीटनाशक दवाओं का भुरकाव या छिड़काव किया जाय। इस उपचार से डोडा सूंडी को भी आरंभिक अवस्था में ही नष्ट किया जा सकेगा।

(ग) यदि जैसिड, माहू आदि पीड़क प्रकट न हों और कोमल प्ररोहों पर डोडा सूंडी के चिह्न दिखाई दें तब उपयुक्त (ख) की अपेक्षा संगठित तरीके से यांत्रिक संग्रह द्वारा इस पीड़क का नियंत्रण करना चाहिए।

(घ) कपास की फसल का एक दीर्घस्थायी कीटनाशक से घने धुएं के रूप में उपचार करना लाभकारी है जो पौधे के घने पत्तों में प्रवेश कर उन पर एक परत छोड़ दे। इससे डोडा सूंडी के लार्वा पौध ऊतकों में प्रवेश करने से पूर्व उसके संपर्क में आकर नष्ट हो जायेंगे। इन उपचारों का समय निर्धारण जीवसूचक (बायोमीटर) के माध्यम से करना चाहिए। जब लार्वा अंडे से निकल रहे हों। इनसे जैसिड और माहू (एफिड) आदि का भी नियंत्रण होगा।

(ङ) ऊपर (घ) में वर्णित उपचार के बीच में सिंचाई के पानी में भी कीटनाशक घोल देना चाहिए ताकि भूमि पर गिरे हुए पत्तों और डोडों पर आश्रय ले रहे पीड़क भी मर जायें।

(च) जहां कहीं जैव नियंत्रण साधन उपलब्ध हों, उन्हें भी रासायनिक नियंत्रण के साथ साथ काम में लेना चाहिए।

पटसन के पीड़क

इस सदी के प्रथम दशक में यह समझा जाता था कि पटसन की फसल पीड़कों के प्रति अपेक्षाकृत सुरक्षित है। सन् 1960 के आसपास के प्रमाणित सर्वेक्षण में कम से कम 29 ऐसी जातियों की सूची बनाई गई जो पटसन के पीड़क हैं। इनमें से पटसन अर्द्ध कुंडलक, पटसन मक्खी और पटसन वलयक अधिक घातक माने गये हैं। इनका विवरण यहां

आवश्यक है तथा कथित पूर्ण कीट सूंडी (*स्पोडोप्टेरा एक्सिगुवा* हिबनेर)[1] भी कई बार बहुत गंभीर होती है।

पटसन अर्द्ध कुंडलक

(एनोमिस सैबुलिफेरा गुनी*)*[2]

(प्लेट-30)

इस पीड़क का व्यापक प्रसार है। दक्षिण में श्रीलंका, पूर्व में बर्मा से भारत होकर पश्चिम में अफ्रीका तक। जूट की पर्णावली के लिए यह अत्यंत गंभीर पीड़क माना जाता है। इसका प्रकोप एक के बाद एक तीन बार होता है, जिसमें दूसरी बार का आक्रमण सर्वाधिक हानिकर होता है। पौधे की शीर्ष कलियां सबसे संवदेनशील होती हैं तथा संक्रमण की तीव्रता पर्णावली की उम्र से उलट होती है। इस पीड़क के हरे रंग के कारण पत्तों की हरी पृष्ठभूमि में उनका पता लगाना कठिन होता है। लेकिन पत्तियों पर छिद्रों और कटे हुए किनारे पर्णावली को एक विशिष्ट रूप देते हैं जिससे इसके संक्रमण की उपस्थिति का पता लग जाता है।

यह हरी सूंडी होती है जिसे पहले *कॉस्मोफिला सैबुलिफेरा* गुनी[3] के रूप में संबोधित किया गया था और अब *ऐनोमिस सैबुलिफेरा* कहा जाता है। इसके पांच जोड़े चूसक पद पूर्ण विकसित नहीं होते, इसलिए जब यह चलता है तो पीठ धनुष जैसी हो जाती है जैसे पूर्ण कुंडलक सूंडी की होती है। इसीलिए इसे अर्द्ध कुंडलक कहा जाता है। देखने में यह सामान्य सूंडी होती है लेकिन इसकी चाल कुंडलक जैसी होती है।

यह पीड़क शीतकाल में प्यूपा अवस्था के दौरान शीतनिष्क्रियता में चला जाता है और आर्द्र-गर्म मौसम के आरंभ होने के साथ साथ पतंगे प्रकट होते हैं। ये पतंगे दिन में छुप जाते हैं और दिखाई नहीं देते तथा सूर्यास्त होते ही बाहर उड़ने लगते हैं। यदि पटसन की फसल उपलब्ध हो तो पतंगा उस पर, विशेषकर नव पत्तों की निचली सतह पर, एकल अंडे देता है। अंडे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे पत्ते पर पानी की छोटी-सी बूंद पड़ी हो। प्रत्येक पत्ते पर ऐसे कई अंडे हो सकते हैं। एक ही पतंगा 150 से भी अधिक अंडे दे सकता है। अंडा अवस्था लगभग दो दिन की होती है जिसके बाद उसमें से छोटी-सी हरी सूंडी बाहर निकलती है। इस छोटी-सी सूंडी के मात्र तीन जोड़े चूसक पद होते हैं पर बाद में चौथा जोड़ा भी परिवर्धित हो जाता है। इसका पांचवां जोड़ा कभी पूरी तरह विकसित नहीं होता और इसी जगह चलते समय कूबड़ बनती है। सूंडी का रंग हरा होता है यद्यपि सिर हल्का

---

1. *Spodoptera exigua* Hübner
2. *Anomis sabulifera* Guenee
3. *Cosmophila sabulifera* Guenee

सा पीलापन लिए होता है। प्रत्येक खंड में छोटे-से सफेद घेरे वाली काली पैपिला (अंकुरक) पर छोटे छोटे बाल होते हैं। पूर्ण विकसित लार्वा की लंबाई लगभग 4 सें.मी. होती है जो यह अढ़ाई सप्ताह में पांच बार निर्मोक के बाद प्राप्त करता है। अंतिम निर्मोचन से पहले सामान्यतया लार्वा नीचे मृदा में चला जाता है जहां वह अक्सर प्यूपा निर्माण करता है। हालांकि प्यूपा मृदा से बाहर भी देखे गये हैं। प्यूपा निर्माण पौधे पर भी होता हैं जो प्यूपा शीतनिष्क्रयता में नहीं आते उनकी प्यूपा अवस्था लगभग एक सप्ताह रहती है जिसके बाद पतंगा प्रकट होता है और अगली पीढ़ी पैदा करना आरंभ करता है। पूरा जीवन चक्र लगभग एक माह लेता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इस पीड़क के जीवनवृत के अध्ययन से कोई ऐसा सुराग नहीं मिला है जो इसके नियंत्रण में सहायक हो। अंडे पत्तों की निचली सतह पर एकल रूप में दिए जाते हैं, इसलिए उनको आसानी से संग्रह नहीं किया जा सकता। लार्वा समूहों में नहीं चरते, अतः उन्हें हाथ से पकड़ना मुश्किल है। प्यूपा मृदा के अंदर बनता है और वहां उसे खोजना दुष्कर है। इसी तरह पतंगा रात्रिचर है और उसे पकड़ना सरल नहीं है। थोड़ा-सा कमजोर पक्ष यही है कि पीड़क प्यूपा के रूप में मृदा के अंदर शीतनिष्क्रियता व्यतीत करता है तथा जब फसल काट ली जाती है और ठूंठ छोड़ दिए जाते हैं तब प्यूपा की शीतनिष्क्रयता सुरक्षित हो जाती है। इसलिए यदि उस समय खेत की अच्छी तरह जुताई कर ली जाय और उसे डंठलों और ठूंठों से एकदम साफ रखा जाय, तब शीतनिषक्रियता के दौरान प्यूपा की मृत्यु दर बहुत अधिक हो सकती है। इन परिस्थितियों में इस पीड़क का नियंत्रण रासायनिक कीटनाशक दवाओं से ही हो सकता है। इसके लिए जब पत्तों पर नुकसान होता दिखे, उस समय अच्छे और दीर्घस्थायी कीटनाशक का उपयोग जो स्पर्श और उदर दोनों प्रकार असर करे, ठीक रहेगा।

तना बेधक

इस पीड़क *नुपसेराहा बाईकलर पोस्टब्रुनिया* दत्त (लैमिडी : कोलियोप्टेरा)[1] द्वारा पटसन फसल को गंभीर नुकसान पहुंचाने की सूचना दो दशक पहले ही मिली, जब आजादी के पश्चात भारत में पटसन की उपज को व्यापक किया गया। सन् 1947 में 6,52 लाख एकड़ क्षेत्र में जूट की फसल ली जाती थी जो सन् 1951 में 19.52 लाख एकड़ क्षेत्र में ली जाने लगी। यह अनुमान लगाया गया है कि पहले यह पीड़क कम महत्व के परपोषी पौधे *सेस्बेनिया इजिप्टियाका* ढैंचा[2] तक सीमित था, जहां से इसने पटसन की फसल पर आक्रमण आरंभ किया। यह भी दिलचस्प पहलू है कि इस पीड़क की पसंद पटसन की एक ही जाति *कारकोरस*

1. *Nupserha bicolor postbrunnea* Dutt (Lammidae: Coleoptera)
2. *Sesbania aegyptiaca* Dhaincha

ओलिटोरियस[1] है जिसका पता यह अपनी बुद्धि से लगा लेता है। हालांकि इस जाति की पौध संख्या पटसन की अन्य जाति *सी. कैपसुलैरिस*[2] में मात्र दो प्रतिशत होती है। लेकिन यह पीड़क अपनी बुद्धि से दूसरी जाति को छोड़ देता है। यह एक अनोखा मामला है जब अंड निक्षेपण से पूर्व प्रौढ़ अवस्था का कीट ऐसा सटीक चयन करता है। *कैपसुलैरिस* जाति केवल प्रतिरोधी ही नहीं है बल्कि अंड निक्षेपण के लिए अस्वीकार्य भी है। यह उस स्थिति में भी सत्य है जब लार्वा *कैपसुलैरिस* आहार ग्रहण करे। इस पीड़क के बारे में एक और दिलचस्प तथ्य यह है कि इसके अपरिपक्व या प्रौढ़ की आहार गतिविधियों से फसल को इतनी हानि नहीं पहुंचती जितनी अंडा देने से पूर्व की गतिविधि के समय पहुंचती है।

प्रौढ़ भृंग अवस्था का आहार पतियों की शिरायें होती हैं। अंडे देने की तैयारी में मादा अपने तेज चिबुकों (मेंडिबलों) की सहायता से तने पर दो घेरे बनाती है। इन दोनों घेरों के बीच 1 से 1.4 सें.मी. की दूरी रखती है। पुनः वह अपने चिबुकों की सहायता से तने को काट कर दोनों घेरों के बीच एक दरार बनाती है। इस दरार को वह गूदे के स्तर तक गहरा करती है। यहां वह एक अंडा देती है। इस समय तक पौधे को वास्तविक क्षति पहुंच चुकी होती है और जहां मादा ने घेरा बनाया था, उससे ऊपर का हिस्सा कुम्हला जाता है और कुछ समय बाद मर जाता है। चूंकि एक मादा एक बार में औसतन 35 अंडे देती है, इसलिए वह एक बार में 35 पौधों को क्षति पहुंचाती है यानी जितने अंडे उतने पौधे। इस कार्य में वह 2 से 3 सप्ताह का समय लेती है। प्रकट होने के 8 से 10 दिन बाद अंडा देना आरंभ होता है और एक के बाद दूसरे अंडे देने के बीच 4 से 48 घंटे का अंतराल रहता है।

अंडा देने वाली मादा अंडे देने के लिए अच्छे मोटे तने वाले पौधे का बुद्धिमत्ता से चयन करती है। इसके लिए 2 मि.मी. से 4 मि.मी. व्यास वाले पौधे ज्यादा पसंद किये जाते हैं। यह व्यास पौधे की उम्र के अनुसार विभिन्न ऊंचाइयों पर मिलता है। चूंकि जिस स्थान पर मादा पौधे के तने को काटती है, वहां का रेशा कट जाता है और रेशे की लंबाई कम हो जाती है, इसलिए कम उम्र में प्रभावित पौधे का रेशा सर्वाधिक लंबाई खोता है जबकि पूर्ण वर्धित पौधा बहुत कम लंबाई खोता है। लंबाई खोने का प्रतिशत नये पौधों में 30 होता है तो पूर्ण वर्धित पौधों में 6 तक ही रह जाता है। पटसन के पौधे में व्यास का चयन *सेसबैनिया* जाति से भिन्न होता है। गहन अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि मुख्य कारक भृंग के चिबुक की लंबाई और पौधे के बाह्य मॉड्यूलरी ऊतकों के बीच अनुपात है। इन ऊतकों को काटकर ही मादा पौधे के तने पर घेरा बनाती है।

---

1. *Corchorus olitorius* spp. 2. C. *Capsularis*

विशेष परीक्षणों से पता चलता है कि मादा तने पर दो घेरे इसलिए बनाती है ताकि पौधे के रस का बहाव रुक जाय और अंडे के विकास के लिए उपयुक्त स्थिति बन सके। परीक्षणों से यह भी देखने में आया कि यदि दूसरे तने पर बिना ऊपर-नीचे घेरे बनाये दरार बनाकर उसमें अंडे स्थानांतरित कर दिये जायें तो दरार क्षेत्र में विकसित होने वाले ऊतकों के कारण अंडे नष्ट हो जाते हैं। लेकिन यदि पौधे की वृद्धि पहले ही अवरुद्ध हो चुकी है और शीघ्र वृद्धि वाले तने की अपेक्षा उसमें आर्द्रता बहुत कम है, तब बड़े पैमाने पर ऐसा नहीं होता।

अंडों का रंग पीलापन युक्त, लंबाई 1.5 मि.मी. और व्यास 0.5 मि.मी. होता है। 40^0 से. तापमान पर अंडों की ऊष्मायन अवधि लगभग तीन चार दिन होती है। अंडे से निकलने पर लार्वा मध्य के खाली क्षेत्र में नीचे की ओर बढ़ता है और इससे पथ विच्छिन्न हो जाता है। इस क्रिया का कोई विपरीत असर नहीं पड़ता। साथ ही न तो लार्वा सामान्यतया किसी शाखा में प्रवेश करता है और न ही कोई आड़ी नली बनाता है। इससे पटसन के रेशे को कोई हानि नहीं पहुंचती। पटसन मौसम के दौरान कुल लार्वा अवस्था 30 से 50 दिन के बीच रहती है। शीतकल आते ही लार्वा उपरति अवस्था में पहुंच जाता है। प्यूपा निर्माण अथवा उपरति से पूर्व लार्वा तने के खाली हिस्से में प्यूपा कोष्ठ बनाता है। स्थिर अवस्था में जाने से पूर्व लार्वा तने के इस छोटे-से भाग में सुराख बना लेता है और स्वयं को उसमें कैद कर लेता है। प्यूपा कोष्ठ के दोनों सिरे लकड़ी की खपच्ची से बंद हो जाते हैं। तने का यह हिस्सा नीचे गिर जाता है और जब कटाई के बाद पटसन के पौधों को गलाने के लिए पानी में रखा जाता है तब यह तैरता रहता है। इस प्रकार लार्वा जीवित रहता है। परिपक्व लार्वा की लंबाई लगभग 1.4 सें.मी. होती है तथा उपरति अवस्था में जाने से पूर्व यह सिकुड़ कर आधा हो जाता है। उपरति अवस्था अच्छे मौसम की प्रतीक्षा में अगली ग्रीष्म तक रहती है, लेकिन यदि तब भी मौसम अनुकूल नहीं हुआ तो यह अवस्था कई वर्ष तक चल सकती है। प्यूपा रूप-रंग और आकार में प्रौढ़ भृंग से मिलता-जुलता है। इसका आकार लगभग 0.8 सें.मी. होता है। प्रौढ़ के प्रकट होने का समय मुख्यतया बरसात की मात्रा और होने के समय पर निर्भर है।

जहां तक इसके नियंत्रण का संदर्भ है, उसके दो युक्तिसंगत उपाय हो सकते हैं: (क) जिन इलाकों में तना-वलयक (स्टेम-ग्रिडर्लर) प्रमुख पीड़क हो उनमें *कैपसुलैरिस* जाति बोना और (ख) प्रौढ़ कीटों से प्रकट होने के तुरंत बाद स्पर्श और उदर विष वाले दीर्घस्थायी कीटनाशक से फसल का उपचार करना ताकि अंडा देने से पूर्व ही वे मर जायें। यह ध्यान रखें कि अच्छी बारिश के बाद प्रौढ़ प्रकट होते हैं और उसके 8-10 दिन बाद अंडे देना शुरू करते हैं।

पटसन तना घुन

(एपियन कॉर्कोरी मार्शल)[1]

(प्लेट-31)

यह तना बेधक एक घुन (थूथन भृंग) है जिसे आमतौर पर पटसन एपियन भी कहते हैं। यह पटसन के रेशे के स्वरूप को हानि पहुंचाता है। मादा बहुत छोटी-सी कीट होती है जो आमतौर पर पटसन के तने के शीर्ष भाग में अपनी थूथन से सूराख बनाती है और वहां एक अंडा देती है। कई बार सूराख तो बहुत से नजर आते हैं, लेकिन उनमें अंडा एक में ही होता है। इसका अर्थ है कि अन्य सूराख अंडे देने योग्य नहीं पाये गये। आमतौर पर मादा वृत के अधोभाग में अंडा देना पसंद करती है। एक मादा 124 दिन की अवधि में लगभग 675 अंडे दे देती है। इस प्रक्रिया से सूराख के स्थान पर रेशे का विकास बुरी तरह प्रभावित होता है। बाद में जब लार्वा निकलता है, तब वह भी आसपास के ऊतकों को खाना आरंभ करता है। इससे भी रेशे को क्षति पहुंचती है। जहां ऐसी क्षति बहुत अधिक होती है, उसके स्थान से ऊपर का प्ररोह कुम्हलाने लगता है और कई शाखायें बन जाती हैं। ऐसे पौधे से घटिया किस्म का छोटा रेशा मिलता है। जब पौध अंकुरण अवस्था में ही इसका प्रकोप हो जाय, प्रायः पूरा पौधा मर जाता है। कई बार फलियां भी ग्रस्त हो जाती हैं और वे क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। घाव के स्थान पर कई प्रकार के अभिक्रिया परिवर्तनों से पटसन रेशे की किस्म भी घटिया हो जाती है। घाव के स्थान से एक लेसदार पदार्थ का स्राव होता है जो कीट के मल के साथ मिलकर आसपास के ऊतकों को जोड़ कर एक कठोर गठन बना देता है जिस पर सड़न प्रक्रिया का कोई प्रभाव नहीं होता है। इसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप घाव के आसपास के ऊतक फूल जाते हैं और एक गांठ जैसी बन जाती है। बाद में ग्रसन शीर्ष भाग से आधार भाग की ओर हो जाता है जहां सारा का सारा छिलका (भृंगकों) द्वारा छलनी कर दिया जाता है और एक सघन कठोर पुल बन जाता है तथा छाल रेशे से चिपक जाती है। इन सब विद्रूपताओं से गलने की प्रक्रिया इतनी अवरुद्ध होती है कि लंबी प्रक्रिया के बावजूद भी जब रेशे को धोया जाता है, तब उसमें या तो गांठ पड़ जाती है या धब्बे पड़ जाते हैं। तना-विलयक के विपरीत यह पीड़क *कैपसुलैरिस* की अपेक्षा *ओलिटोरियस* को पसंद करता है।

सबसे अनुकूल ऋतु में अंडों की अवस्था केवल तीन दिन होती है। अंडों का औसत माप 0.43 मि.मि. लंबाई और 0.33 मि.मि. चौड़ाई होती है। पूर्ण वर्धित भृंगक की लंबाई 2.85 मि.मि. व चौड़ाई 0.98 मि.मि. के लगभग होती है। भृंगक अवस्था केवल 8 दिन की हो सकती है। जब भृंगक पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है तब यह तने में एक खुरदुरा

1. *Apion corchori* Marshall

कोष बनाता है और उसमें प्यूपा बन जाता है। प्यूपा लगभग 2.07 मि.मि. लंबा व 1.08 मि.मि. चौड़ा होता है। प्यूपा अवस्था केवल 4 दिन की हो सकती है और उसके बाद प्रौढ़ घुन भृंगक अवस्था में ही आहार करते समय बनाये गये मार्ग में से होकर बाहर निकल जाता है अथवा अपने बाहर निकलने के लिये स्वयं ही छिद्र बनाकर निकलता है। प्रौढ़ एक छोटा घुन होता है जिसकी लंबाई लगभग 1.8 मि.मि. और चौड़ाई 0.8 मि.मि. होती है। इसके एक ध्यानाकर्षी थूथन भी होती है। इसका रंग गहरा भूरा या हलका काला होता है और इसका पूरा शरीर सफेद शूकों से ढका होता है। पूरा जीवन चक्र 16 दिन में पूरा हो सकता है लेकिन प्रौढ़ की दीर्घतम अवस्था 209 दिन देखने में आई है। इसलिए एक वर्ष में इनकी कई पीढ़ियां देखने को मिल सकती हैं, लेकिन आमतौर पर शीतकाल प्रौढ़ अवस्था में ही बीतती है। प्रौढ़ झाड़ियों, झंखाड़ों और गांव के निकट बाड़ों में छुप जाते हैं और जैसे ही नयी फसल आती है ये बाहर आते हैं और निकटवर्ती फसल पर आक्रमण कर देते हैं। इसीलिए उन फसलों पर इनका आक्रमण कम होता है जो इनके शीतकालीन आश्रय स्थल से दूर होती हैं। इसके कई अन्य परपोषी पौधे भी हैं लेकिन सबसे अधिक पसंद किया जाने वाला परपोषी पौधा *कैपसुलैरिस* प्रतीत होता है। पिछैती बोई गई फसलों में शीर्ष भाग पर कम प्रकोप होता है क्योंकि जुलाई के बाद में घुन अंडा देने के लिए नीचे के हिस्से को अधिक पसंद करती है। नाइट्रोजन वाली खाद इसके प्रकोप को बढ़ाती है, लेकिन पोटाश और फासफोटिक उर्वरक इसे कम करते हैं।

इसके लार्वा के कई परजीवी हैं जो 50 प्रतिशत पीड़कों को परजीवीकृत कर देते हैं।

इसके नियंत्रण के लिए मानवीय तरीके अपनाये जा सकते हैं। संक्रमित पौधों को हटाकर इसकी अविकसित अवस्था में नष्ट किया जा सकता है। इसे सामान्य निराई के दौरान किया जा सकता है। खेत में डंठलों और ठूंठों को एकत्र कर जला देना और अधिकतम चार दिन के दौरान ही फसल को पानी में डुबो देना दूसरे अन्य प्रभावी उपाय हैं, क्योंकि इसी समय अधिकतर परजीवी उत्पन्न होते हैं। फिर भी गंभीर प्रकोप के दौरान उपयोग के लिए अब दीर्घस्थायी स्पर्श कीटनाशक उपलब्ध हैं। प्रौढ़ों को मारने के लिए इनका लाभपूर्ण उपयोग किया जा सकता है।

स्पोडोप्टेरा

(प्लेट-32)

स्पोडोप्टेरा एक्सिगुवा हिबनेर[1] को पहले *लैफिग्मा एक्सीग्वा* गुनी[2] के नाम से जाना जाता

1. *Spodoptra exigua* Hiibner 2. *Laphygma* exigua Guenee

था। यह एक विविधभक्षी निशाचर पीड़क है। इसे नील सूंडी भी कहा जाता है, क्योंकि पहले जिस समय नील उद्योग पनप रहा था, यह पीड़क नील की नयी नयी फसल को बहुत नुकसान पहुंचाता था। इसका वंशगत नाम *कैराड्रिना* से *लैफिग्मा* हुआ और अब इसे *स्पोडोप्टेरा* कहा जाता है। विश्व में इसका वितरण यूरोप, दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका और पूर्वी क्षेत्र में है। भारत में भी यह अत्यंत व्यापक है। यह पटसन, नील, लूसर्न, कसूर, पत्तागोभी, मक्का, कपास आदि पर आक्रमण करता है। यह लूसर्न के पत्तों को इतना पसंद करता है कि लूसर्न की फसल को जाल फसल के रूप में उपयोग करने की सलाह दी जाती है।

प्रौढ़ अवस्था में यह एक आदर्शरूप छोटा निशाचर पतंगा होता है। अगले पंख गहरे चित्रित होते हैं और पिछले सफेद। दिन में पतंगा किसी ओट में छुपा रहता है तथा गोधूलि होते ही समागम और अंडे देने के लिए उड़ता है। ये पत्तों पर झुंड में अंडे देते हैं जिसमें 200 तक अंडों हो सकते हैं। अंडों का आकार पोस्त दाने की तरह गोल होता है और उन पर अरीय रेखायें होती हैं। ये अंडे के झुंड महुए रंग के बालों से ढके रहते हैं जो अंडों के बीच में भी होते हैं। अंडा अवधि 24 से 36 घंटे के बीच होती है। अंडों से निकलने के बाद सूंडियां पत्तों की सतह पर एकत्र हो जाती हैं और उनकी बाह्य छाल खाती हैं। इस कम उम्र में उनकी आदत यह भी होती है कि कई पत्तों के बीच जाला बना दें या एक ही पत्ते के अलग अलग हिस्सों को जाल बनाकर जोड़ दें। कई बार इन जालों से फसल को पटा हुआ देखा जा सकता है। इन जालों पर नवजात लार्वा 2-3 दिन तक यूथी अवस्था में रहते हैं और बाद में बिछुड़ कर अलग अलग हो जाते हैं। इस अवस्था में ये छुपने की एक और शैली उस समय अपनाते हैं जब ये आहार नहीं ले रहे होते। इनकी आहार क्रिया कुछ ही घंटे चलती है। सुबह 9 से 11 और फिर शाम को 4 बजे बाद के आसपास। ये खूब पेटू होते हैं और शीघ्र ही पत्तों को खाकर बड़े बड़े रिक्त स्थान बना देते हैं। लार्वा का रंग जिस प्रकार की वह फसल खाता है, उसके अनुसार बदलता रहता है। पूर्ण वर्धित और पूर्ण भोजन के बाद सूंडी अक्सर जमीन की सतह पर पेड़ की जड़ों के आसपास पत्थरों के नीचे अथवा पत्तों में अथवा अन्य मलबे में आश्रय लेती है। आवश्यकता पड़ने पर यह जाला भी बुन लेती है जिससे पत्तों और तिनकों आदि के टुकड़ों की सहायता से कोया बन जाता है। कोया के अंदर लार्वा से प्यूपा बनता है। कोषस्थ सामान्य नोक्टुइड जैसी होती है तथा उदर की नोक पर दो कांटे होते हैं। प्यूपा अवधि पांच दिन जितनी अल्पकालिक हो सकती है और इस प्रकार पूरा जीवन चक्र तीन सप्ताह से भी कम में पूरा हो सकता है। लेकिन तापमान और आर्द्रता के अनुसार यह बहुत दीर्घ भी हो सकता है।

प्यूपा अवस्था पर्यावरणीय स्थितियों से बहुत प्रभावित होती है।

जब नवंबर के दौरान तापमान गिरता है, पूर्ण विकसित सूंडी ओट वाली जगहों पर

प्यूपा निर्माण करती है तथा पूरे शीतकाल में शीतनिष्क्रिय रहती है। जैसे ही फरवरी में वायु गर्म होने लगती है कुछ पतंगे प्रकट होते हैं परंतु उसके बाद शीघ्र ही वायु के शुष्क हो जाने के कारण उनका प्रकट होना बंद हो जाता है। बाद में इनका प्रकट होना तभी आरंभ होता है, जब वायु में नमी आती है। आर्द्रता के प्रति इनकी प्रतिक्रिया इतनी अधिक है कि पुरवाई आर्द्र हवाएं इनकी प्रकटता को उकसाती हैं, लेकिन पछुआ शुष्क हवाएं उसे आगे-बढ़ाती या स्थगित करती हैं। फिर भी जब एक बार पतंगे प्रकट हो जाते हैं और अंडे दे देते हैं तो ये अंडे गर्म और शुष्क हवा, जिसका तापमान 41^0 और आर्द्रता 30 प्रतिशत होती है, को सहन कर लेते हैं। सूंडियों को यदि आर्द्र आहार उपलब्ध करा दिया जाय तो उन्हें बहुत गर्म और शुष्क मौसम में भी पाला जा सकता है। दूसरे शब्दों में यह कीट थोड़ा संरचनात्मक और थोड़ा व्यवहारजनक होता है, जो अपने जीवन को उचित बदलाव वाली मौसमी स्थितियों में अच्छी तरह अपना लेता है।

इस पीड़क के शत्रुओं की संख्या विशेषकर लार्वा अवस्था के समय बहुत अधिक है। इसके शत्रुओं में कीट परभक्षी और परजीवी ही नहीं हैं, बल्कि कशेरुकी (वर्टिब्रेट) भी हैं। वास्तव में कई बार यह भी सुझाव दिया जाता है कि *स्पोडोप्टोरा* की अच्छी संख्या के लिए लूसर्न उगाई जानी चाहिए ताकि उसमें परजीवी जीव भी फले फूलें और उससे ग्रीष्म और शुष्क और गर्मकाल में आने वाली अन्य फसलों का बचाव हो सके।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि गैर-रासायनिक नियंत्रण का एक ही कारगार उपाय है - अंडा समूहों को एकत्र करना। हालांकि गत वर्षो में लार्वा संग्रह करने का भी परीक्षण किया गया और लगभग 20 कि.ग्रा. लार्वा एकत्र किये गये जिनकी संख्या 250,000 थी। रासायनिक नियंत्रण के लिए स्पर्श और उदर विष प्रभाव वाले तेज और दीर्घस्थायी रसायन का उपयोग करना चाहिए।

पटसन की फसल के समन्वित नियंत्रण हेतु सुझाव

पटसन पीड़क के समन्वित नियंत्रण कार्यक्रम को बनाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(1) जिन क्षेत्रों में तना वलयक पटसन फसल को बाधा पहुंचाता हो, वहां कैपसुलैरिस जाति उगाना।

(2) तना और स्पोडोप्टेरा घुन द्वारा ग्रस्त पौधों को उखाड़ना और नष्ट करना तथा स्पोडोप्टोरा जैसे पीड़कों के अंडे एकत्र करके नष्ट करना।

(3) उपर्युक्त विधि से काबू में न आने वाले पीड़कों को अच्छे स्पर्श और उदर विष प्रभाव वाले दीर्घस्थायी रसायन से नष्ट करना।

10

फलों और फल वृक्षों के पीड़क

आपको याद होगा कि तिलहनी फसलों के बारे में यह उल्लेख किया गया था कि इसमें कई प्रकार के नकदी फसलों के विजातीय पौधे आते हैं जो कई असंबद्ध परिवारों के हैं जिनमें उपसारी उद्विकास के कारण तेल निर्माण क्षमता में विशिष्टता आ गई है। फल वृक्षों के बारे में भी यही कथन और अधिक औचित्य के साथ लागू होता है। वास्तव में फल वृक्षों का समूह और बड़ा तथा और अधिक विजातीय है। इसलिये इनके पीड़क भी उतने ही विजातीय हैं। फिर भी, इन सभी का अध्ययन एक अध्याय में करने का विशेष प्रयोजन है, क्योंकि यह उन किसानों के लिए हितकर है जिन्हें बागान मालिक या फलोद्यानी कहते हैं। फल वृक्षों के बारे में यह भी विशेष बात है कि ये अधिकतर मौसमी न हो कर बहुवर्षी पौधे हैं। इसलिए समूचे पीड़क नियंत्रण कार्यक्रम को ध्यान में रखते हुए यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है।

फल वृक्षों की अनेक जातियां हैं। इनमें से कुछ को शीतोष्ण कहा जाता है क्योंकि वे कम तापमान को भी सहन कर सकते हैं जैसे सेब, नाशपाती, आलूबुखारा, अखरोट, खुमानी आदि। नींबू, आम, अमरूद, अनार, काजू, आदि को ऊष्ण अथवा ऊपोष्ण फल वृक्ष कहा जाता है।

फल वृक्षों के पीड़कों की संख्या सैकड़ों हैं और इस समूह का उचित अध्ययन करने के लिए अलग अध्याय की आवश्यकता है। फिर भी इस अध्याय में जिन दस फल पीड़कों की चर्चा की जा रही है, उनसे उद्यान व्यवसाय में आने वाली पीड़क समस्या की प्रकृति का विस्तृत स्वरूप देखने को मिलेगा।

फलोद्यानियों के सामने गंभीर समस्या पैदा करने वाली फल मक्खी के बारे में सब्जियों के पीड़क अध्याय में चर्चा कर ली गई है। मेवों के पीड़कों की समस्या लगभग वैसी ही है जैसी भंडारण वाले फलों की। इसकी चर्चा बाद में की जायेगी।

सैंजोस खपरी कीट

इस पीड़क (*क्वाड्रेस्पीडिओटस पर्निसिओसस* कोमस्टोक)[1] का आम नाम अमेरिका के कैलीफोर्निया राज्य के सैंजोस शहर पर रखा गया है। इसने 1873 में सबसे पहले गंभीर रूप में ध्यान आकर्षित किया। काक्सीडी कुल के महत्वपूर्ण सदस्य खपरी कीट के बारे में विश्वास है कि उसका मूल स्थान चीन है। लेकिन आज यह विश्व के उन प्रत्येक भागों में फैला हुआ है जहां पर्णपाती फल लगाये जाते हैं। ऐसा विश्वास है कि भारत में सबसे पहले यह पीड़क जम्मू कश्मीर में आया। वहां बागों की सजावट के लिए कुछ विदेशी फूल पौधे आयात कर लाये गये थे जो संभवतः इस पीड़क से ग्रस्त थे। पर इसकी गंभीरता 1922 में सामने आयी और सन् 1930 के आसपास इसके बारे में सर्वेक्षण कराया गया जिससे पता चला कि इसका प्रकोप फल उत्पादन करने वाले उत्तरी भारत के ही नहीं बल्कि दक्षिण भारत के भी सभी क्षेत्रों में फैल चुका है।

सैंजोस खपरी कीट के परपोषी वृक्षों की संख्या लगभग 200 है, जिसमें से लगभग 28 पौध कुलों के हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि इसकी अधिक पसंद रोजैसी कुल के पौधे हैं। इस जाति पर संक्रमण की गंभीरता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि 1922 में दक्षिण इलीनोइस में इस पीड़क के ग्रसन से 1,000 से भी अधिक एकड़ में फैले परिपक्व सेब वृक्ष नष्ट हो गये।

प्रत्येक कीट छोटा-सा जीव है जिसके मुखांग और भी सूक्ष्म हैं। इन्हीं की मदद से यह पौध रस चूसता है। कीटों की संख्या इतनी होती है कि बड़े बड़े वृक्ष इसके शिकार हो जाते हैं। हल्के रूप में संक्रमित वृक्षों विशेषकर नव प्ररोहों की सतह पर धूसर चित्ती-सी पड़ जाती है और उसके आसपास का क्षेत्र लाल हो जाता है। लेकिन भारी ग्रसन की अवस्था में छिलके की पूरी सतह धूसर रंग की परत से आच्छादित हो जाती है और एक पर एक खपरी ऐसी प्रतीत होती है मानो शाखाओं पर किसी ने लकड़ी की गीली राख पोत दी हो। पौध रस का इस प्रकार निरंतर स्राव होने से वृक्ष का रस खत्म होने लगता है जिसके फलस्वरूप परिधि से ऊतक मरने लगते हैं। कई बार फल भी ग्रस्त होकर चित्तीदार हो जाते हैं और बाजार में उनके दाम बहुत कम मिलते हैं।

यदि सैंजोस खपरी से ग्रस्त किसी शाखा की आवर्धक लैंस से जांच की जाय, विशेषकर बसंत के आरंभ में, तो उस पर दो प्रकार की चित्तियां अथवा पपड़ियां (खपरी) नजर आयेंगी। इनमें से एक मादा कीट है जो आकार में गोल है और बीच में चूचुक जैसी उन्नत होती है। दूसरा नर कीट है जो अंडाकार है और पपड़ी के चौड़े क्षेत्र में चूचुक जैसा उन्नत है। मादा का स्वरूप तो सदा वैसा ही बना रहता है, लेकिन नर में से दो पंखों वाला नर कीट जन्म लेता है। इस प्रकार इस कीट में अनोखी लैंगिक द्विरूपता (सेक्सुअल डाइमोर्फिज़्म) है।

1. *Quadraspidiotus perniciosus* Comstock

सैंजोस खपरी अपनी अर्द्ध विकसित निम्फ अवस्था में सर्दियां बिताती है तथा ऊपर वर्णित दो प्रकार की खपरियों के नीचे कसकर चिपकी रहती है। बसंत के दौरान तापमान के अनुसार निम्फों का तेजी से विकास होता है। शीघ्र ही पंख वाले नर प्रौढ़ प्रकट होते हैं और मादाओं के साथ समागम करते हैं जो इस समय तक कई बार निर्मोककर चुकी होती हैं और परिपक्व हो चुकी होती हैं। यह भी विशेष बात है कि ये अपना स्थान अब भी वहीं बनाये रखती हैं, जहां इनकी आरंभिक निम्फ अवस्था गुजरी थी। मादाएं अंडजरायुज (ओवोविविपेरस) होती हैं अर्थात अंडे उनके उदर में ही विकसित होते हैं और निम्फ ही मादा खपरी के शरीर से बाहर निकलते हैं। तापमान के अनुसार मादाएं इस प्रकार कई सप्ताह तक प्रजनन करती हैं। सूक्ष्म निम्फ जन्म के बाद शाखा पर थोड़ा रेंगते हैं और किसी उपयुक्त स्थान के मिल जाने पर पौधे में अपने चूषक मुखांगों को प्रविष्ट करके पौध रस पीना आरंभ कर देते हैं। इस अवस्था में निम्फों को रेंगने वाला (क्रालर) भी कहा जाता है। इसके बाद यह जीव इसी स्थान पर चिपका रहता है। मादा सारा जीवन यहां व्यतीत करती है और नर तब तक यहां रहता है जब तक वह पंख वाला प्रौढ़ नहीं बन जाता। प्रथम निर्मोचन (केंचुली उतारना) 10-12 दिन बाद होता है और उसी समय निम्फ की टांगें और शृंगिकाएं जाती रहती हैं। वह अपनी चलन शक्ति खो देता है। ग्रीष्म और बसंत में पूरी निम्फ अवधि एक महीने के लगभग समाप्त हो सकती है। इस प्रकार बसंत के आगमन से लेकर पतझड़ के अंत तक जब प्रसुप्ति (डॉर्मेन्सी) आरंभ होती है, कई पीढ़ियां जन्म ले लेती हैं। सुप्तकाल की अवस्था में मृत्युदर भी काफी होती है। उदाहरण के लिए ऐसा बताया गया है कि कश्मीर में जो खपरी कीट विभिन्न अवस्थाओं में शीतनिष्क्रियता में जाते हैं, उनमें से वे ही बच पाते हैं जो 1/8 सें.मी. के होते हैं और स्वयं पर धूसर रंग की शल्क का स्राव करते हैं। शेष सभी अवस्थाओं के कीट सर्दी से मर जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि इस पीड़क की चलने की शक्ति बहुत सीमित है, लेकिन साथ ही यह विश्व भर में शीघ्र फैल जाता है। एक महाद्वीप से दूसरे में ये मानवीय साधनों द्वारा पहुंचते हैं, जो कीट से संक्रमित वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं। इनका स्थानीय प्रकोप चिड़ियों और वायु आवेग से फैलता है। क्रालर (रेंगने वाले) चिड़ियों के शरीर पर और वायु के झोंकों से दूसरे स्थानों पर पहुंचते हैं।

यह पीड़क अधिकतर अपनी जिंदगी एक ही स्थान पर बिताने वाला होता है। इसलिए इसके शत्रुओं की संख्या भी अधिक है। इनमें कीट परजीवी, फफूंद परजीवी, कीट परभक्षी और पक्षी परभक्षी आदि हैं। ये सभी मिलकर इस पीड़क की संख्या को सीमित रखते हैं। लेकिन फिर भी यह संख्या नुकसान न पहुंचाने वाले स्तर से बहुत अधिक होती है, विशेषकर शीतोष्ण फलों वाले क्षेत्रों में।

जहां तक रासायनिक नियंत्रण का संबंध है पहले यह सिफारिश की जाती थी कि

सर्दियों में निष्क्रिय अवस्था के दौरान विभिन्न प्रकार के खनिज तेलों के घोलों का ग्रस्त वृक्षों पर छिड़काव किया जाय। यदि इनका सक्रिय मौसम में उपयोग किया जाय तो यह अत्यंत पादप आविषी (फाइटोटॉक्सिक) साबित होगा। इसके लिए डी.एन.ओ.सी. जैसे कीटनाशक रसायनों को भी शामिल करने का सुझाव था। लेकिन 1950 के बाद वाले दो दशकों के दौरान बाजार में काफी जहरीले रसायन आये जिन्हें बिना पादप आविषाक्तता भय के पूर्ण विकास के मौसम में उपयोग किया जा सकता है। यह उपचार इतना लोकप्रिय है कि कई बार तो फलोद्यानियों को मना करें तो भी वे नहीं मानते। इस पीड़क के बारे में गंभीर बात यह है कि यह इतने प्रकार के फल और वन वृक्षों पर आक्रमण करता है कि सभी वृक्षों पर रासायनिक छिड़काव द्वारा नियंत्रण करना बहुत कठिन होता है। इसका परिणाम यह होता है कि फल वृक्षों का तो उपचार से नियंत्रण हो जाता है लेकिन अन्य आसपास के वृक्षों पर इसकी संख्या निरंतर बढ़ती रहती है। इस प्रकार रासायनिक नियंत्रण का प्रभाव तत्काल नष्ट हो जाता है। परिणामस्वरूप एक ही उद्यान का बार बार उपचार करना पड़ता है। इस परेशानी से बचने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि इस पीड़क का जैव और रासायनिक नियंत्रण समन्वित तरीके से किया जाय ताकि इसकी संख्या सीमित रहे। सेब जैसे कीमती फल वृक्षों का उपचार रासायनिक दवाओं से किया जाय और आसपास के वृक्षों, जिन पर कीटनाशकों का उपयोग आर्थिक दृष्टि से ठीक नहीं है उन पर जैव नियंत्रण का उपयोग करना चाहिए।

कश्मीर जैसे क्षेत्रों में *प्रोस्पेलटेला* स्पी.[1] जैसे परजीवी को भारी संख्या में पाला जा सकता है। विशेषकर पूरे शीतकाल में गर्म कमरों के अंदर। लगभग चार सप्ताह में एक पीढ़ी में ही परजीवियों की संख्या दस से बीस गुना तक हो सकती है। तत्पश्चात उन्हें अनार्थिक पौधों पर आश्रित सैंजोस खपरी की शिशिरातिजीवी समष्टि पर छोड़ देना चाहिए जिससे बागों के आसपास संक्रामक संरोप की संख्या को कम रखा जा सके। इस विधि से बागानों के बाहर से होने वाला ग्रसन रोका जा सकता है। इससे बगीचों में रासायनिक छिड़काव करने की संख्या भी घटेगी। यह रासायनिक और जैवनियंत्रण के समाकलन के लिए बहुत अच्छा है और यह विधि एक समय पर विशिष्ट अलग अलग क्षेत्रों में अपनाई जा सकती है।

ऊनी माहू

(*एरियोसोमा लैनीजैरम* हौसमैन)[2]

इसे ऊनी कहने का औचित्य यह है कि इस माहू के शरीर की विभिन्न ग्रंथियों से एक

1. *Prospeltella* spp.
2. *Eriosoma lanigerum* Hausmann

चूर्णिल स्राव होता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़क माहू की बड़ी बस्तियों को उसने आच्छादित कर लिया हो। प्रौढ़ के शरीर का वास्तविक रंग बैंगनी होता है।

यह विश्व के सभी शीतोष्ण क्षेत्रों का, जहां जहां भी शीतोष्ण फलों की खेती होती है, भयानक पीड़क है। हालांकि यह विभिन्न प्रकार के वृक्षों पर आक्रमण करता है, लेकिन इसकी गंभीरता विभिन्न जातियों पर भिन्न क्षेत्रों में भिन्न होती है। भारत में इस कीट का आगमन इस सदी के आरंभ में ब्रिटेन की मार्फत हुआ तथा इसे अमेरिकी मूल का माना जाता है। अपने आगमन के साथ ही यह पीड़क सेब की फसल के लिए गंभीर बना हुआ है।

इस माहू द्वारा की जाने वाली क्षति का स्वरूप भी लगभग वही है जो सरसों के माहू द्वारा की जाती है। विशेष बात यह है कि ऊनी माहू का प्रकोप बहुत बड़े स्तर पर होता है, जिसमें जड़ क्षेत्र भी शामिल है जहां इसका नियंत्रण बहुत कठिन होता है। पौधे के ऊपरी भागों में संक्रमण पौधे के सभी हिस्सों जैसे तने, शाखाओं, टहनियों, फलों, पर्णवृंतों आदि तक फैला होता है। संक्रमण के साथ साथ ही कई प्रकार की विकृतियां जैसे बड़ी बड़ी गांठें भी ऊपरी और जमीन के अंदर वाले हिस्सों पर बन जाती हैं। परंतु यह साहचर्य कभी कभी इसलिए भी हो सकता है कि माहू अन्य कारणों से बने हुए घावों में एकत्र हो जाते हैं। पेड़ की फल देने की क्षमता कम हो जाती है और वह निस्तेज बीमार-सा, स्थिर आकार आदि विकृतियों से ग्रस्त रहता है। भूमिगत भागों में कई बार ग्रसन इतना गंभीर होता है कि हवा चलने से पेड़ गिर जाते हैं क्योंकि उनकी जड़ें खोखली हो जाती हैं।

इस पीड़क का जीवनवृत काफी दिलचस्प है और विभिन्न स्थानों पर अलग अलग जलवायु के अनुसार वह भिन्न रूपों में मिलता है। कुल मिलाकर इसके बारे में निम्फ विवरण मिलता है। यह पीड़क शीतकाल को दो अवस्थाओं में बिताता है, या तो अंडे के रूप में अथवा अपूर्ण निम्फ अवस्था में परपोषी पौधे के भूमिगत भागों में। अंडों में से निम्फों का निकलना और निम्फों का विकास तापमान के अनुसार बसंत के समय होता है जब सक्रिय परिवर्धन और प्रजनन आरंभ होता है। इस मौसम में प्रजनन अनिषेकजनन और जरायुजता (विविपैरी) द्वारा होता है अर्थात मादाएं बिना नर के साथ समागम के अंडों के स्थान पर नवजातों का प्रजनन करती हैं। जन्म के तुरंत बाद निम्फ पौधे का रस चूसना आरंभ कर देते हैं और 24 घंटे के अंदर ही अपने शरीर पर मोमिया ऊनी तंतुओं का स्राव आरंभ कर देते हैं। प्रौढ़ बनने से पूर्व उनका चार बार निर्मोचन होता है। यह प्रक्रिया बहुत तेज होती है और मात्र 10 दिन में पूरी हो जाती है। यदि सर्दी बहुत अधिक हो तो यह अवधि 100 दिन तक बढ़ भी सकती है। ग्रीष्म और मानसून के मौसम में पुनरुत्पाद बहुत शीघ्रता से होता है जिसके दौरान पंखयुक्त और पंखरहित दोनों रूप प्रकट होते हैं।

इस समय पीड़क का प्रसार भी बहुत होता है। पंखों के सहारे उड़ कर भी वह इधर उधर पहुंचता है और पंखरहित अवस्था में हवा के सहारे अथवा पक्षियों और पशुओं के शरीरों पर सवार होकर दूर तक जाता है। पतझड़ के और विशेषकर शरद के आगमन पर इनका यौन स्वरूप प्रकट होता है। इस समय नर मादा समागम करते हैं और अंडे देते हैं। इस समय निम्फ अवस्था में शीतनिष्क्रियता के लिए ये वृक्ष के ऊपरी हिस्से से भूमिगत हिस्सों पर चले जाते हैं।

स्थान स्थान की जो भिन्न भिन्न विशेषताएं दर्ज की गई हैं, वे स्पष्टतया अलग अलग जलवायु के फलस्वरूप हैं। इसके अंतर्गत ऊपरी हिस्से से भूमिगत हिस्से में जाना अथवा इसके उलट करना, लैंगिक और जरायुजों का प्रजनन, वे आश्रय स्थल जहां ये शीत ऋतु बिताते हैं आदि बातों में भिन्नता मिलती है। ये विभिन्नताएं आशानुरूप ही हैं। उदाहरण के लिए जहां एक पक्षीय गमन ऊपरी हिस्से से भूमिगत अथवा इसके उलट होता है, वह जड़ से प्ररोह की ओर बसंत में और इसका उलट पतझड़ अथवा शीतकाल में होता है। यह प्रकृति के अनुरूप ही हैं और इसका कारण समझ में आता है। खुर्रम घाटी जैसे दूसरे स्थानों में शीतनिष्क्रियता मादाओं के जरायुज रूप में आती है जो वृक्षों की छालों अथवा अन्य दरारों में छुपती है और बसंत में इन ओटों से बाहर निकलती है। यदि दुबारा शीत लहर चलने लगे तो ये वापस अपने स्थानों को लौट जाती हैं। जिन स्थानों पर ग्रीष्म में पंखयुक्त रूप दिखाई नहीं देते, वहां वे पतझड़ के दौरान प्रकट होते हैं। इसका स्पष्ट कारण यह है कि शीतकाल में अपना अधिक क्षेत्र में प्रसार कर सकें और जीवित रहने के अवसर अधिक सुनिश्चित हो सकें। इस प्रकार कुल मिलाकर इस विवरण से दिलचस्प और आशाजनक परिणाम मिल सकते हैं यदि ऊनी माहू का जैवआर्थिकी और जैवपारिस्थितिकी अध्ययन इस दृष्टिकोण से किया जाय।

दूसरे माहू की तरह *एरियोसोमा लेनीजेरम* के भी परजीवी और परभक्षी शत्रुओं की काफी संख्या है। इस पीड़क के बारे में खास बात यह है कि भारत में इसका महत्व भयंकर से घटकर हल्के कीट के रूप में हो गया है। इस चमत्कारी परिवर्तन का कारण एक विदेशी परजीवी *एफेलिन मैली* हाल्ड है जो इस पीड़क के मूल स्थान का है। ऐसी ही सफलता उन देशों में भी देखने में आई है जहां इस पीड़क की उपस्थिति असावधानी के कारण हो चुकी थी और उसके लिए इस परजीवी को उसके जैविक नियंत्रण के लिए स्थापित किया गया।

जहां तक इसके रासायनिक नियंत्रण का संबंध है, पहले रोजिन साबुन और निकोटीन मिश्रण का उपयोग इसे प्ररोह पर मारने के लिए सुझाया जाता था। भूमिगत ग्रसन के लिए पैराडाईक्लोरोबैंजीन जैसे रसायन के धूमीकरण का सुझाव था। लेकिन अब वायवी छिड़काव के हिस्सों पर शक्तिशाली ऑर्गेनो फॉस्फोरस रसायन उपलब्ध हैं और जड़ों के ग्रसन का

सामना करने के लिए सर्वांगी कीटनाशक उपलब्ध हैं। फिर भी, विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के फलवृक्षों पर इन आधुनिक कीट रसायनों के उपयोग और सावधानियों के बारे में अध्ययन की आवश्यकता है।

फल चूस शलभ[1]

[(क्लर्क) और *ओ मैटेरना* (लिनायस)*]*[2]

इन निशाचर शलभों का आकार काफी बड़ा होता है और ये लगभग बीस विभिन्न प्रजातियों के हैं। इनमें से कुछ का पंख विस्तार लगभग एक सें.मी. अथवा अधिक भी है। सामान्यतया शलभ और तितलियां लार्वा अवस्था में पौध या पौध उत्पादों को क्षति पहुंचाते हैं लेकिन फल चूस शलभ, जैसा कि उनका सामान्य नाम है, फलों को प्रौढ़ अवस्था में नुकसान पहुंचाते हैं। ये शलभ बाह्य छिलके को क्षति पहुंचाकर नारंगी, अमरूद, आड़ू, नाशपाती आदि फलों का रसपान करते हैं। इस क्षति से न केवल फल गिर ही जाते हैं वरन् अन्य कीटों द्वारा आक्रमण के लिए भी रास्ता खुल जाता है जिसमें फफूंद और जीवाणु (बैक्टीरिया) भी शामिल हैं। इनके कारण फल सड़ जाता है अथवा घाव यदि भर भी जाय तो निशान अवश्य पड़ जाता है जिससे फलों की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

फल चूस शलभों के बारे में एक और प्रमुख विशिष्टता यह है कि इनके लार्वा एकदम अलग वृक्षों पर आहार करते हैं जो जंगली रूप में उगते हैं और फल उद्यानों से काफी दूर होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इन कीटों का प्रजनन प्रायः फल उद्यानों से बाहर होता है और लार्वा आहार का कोई आर्थिक महत्व नहीं है, इसलिए इनके प्रजनन के बारे में किसी को जानकारी भी नहीं होती। इस विशिष्टता के कारण इनका नियंत्रण भी कठिन हो जाता है। जिस प्रकार मक्खियों और मच्छरों को उनके जन्म स्थल पर मारने की रणनीति बनाई जाती है, उसी प्रकार इस पीड़क को भी उसके लार्वा काल में ही मारने का औचित्य है। लेकिन इसमें दो मुख्य कठिनाइयां हैं : प्रथम तो यह कि जितनी राशि मक्खियों और मच्छरों के नियंत्रण पर खर्च की जाती है उतनी इन पर खर्च नहीं की जा सकती और जब इतनी राशि खर्च करके मच्छर मक्खियों का नियंत्रण नहीं किया जा सकता, जो कि मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं, तब फल पीड़कों का नियंत्रण करना तो और भी मुश्किल है। दूसरी कठिनाई यह है कि जिन वृक्षों पर फल चूस के लार्वा पलते हैं, उनका प्रसार बहुत व्यापक और छितरा हुआ है। फिर भी, एक बात ऐसी है जिससे मच्छर मक्खियों की तुलना में फल चूस के लार्वा का नियंत्रण करना व्यवहार्य है। यह है कि आश्रय देने

1. ओथेरिस फुलोनिया सबसे अधिक क्षति पहुंचाने वाला सामान्य कीट है
2. [(Clerck) and *O. materna* (Linnaeus)]

वाले पेड़ों को नष्ट कर दिया जाय। इस कार्य को संगठित तौर पर आयोजन करके सफल किया जा सकता है। फल चूस पतंगे से ही मिलते जुलते वर्ग में चैफर भृंग आते हैं। इनके लार्वा भी उतने ही भयंकर पीड़क हैं, जितने फल वृक्षों के पर्णवृंतों पर सफेद भृगंक के प्रौढ़ होते हैं। चूंकि सफेद ग्रब और चैफर भृंग दोनों आर्थिक महत्व की फसलों के गंभीर पीड़क हैं, इन पर खर्च करना लोग अधिक समझपूर्ण मानते हैं।

इनके लिए सबसे प्रभावी नियंत्रण का उपाय फल चूस शलभों को लुभाकर फंसाना माना जाता है। लोलुप आहार में फलों के रस में खांड और पानी के साथ उपयुक्त विष मिलाया जाता है। इस मिश्रण को खुले मुंह के बर्तन में रख दिया जाता है ताकि शलभ इसे खाने के लिए आकर्षित हों और नष्ट हो जायें। इसमें केवल आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई है। उचित उपाय तो यह है कि इससे बड़े पैमाने पर सुनियोजित अभियान बनाकर निपटा जाय तथा सहकारी आधार पर फलोद्यानी इसमें वित्तीय मदद दें।

इन पीड़कों की अन्य जैविकता और जीवनवृत्त लगभग वैसा ही है जैसा अन्य नोक्टुइड पीड़कों का। इसमें से अधिकतर का विवरण पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। पतंगे उन वृक्षों पर अंडे देते हैं जहां, लार्वा पलते हैं और सूंडियां अपनी प्यूपा अवस्था व्यतीत करती हैं। प्यूपा से प्रौढ़ निकलने के बाद वे काफी दूर उड़कर फल वृक्षों के बगीचों में चले जाते हैं और वहां आहार करते हैं।

नींबू पर्ण सुरंगी

(फाइलोक्निस्टिस सिट्रेला स्टेन्टन)[1]

(प्लेट-33)

नींबू वर्गीय पौधों की विभिन्न प्रजातियों के पत्तों पर पत्ती पटल में अनियमित टेढ़ी-मेढ़ी नालियां सफेद-सी चमकती रहती हैं। ये नालियां नींबू पर्ण सुरंगी नामक पतंगे के लार्वा द्वारा बनाई जाती हैं। इस पतंगे का वैज्ञानिक नाम *फाइलोक्निास्टिस सिट्रेला* स्टेन्टन है। इस पीड़क के सुरंग बनाने से पत्ते को भारी क्षति पहुंचती है। पत्ते का आकार बिगड़ जाता है। और वे मुड़-तुड़ जाते हैं। इसकी संरचना गड़बड़ा जाती है और अंत में सूख कर गिर जाती है। कई बार नव प्ररोह पर भी प्रकोप होता है। इसके बाद सारा पौधा कमजोर पड़ जाता है और नींबू नासूर जैसी बीमारियों के प्रति सहिष्णु हो जाता है। छोटे छोटे लार्वाओं के लिए हल्की बाह्य छाल वाले गूदेदार पत्ते छिद्रण और सुरंगी गतिविधियों के लिए अनुकूल होते हैं। इस प्रकार नये नये पत्तों, नयी पौदों और गूदेदार मुलायम पत्तों पर ये अधिक आक्रमण करते हैं।

1. *Phyllocnistis citrella* Stainton

प्रौढ़ अवस्था में ये छोटे, धूसर रंग के शलभ होते हैं जिनका पंख आकार 8 से 10 मि.मी. होता है। अगले पंख सफेद होते हैं जिन पर दो संकर धूसर पट्टियां होती हैं और पिछले पंख हल्की धूसर झालर युक्त होते हैं। ये पतंगे अति सूक्ष्म चपटे एकल अंडे पत्तों की निचली ओर देते हैं। अंडे में से लार्वा दो दिन में ही निकल जाते हैं। लार्वा जब निकलता है तो उसके टांगें नहीं होतीं लेकिन यह शीघ्र ही पत्तों के ऊतकों में घुस जाता है और अंदर से खाना शुरू कर देता है तथा पत्ते के पटल में सुंरग बनाता है। लार्वा काल मात्र पांच दिन के आसपास का होता है जिसके बाद लार्वा बाहर निकलता है और पत्ते के किनारों के पास प्यूपा निर्माण करता है। पत्ते का किनारा मुड़ जाता है और प्यूपा के लिए आवरण-सा बन जाता है। पांच दिन के बाद प्यूपा अवस्था समाप्त हो जाती है और पतंगे बाहर निकल कर नयी पीढ़ी की शुरुआत करते हैं। इस प्रकार दो सप्ताह में ही एक पीढ़ी पूरी हो जाती है, हालांकि वातावरण के अनुसार इसमें दो महीने भी लग जाते हैं। इस समय ऊपर वर्णित सभी अवस्थाएं अधिक समय लेती हैं। पीढ़ियों का यह चक्र पूरे वर्ष चलता रहता है, बस सर्दियों में विकास धीमा होता है, यहां तक कि पतंगे की गतिविधियां अधिक सर्दियों में रुक भी जाती हैं जैसे दिसंबर और जनवरी में।

इस पीड़क का नियंत्रण उतना आसान नहीं है, जितना बाहरी पीड़कों का होता है, लेकिन उतना कठिन भी नहीं है जितना कई अंदरुनी अशनकारियों का होता है। यह इसलिए है कि लार्वा नालियों के ऊपर जो हल्का-सा आच्छादन रहता है, वह अधिक अभेद्य नहीं होता। वे उन कीटनाशकों के पायस अधिक उपयोगी होते हैं जो पादप आविषी नहीं होते। निकोटीन, पैराथियान आदि का छिड़काव उपयोगी होता है, लेकिन कुछ दीर्घस्थायी कीटनाशकों के संविन्यासों के पायस अधिक समय तक प्रतिरक्षण देते हैं।

नींबू तितली

(पैपिलियो डिमोलियस लिनायस*)*[1]

(प्लेट-34)

यह बहुत आम और आकर्षक तितली है जिसे हर कोई जानता है, हालांकि कुछ ही इसे हानिकर समझते हैं। इस तितली की सुंदरता का वर्णन किया जाय तो काफी जगह घिर जायेगी। इसके लिए एक रंगीन पृष्ठ (प्लेट-34) पर दिया गया चित्र भी काफी कुछ बताता है। इससे पहले जिन शलभों के बारे में बताया गया है, उनमें और इस तितली में इतना साम्य है कि कुछ भिन्नताओं को बताना आवश्यक है। सबसे मुख्य अंतर जो शलभ और

1. *Papilio demoleus* Linnaeus

तितली के बीच है, वह बैठने का तरीका है। शलभ जब बैठते हैं तो उनके पंख फैले रहते हैं जब कि तितलियों के पंख पीठ के ऊपर एक दूसरे से सटे हुए और जिस सतह पर वे बैठती हैं उसकी लंबवत दिशा में होते हैं। दूसरा सूक्ष्म अंतर यह है कि तितलियों में शृंग सिरे पर मोटा होता है, जब कि पतंगों में तंतुरूप होता है। तीसरा आर्थिक महत्व का अंतर यह है कि काफी संख्या में शलभ फसलों और फल वृक्षों के गंभीर पीड़क होते हैं, जब कि पीड़क तितलियों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है।

इस प्रकार नींबू तितली इस वर्ग की वह जाति है जो अपनी लार्वा अवस्था में बहुत नुकसान करती है और प्रौढ़ अवस्था में अपनी सुंदरता से पर्यावरण को मनोहर बनाती है।

यह प्रजाति भारतीय उपमहाद्वीप में पर्याप्त रूप से मिलती है तथा पूर्व में ताईवान से लेकर पश्चिम में अरब तक इसका प्रसार है। लार्वा अवस्था में जिन खाद्य पौधों पर यह आक्रमण करती है, उनमें नींबू वर्ग की विभिन्न जातियां और कई अन्य पौध वंश शामिल हैं।

मादा तितली कोंपलों और मुलायम प्ररोहों पर पीले-सफेद अंडे देती है। अंडे गुच्छों में न होकर एक रूप में छितरे रहते हैं। दो ही दिनों में अंडों में से गहरी-भूरी सूंडियां निकलती हैं तथा नींबू वर्गीय वृक्षों के पत्तों को खाती हैं। कुछ दिन बाद इनके शरीर पर सफेद-से निशान बन जाते हैं और वे इस तरह दिखती हैं जैसे सूंडी न होकर पक्षी वर्ग की बीट पड़ी हो। वास्तव में यह रूप इनकी रक्षा में मदद करता है, क्योंकि परभक्षी चिड़ियां इस भ्रम में पड़ जाती हैं कि ये बीट (मल) हैं और इन्हें नहीं खातीं। एक दिलचस्प तथ्य यह है कि पूर्ण वर्धित अवस्था में इनका रंग हरा हो जाता है और ये प्यूपा बनने के लिए विभिन्न दिशाओं में जाकर टहनियों पर लटक जाती हैं। एक पीढ़ी मात्र ढाई सप्ताह में भी पूरी हो सकती है और साढ़े चार माह भी ले सकती है। आमतौर पर एक वर्ष में कई पीढ़ियां होती हैं तथा सर्दियां प्यूपा अवस्था में गुजरती हैं।

इसके नियंत्रण के लिए इसे लार्वा और प्यूपा अवस्था में जब उनकी संख्या कम हो अथवा जब इसका प्रकोप आरंभ हुआ हो, उस समय हाथ से पकड़ कर नष्ट किया जा सकता है। बहुत गंभीर प्रकोप की अवस्था में तेज और दीर्घस्थायी स्पर्श तथा उदर विष प्रभाव वाले रासायनिक कीटनाशी के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

अनार तितली

(वाइराकोला आइसोक्रेटीज़ फैब्रीसियस*)*[1]

(प्लेट-35)

यह दूसरी पीड़क तितली है जो कई फलों को, विशेषकर अनार को, क्षति पहुंचाती है। इसका प्रसार पूरे भारत में है। यह जिन फल वृक्षों पर आक्रमण करती है, उनमें अमरूद, सेब, संतरा आदि भी शामिल हैं। इसका लार्वा फल में छेद करता है और उसके तत्वों का आहार करता है। दरअसल यह काफी गड़बड़ी करता है जिससे छिद्र में से दुर्गंधयुक्त पदार्थ निकलता है। स्पष्टतया इसके द्वारा बनाये गये घाव पर कई प्रकार के जीवाणु और फफूंद भी आक्रमण कर देते हैं।

मादा तितली नवजात प्ररोह के विभिन्न भागों पर एकल अंडे देती है लेकिन अंडों से एक सप्ताह बाद ही निकल आने वाली सूंडी पत्तों की अपेक्षा फल में छेद करती है। लार्वा अवस्था दो सप्ताह से डेढ़ महीने तक रह सकती है। प्यूपा निर्माण या तो तने पर अथवा गिरे हुए फलों में भी हो जाता है। प्यूपा अवधि एक सप्ताह से एक माह तक हो सकती है। मौसम के अनुसार विभिन्न गति से वर्ष भर प्रजनन चलता है।

चूंकि लार्वा सीधे फल में प्रविष्ट हो जाता है, इसलिए इस पीड़क के नियंत्रण का कोई संतोषजनक उपाय नहीं है। हालांकि ग्रसन इतना तीव्र होता है कि कई बार 90 प्रतिशत तक फल कृमियुक्त हो जाते हैं। यह उन पीड़कों में से एक है जिन पर आर्थिक कीट वैज्ञानिकों को विस्तृत खोजबीन करनी चाहिए। प्रौढ़ों को आकर्षित करने के लिए ऐसे लोलुप आहार का विकास करना चाहिए कि वे समागम करने और अंडे देने से पूर्व ही इसे खाकर मर जायें। इस समय यही सिफारिश की जाती है कि ग्रस्त फलों को बड़े क्षेत्र में संगठित रूप से एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए। इसी विधि से किसी व्यावसायिक उद्यान को बचाया जा सकता है। किसी छोटे बगीचे में या गृहवाटिका में आसानी से ग्रस्त फलों को चुना जा सकता है।

आम्र फुदका

आप यदि किसी आम के ऐसे पेड़ के नीचे से गुजरें जिसकी शाखायें आपके कद से ऊंची न हों तो ये कीट गुनगुनाते हुए आपके चेहरे के ऐन सामने दिखाई पड़ जायेंगे। कम से कम जुलाई-अगस्त माह के दौरान तो यह सामान्य बात होती है। आम के पेड़ का यह सबसे गंभीर पीड़क है। यह पीड़क जैसिड कुल से संबद्ध है, इसलिए इनके सामान्य लक्षण

---

1. *Virachola isocrates* Fabricius

वही हैं जो पहले ही कपास के जैसिड के बारे में बताये जा चुके हैं। हालांकि इसकी तीन प्रमुख जातियां हैं– *एम्रिटोडस ऐटकिन्सोनी* लेथियरी[1], *इडियोस्कोपस क्लाइपिएलिस* लेथियरी[2] और *अइई नाइवियोस्पार्स*[3]। लेकिन इनके बारे में एक विशिष्ट बात यह है कि ये मीली बग से भिन्न एकलभक्षी हैं अर्थात इनका आहार और प्रजनन मात्र आम पर ही होता है। अन्य जैसिडों की तरह ये भी पौध रस पीते हैं। इस प्रकार एक बहुत बड़ी संख्या में छोटे छोटे कीटों द्वारा पौध रस पिए जाने से पुष्प कलियां, फूल (बौर) आदि पहले शिथिल होते हैं फिर मुरझाते हैं और बाद में मर जाते हैं। इससे फल लगने में बहुत बाधा पहुंचती है और फल झड़ जाते हैं। अन्य जैसिडों की तरह ये भी चिपचिपा मधुबिंदु छोड़ते हैं जिससे पौधे के अंगों पर कज्जली फफूंद फैल जाती है। इससे एक तो पौधा बीमार-सा नजर आता है और दूसरी ओर इससे प्रकाश संश्लेषण में बाधा पहुंचती है।

इसकी विभिन्न जातियों के आकार में भिन्नता मिलती है जो 4 मि.मी. से 6 मि. मी. तक होता है। उपर्युक्त तीनों प्रजातियों की आदतों और बनावट में भी अंतर मिलता है जो अत्यंत सूक्ष्म और महत्वहीन है।

सर्दियां प्रौढ़ अवस्था में विताने के बाद मादा फुदका पुष्प कलियों, मुलायम पत्तों और मुलायम प्ररोहों के ऊतकों में अंडे देती है। इन अंडों में से एक सप्ताह से 10 दिन में निम्फ निकल जाते हैं और इसके तुरंत बाद वे पौध रस चूसना आरंभ कर देते हैं। निम्फ अवधि 2 से 4 सप्ताह में पूरी हो जाती है। इस प्रकार वर्ष में कई पीढ़ियां हो सकती हैं लेकिन दो ही अवसरों पर इनका बाहुल्य मिलता है–पहला फरवरी से अप्रैल तक और दूसरा जून से अगस्त तक। निम्फ धुंधले और छायादार स्थानों को पसंद करते हैं, विशेषकर दोपहर के समय।

नियंत्रण के लिए तेज स्पर्श विष का सुझाव दिया जाता है। लेकिन कीटनाशी का चुनाव करते समय यह भी बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कई बार किसी कीटनाशी के उपयोग से चिंचड़ी पीड़कों के कारण कठिनाइयां बढ़ जाती हैं। इसलिए स्थानीय हालातों का थोड़ा अनुभव लेना जरूरी है। सर्वांगी कीटनाशी भी इस पीड़क के नियंत्रण के लिए काफी सफल हो सकते हैं लेकिन उनकी सिफारिश तब तक नहीं की जा सकती, जब तक कि ऐसे कीटनाशी का फल पर पूर्ण प्रभाव नहीं देख लिया जाता कि मानव उपयोग के समय उसमें ऐसा रसायन रह तो नहीं जाता।

---

1. *Amritodus atkinsoni* Lethierry
2. *Idioscopus clypealis* Lethierry
3. *I. niveosparsus*

आम्र मीली बग

(ड्रोसिका मैंगीफेरा ग्रीन)[1]

(प्लेट-36)

फलों के बागानों के मालिक और अपने खेतों में कुछ आम के पौधे लगाने वाले, दोनों ही प्रकार के लोग इस बड़े, मांसल और सपाट शरीर वाले जीव से भली-भांति परिचित होते हैं। इसकी लंबाई लगभग डेढ़ सें.मी. और चौड़ाई 1 सें.मी. से कम होती है। इस पर आटे जैसा चूर्ण लगा रहता है। वृक्ष के तने के ऊपर, नीचे या जड़ों के आसपास इसे रेंगते हुए देखा जा सकता है। आम के पेड़ों के पास बने घरों में भी ये नजर आ सकते हैं। इन्हें आम्र मीली बग कहा जाता है। अपने बड़े आकार के कारण इन्हें बड़ा मीली बग भी कहते हैं। इनका अस्तित्व ऐसा है कि उसके प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रहा जा सकता। जब इसकी संख्या अधिक होती है तब तो स्थिति और भी भयानक होती है। यह उनके लिए विशेष सूचना है जो ऐसे जीवों की खोज में रहते हैं। ये कीट बग समूह से हैं। इसलिए इनका नाम स्वनामधन्य है। अधिकतर वर्गों की भांति ये भी वृक्षों का रस पीते हैं, हालांकि इनके नाम से ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये सिर्फ आम पर ही पलते हों, लेकिन ऐसा नहीं है। इनके परपोषी वृक्षों की संख्या 62 के लगभग है। इसमें कई प्रकार की झाड़ियां और वनस्पतियां, आम, अमरूद, नाशपाती, आड़ू, गुलाब, अरंडी आदि शामिल हैं। जब इनकी भारी संख्या पौधे का रस पीती है तो ये मधुबिंदु का स्राव करते हैं जिससे कज्जली फफूंदी की बढ़ोतरी होती है और पूरा पौधा अस्वस्थ प्रतीत होता है। कई बार इन्हें झुंड में नव प्ररोहों पर एकत्रित होते हुए देखा गया है जो खुम्भी की बढ़त जैसा लगता है।

इस पीड़क की सर्वाधिक आम जाति का वैज्ञानिक नाम *ड्रोसिका मैंगीफेरा* है और यह भारत तथा चीन के अनेक भागों में पाई गई है।

इनकी प्रौढ़ अवस्था में सुस्थापित लैंगिक द्विरूपता होती है जो आमतौर पर मध्य ग्रीष्म अवधि में अर्थात अप्रैल से जून के बीच पाई जाती है। ऊपर जो विवरण दिया गया है वह प्रौढ़ मादाओं का है, जो पंखरहित और बड़े शरीर की होती हैं। दूसरी ओर, नरों के शरीर पर एक जोड़ी पंख होते हैं। इनका शरीर लालिमा लिए नाजुक-सा होता है। ये चुस्त होकर उड़ान भरते हैं और मादाओं को उर्वर बनाते हैं। नर प्रौढ़ का जीवन काल, मादा प्रौढ़ जो लगभग एक माह तक जीवित रहती है, से कम होता है। निषेचन के बाद अंडपूर्ण (ग्रेविड) मादा पेड़ के तने पर रेंगती हुई नीचे जमीन पर आती है और वहां 5 से 15 सें.मी. जमीन के नीचे 300-400 अंडों के झुंड में अंडे देती है। अंडे पेड़ के आधार

---

1. *Drosicha mangiferae* Green

और उसके आसपास के क्षेत्र तक देना ही सीमित होता है। पड़े के आधार तक पहुंच कर मिट्टी तके अंड निक्षेपण तक की सारी क्रियाएं आमतौर पर अप्रैल-मई और जून के महीनों तक सीमित होती हैं। नर समागम के तुरंत बाद मर जाता है और मादा अंडा देने के तुरंत बाद।

मृदा में अंडों में से निम्फ काफी समय बाद निकलते हैं और यह मृदा के तापमान और आर्द्रता पर बहुत निर्भर होता है। इसका परिणाम यह होता है कि निम्फ शीघ्र से शीघ्र नवंबर तक निकल सकते हैं अथवा फिर अगले वर्ष मार्च तक का भी समय ले सकते हैं। मानूसन अथवा सर्दियों के दौरान बारिश देर से आने का भी निम्फ निकलने पर प्रभाव पड़ता है।

अंडे से निकलने के बाद नवजात निम्फ उपयुक्त खाद्य पौधे की तलाश में रेंगते हैं और मिल जाने पर कुछ वक्त वहां गुजारते हैं। इसके बाद वे पेड़ पर चढ़ना आरंभ करते हैं। उनकी यह चढ़ाई कई सप्ताह तक चलती है। नयी कोंपलों या नए विकसित हो रहे अंगों पर पहुंचकर निम्फ समूह बनाते हैं और पौध रस चूसते हैं। अपनी निम्फ अवस्था के दौरान ये तीन बार निर्मोचन करते हैं जिसमें वातावरण के तापमान के अनुसार तीन महीने या उससे अधिक लगते हैं। इसके बाद निम्फ नरों में परिवर्तित होने के लिए एक प्रकार की प्यूपा अवस्था से गुजरते हैं और स्वयं को पंखयुक्त नरों में बदल देते हैं। जो निम्फ मादा बनते हैं उनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता, बस आकार थोड़ा बढ़ता है। इस प्रकार वर्ष में एक ही पीढ़ी जन्मती है। अन्य बहुत से कोक्सिडों के विपरीत इस पीड़क के निम्फ स्थिर नहीं रहते, हालांकि वे सुस्त होते हैं।

उपर्युक्त विवरण से इस पीड़क के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय युक्तिसंगत हो सकते हैं :

(क) ग्रस्त पेड़ के नीचे की आसपास की मृदा की गुड़ाई करना ताकि अंडे धूप के सामने पड़ें और गर्मी से मर जायें। ऐसे स्थान का निम्फ निकलते समय या उससे थोड़ा पहले कीटनाशक दवाओं से उपचार करना ताकि अंडों से जैसे ही निम्फ निकलें, विष के संपर्क में आकर खत्म हो जायें।

(ख) तने के चारों ओर किसी चिपचिपे पदार्थ का घेरा बना देने से निम्फ रेंगकर पेड़ पर नहीं चढ़ पायेंगे। इस प्रकार के कई चिपचिपे पदार्थों की सिफारिश की जाती है। यदि इस पदार्थ में कीटनाशक दवा और मिला दी जाय तो प्रभाव और बढ़ जायेगा। पेड़ के तने पर कीटनाशक दवा का चौड़ा घेरा बनाना भी प्रभावी रहता है और निम्फ विष के संपर्क में आकर मर सकते हैं। हाल ही के वर्षों में यह देखा गया है कि पेड़ के तने के घेर पर 300 मि.मी. चौड़ी एल्काथीन की 400 गेज की शीट का बंध लगा देने से मीली बग की चढ़ाई को रोका जा सकता है।

(ग) तेज आर्गनो फॉस्फोरस कीटनाशक के छिड़काव से, जो इसके मोमिया शरीर में प्रवेश कर जाता है, इस पीड़क का नियंत्रण किया जा सकता है। यदि निम्फ अंडों से ताजा ताजा निकले हैं तो इसका प्रभाव और अच्छा होता है। जितनी अधिक अवस्था के निम्फ हों उतना ही अधिक छिड़काव करना चाहिए।

छाल भक्षी सूंडी

(इंडारबेला स्पी.)[1]

(प्लेट-37)

फलोद्यानों के मालिक जब अपने बगीचों के पेड़ों और टहनियों पर छिलकों, मल आदि युक्त गंदे, लंबे, टेढ़े-मेढ़े फीते जैसे जालों को देखते हैं तो बहुत क्रुद्ध, निरुत्साह और उदास हो जाते हैं। इनकी चौड़ाई एक इंच से अधिक और लंबाई दो फुट तक भी होती है तथा ये जाले विभिन्न प्रजातियों के पेड़ों पर लगते हैं। कई बार तो एक ही पेड़ पर ऐसे अनेक जाले लगे रहते हैं और पेड़ को कुरूप बना देते हैं। इस जाले को ध्यान से देखने पर इसमें लगभग एक इंच चौड़ाई की एक गली-सी नजर आती है जो मोटी शाखा के कोने में बने छेद तक जाती है। आमतौर पर इस गली में या शाखा के छेद में सूंडी मिलती है। कई बार यह स्थान खाली भी मिल सकता है, क्योंकि सूंडी गली या छिद्र को छोड़कर अन्यत्र चली जाती है। इसे छाल भक्षी सूंडी कहा जाता है। यह बड़े आकार के पतंगे का लार्वा होती है। यह *इंडारबेला (आई. टेट्रानिस* मुरे, *आई. क्वाड्रिनोटैटा* वाकर)[2] की जाति के रूप में जाना जाता है। जिस वृक्ष पर यह सूंडी मिलती है, उसके लिए बहुत हानिकर होती है क्योंकि यह उसकी छाल खाकर पादप ऊतकों को गंभीर क्षति पहुंचाती है। इन्हीं ऊतकों के माध्यम से पौधे की अमूल्य पौध रस प्रणाली में पौध रस का आवागमन होता है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि पौधे की वृद्धि और फल लगने की क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है। कई बार ग्रस्त शाखायें सूख जाती हैं और ग्रसन गंभीर हो तो पूरा वृक्ष ही सूख कर मर जाता है। इस पीड़क की यह विशिष्टिता है कि नये पौधों की अपेक्षा यह पुराने को ज्यादा पसंद करता है। देश के कुछ भागों में इसका प्रकोप 40 प्रतिशत से भी अधिक मिला है।

भारत के मध्य क्षेत्र में इसके जीवनवृत्त के बारे में जो जानकारी मिली है, वह कमोबेश इस प्रकार है : प्रौढ़ बड़े आकार का पतंगा होता है जिसमें नर के पंख लगभग 3 सें.मी.

---

1. *Indarbela* spp. 2. *Indarbela* (*I. tetraonis* Moore, *I. quadrinotata* Walker)

और मादा के पंख 4 सें.मी. विस्तार के होते हैं। इनका रंग हल्का धूसर से हल्का लाल होता है तथा उस पर गहरे भूरे धब्बे अथवा बिंदु होते हैं।

मादा काफी संख्या में अंडे देती है जो छोटे छोटे झुंडों में होते हैं। एक झुंड में 15 से 20 अंडे होते हैं। अंडे देने का समय मई और जून महीने में आता है। अंडे में से लार्वा लगभग 10 दिन में निकलते हैं और उसके तुरंत बाद ये पौधे की छाल खाना शुरू कर देते हैं और जाला बना कर उसमें रहते हैं। लार्वा अवस्था काफी लंबी होती है और सूंडी मई, जून से लेकर अगले वर्ष अप्रैल तक अपनी गतिविधि जारी रखती है। इस अवधि में उसका आकार बढ़ता रहता है जो सितंबर में 1.5 सें.मी. से लेकर दिसंबर में 4 सें.मी. तक पहुंच जाता है। उस समय यह पूर्ण विकसित हो जाती है। लार्वा की आदतें काफी महत्वपूर्ण हैं। दिन भर यह छुपी रहती है और रात्रि को नये इलाकों में आहार के लिए बाहर आती है। अप्रैल के बाद इसका प्यूपा निर्माण आरंभ होता है। यह अपनी लार्वा अवस्था में बनाई गई गली में प्यूपा निर्माण करती है। प्यूपा अवस्था 3 से 4 सप्ताह तक चलती है। प्यूपा अवस्था की समाप्ति पर प्यूपा कुलबुलाता हुआ गली के मुहाने तक पहुंच जाता है और तब उसमें से पतंगा निकलता है। प्यूपा आवरण निकास छिद्र में रह जाता है। पतंगे का जीवन बहुत संक्षिप्त होता है और वह 2-3 दिनों में ही अंडे दे देता है जिसके बाद वह मर जाता है।

जिन वृक्षों पर छाल भक्षी सूंडी आक्रमण करती है, उनकी सूची काफी लंबी है जिसमें आम, अमरूद, अनार, जामुन आदि सामान्य बगीचों में पाये जाने वाले फल-वृक्ष भी शामिल हैं।

इसकी जिस आदत का नियंत्रण के लिए लाभ उठाना चाहिए वह इसके द्वारा जाला निर्माण है जो दूर से ही इसकी उपस्थिति को प्रकट करता है। इसलिए इसके नियंत्रण के लिए जाले को हटाकर छिद्र में धुआं रसायन छोड़ना चाहिए। छिद्र में रुई का फाहा, अच्छे धूम्र रसायन में भिगोकर, डाट लगाकर धुआं देना चाहिए। फिर इस डाट को गीली मिट्टी से पक्का कर देना चाहिए। दूसरी विधि यह है कि जाले पर अच्छा दीर्घस्थायी कीटनाशक द्रव छिड़कना चाहिए तथा छिद्र से बाहर भी पर्याप्त दूरी तक इसे छिड़कना चाहिए ताकि रात्रि में जब सूंडी बाहर निकले तो इसके संपर्क में आकर मर जाय। कीटनाशी स्पर्श और उदर दोनों प्रभावों वाला होना चाहिए और जितना हो सके टिकाऊ होना चाहिए।

आम्र गुठली घुन

(स्टेर्नोकेटस मैंगीफेरा फेब्रिसियस*)*[1]

(प्लेट-38)

यह एक अजीब पीड़क है जो आम के प्रेमियों में दहशत और विरक्ति ही पैदा नहीं करता बल्कि उन्हें अचंभे में भी डाल देता है। जिन इलाकों में यह पीड़क मिलता है, वहां जब कोई आम खा रहा होता है तो अच्छे भले दिखने वाले आम के फल में से बड़े आकार का प्रौढ़ घुन निकलता है और उड़ जाता है। फल खाने वाले के मन में इससे घृणा पैदा हो जाती है क्योंकि खाते समय फल में से इस प्रकार कीट का निकलना अशोभनीय है और उस समय फल को तुरंत फेंके बिना नहीं रहा जा सकता। जो लोग इस कीट के जीवन वृत के बारे में नहीं जानते, निश्चय ही वे इससे असमंजस में पड़ जाते हैं कि यह कीट इसमें कैसे घुसा, क्योंकि ऊपर से देखने पर सामान्यतया फल में कोई छिद्र या दाग दिखाई नहीं देता।

इसकी असलियत इस प्रकार है : प्रौढ़ घुन की लंबाई लगभग 8 मि.मी. और चौड़ाई 4 मि.मी. होती है। रंग धूसर भूरा और इस प्रकार चित्रित होता है कि आम के पेड़ की छाल में घुलमिल जाता है और दिखाई नहीं देता। जिस ऋतु में फल नहीं आते उस समय वह छाल में ही ओट बनाकर आश्रय लेता है और महीनों इस प्रकार छिपा रह सकता है। कुछ लोगों का कहना है कि कई मौसमों में यह आम के पत्ते खाता हैं, जबकि कुछ की राय में यह बिना कुछ खाये पिये महीनों गुजार देता है। यदि इसे हिलाया डुलाया जाय तो ऐसा बन जाता है जैसे मर गया हो। सामान्यतया यह निशाचर है। जब आम के फल लगने शुरू होते हैं तब यह मुलायम कच्चे फलों पर ही अंडे दे देता है। अंडे देने की प्रक्रिया भी बहुत विशिष्ट है। मादा घुन अंडे देने के लिए अपने थूथन और शृंगि की सहायता से उपयुक्त स्थान की खोज करती है। फिर उस स्थान को अपने मुखांगों से इस प्रकार दबाकर नाव की आकृति की उथली जगह बनाती है कि उससे कोई तरल पदार्थ भी बाहर न निकले। इसके बाद वह इस स्थान का एक चक्कर और लगाकर उपयुक्तता की जांच करती है। फिर इस दबे हुए स्थान पर एक अंडा देती है और उस पर हल्का-सा पारदर्शी द्रव्य छोड़ती है। पश्चात वह एक और चक्कर लगाकर मुंह की सहायता से अंडे के पिछले हिस्से के पास अर्द्ध चंद्राकार छेद करती है। यह छेद ऐसा होता है कि इसमें से तरल पदार्थ बहता है और अंडे पर पूरी तरह छा जाता है। यह सूखकर एक रेजिनी कवच बन जाता है जिससे अंडा पूरी तरह सुरक्षित हो जाता है। अंडे देने की यह विधि इतनी सुरक्षित और त्रुटिहीन

1. *Sternochetus mangiferae* Fabricius

है कि औसतन 15 मिनट में एक अंडा दिया जाता है। एक दिन में मादा लगभग 15 अंडे देती है और तीन महीने की अवधि में लगभग 300। मादा जीवन में कई बार समागम करती है तथा समागम और अंडा देना बारी बारी चलता है। एक फल में तीन दर्जन तक अंडे पाये गये हैं। एक सप्ताह में अंडे में से लार्वा निकल जाता है। यह लार्वा बेलनाकार होता है जो कि घुन लार्वा की विशिष्ट बात है। यह शीघ्र ही फल के कच्चे गूदे में बिल बनाना शुरू करता है जहां गुठली का छिलका अभी बहुत मुलायम अवस्था में होता है। लार्वा इसे भेद कर गुठली के भ्रूणपोष (एन्डोस्पर्म) में पहुंच जाता है। वहां यह सुरक्षित वातावरण में आराम से प्रचुर भोजन करता है। यदि गुठली का छिलका छेद किये जाने से पहले ही सख्त हो जाय तब लार्वा के जीवित रहने के बहुत कम अवसर होते हैं। इससे फल की ग्रसन होने की अवस्था का निर्धारण होता है कि किस अवस्था तक उस पर ग्रसन संभव है। गुठली के भ्रूणपोष के अंदर लार्वा भोजन लेता है, बढ़ता है, पांच सप्ताह की अवधि में पांच बार निर्मोचन करता है, सात दिन तक प्यूपा अवस्था में रहता है और अंत में प्रौढ़ घुन बनता है। इस समय आम के छिलके, गूदे और गुठली के खोल को हुई क्षति इस तरह भर जाती है कि फल एकदम स्वस्थ नजर आता है जबकि उसकी गुठली के अंदर ये कीट विकसित हो रहे होते हैं। कई बार आधा दर्जन से अधिक कीट एक ही गुठली में पाये जाते हैं। यदि संक्रमित अवस्था में फल पेड़ से गिर जाय और इसका गूदा फट जाय, तब प्रौढ़ घुन एक निकास छिद्र बनाकर सीधे गुठली से प्रकट हो जाता है। यदि फल गिरे नहीं, तो प्रौढ़ आम के गूदे को भी काट कर बाहर आता है। उस समय अशोभनीय दृश्य पैदा होता है कि एक सुंदर फल से किस प्रकार कीट बाहर आ रहा है जब कि कोई उसे बस खाने ही वाला था।

अन्य दिलचस्प तथ्यों में यह भी है कि इस पीड़क की आयु प्रौढ़ावस्था में बहुत लंबी होती है। यह 21 माह तक जीवित रह सकता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी यह कई माह जीवित रह लेता है। यह भी जानने योग्य तथ्य है कि जहां तक जानकारी मिली है, यह पीड़क एकलभक्षी है - अर्थात सिर्फ आम पर ही आक्रमण करता है।

इस पीड़क की अन्य विशेषता इसका तापमान और कम आर्द्रता के बारे में अत्यंत संवेदनशील होना है। इसी कारण भारत में यह तटवर्ती और दक्षिण प्रदेशों तक सीमित है। यही बात इसके विश्व में प्रसार पर लागू होती है। यह हिंद महासागर के तटवर्ती देशों में पाया जाता है। यह अभी तक उत्तर, दक्षिण और मध्य अमेरिका तक नहीं पहुंच सकता है। इसे दक्षिण-पूर्वी एशिया मूल का माना गया है।

उपर्युक्त विवरण से इसके द्वारा की गई क्षति का स्वरूप स्पष्ट होता है। कई बार तो शत-प्रतिशत फल नष्ट हो जाते हैं। साथ ही, कुछ परिस्थितियों में क्षति गुठली को ही अधिक पहुंचती है। उदाहरण के लिए यदि गुठली में से प्रौढ़ के निकलने से पहले ही आम

को खा लिया जाय तो व्यवहार में कोई क्षति नजर नहीं आती। ऐसे मामलों में आर्थिक हानि उन्हें उठानी पड़ती है जो गुठली बोकर आम उगाना चाहते हैं, क्योंकि गुठली बुरी तरह ग्रस्त होती है। इससे आम के निर्यात बाजार को बढ़ाने में भी बहुत दिक्कत आती है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में भारत से आम के आयात पर प्रतिबंध है। ऐसा इसलिए है कि उन्हें यह डर है कि कहीं आम के साथ उनके देश में यह पीड़क प्रतिष्ठित न हो जाय। इन स्थितियों में इस पीड़क के नियंत्रण करने की समस्या के दो पहलू हैं : पहला है आर्थिक स्तर से नीचे तक संक्रमण को घटाना। इसके लिए उत्तम तरीका है प्रौढ़ को फलन मौसम से पहले ही मार देना। इसके लिए वृक्ष की छाल का अच्छी तरह उपचार करना चाहिए क्योंकि वहां पर ये छुपते हैं। दूसरा पहलू है आम के फल का उपचार करना और गुठली के अंदर ही इस पीड़क को मार देना। इसके लिए ऐसी विधि अपनानी चाहिए ताकि फल को हानि न पहुंचे। यह समस्या विश्व भर में अनसुलझी थी, पर हाल ही में गर्म जलोपचार विधि द्वारा भारत में गुठली के अंदर ही इसे मारने के सफल प्रयोग हुए हैं। इससे फल को भी कोई क्षति नहीं होती। आश्चर्यजनक बात यह सामने आई है कि यदि फल को $50^0 \pm 0.5$ सेल्सियस गर्म जल में दो घंटे तक डुबोये रखा जाय तो गुठली में रह रहा कीट मर जाता है। हालांकि गूदे में रह रहा फल मक्खी का लार्वा इससे संतोषजनक रूप में नियंत्रित नहीं होता। फिर भी, यदि गर्म पानी में एथीलीन डाईब्रोमाइड (14.47 पी पी एम) मिलाकर उपचार किया जाय तो फल मक्खी का लार्वा भी मर सकता है। 72 घंटे के बाद इस उपचार से उपचारित फल में 1.5 पी पी एम ब्रोमाइड अवशिष्ट पाया गया है जो संयुक्त राज्य अमेरिका के खाद्य और औषधि प्रशासन द्वारा निर्धारित 10 पी पी एम के सह्य तल से बहुत कम है। इसलिए अब उन देशों को आम निर्यात की संभावनाओं का पता लगाने का प्रयास करना चाहिए जहां इसके आयात पर प्रतिबंध हैं।



प्लेट-33—नींबू पर्ण सुरंगी

1. सुरंग बनी नींबू की शाखा 2. सुरंग बने नींबू पत्ते 3. लार्वा 4. प्यूपा 5. विश्राम की मुद्रा में प्रौढ़ 6. प्रौढ़

(भा.कृ.अन.प., प्रबंध नं. 16 ,प्लेट 3)



प्लेट-34—नींबू तितली

1. पत्ते पर दिये हुए अंडे 2-6. विभिन्न अवस्थाओं के लार्वा 7. प्यूपा निर्माण हेतु तैयार लार्वा 8. प्यूपा 9. और 10. तितली

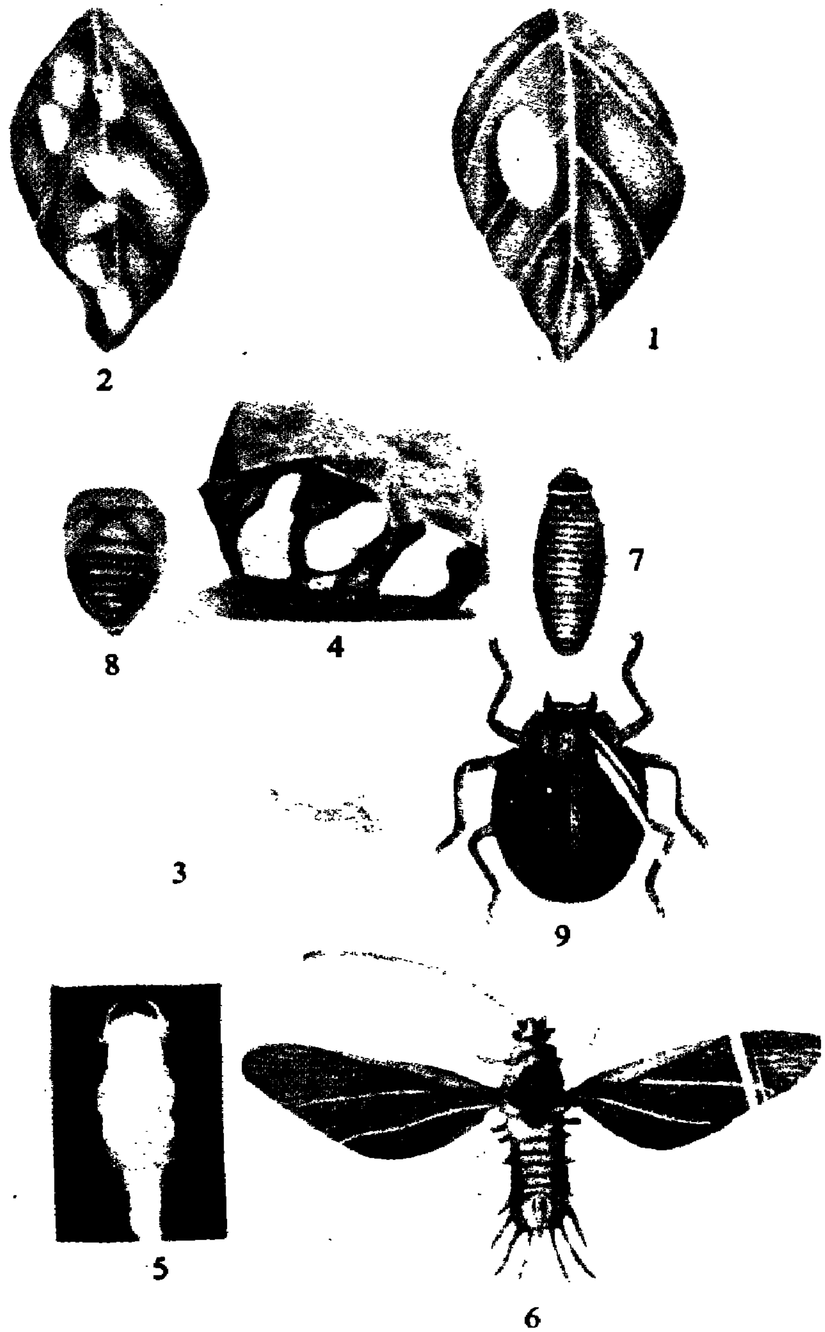
(*सम साउथ इंडियन इंसेक्ट्स,* प्लेट 25)



प्लेट-35—अनार तितली

1. अंडा 2. फल पर विद्यमान दो अंडे और वह छिद्र जिससे सूंडी अंदर गई 3. पुष्प पर दो अंडे 4. क्षतिग्रस्त फल और उस पर लगभग पूर्ण विकसित सूंडी 5. पूर्ण विकसित सूंडी का पृष्ठीय चित्र 6. कटा हुआ क्षतिग्रस्त फल और उसमें प्यूपा 7. प्यूपा 8. विश्राम मुद्रा में तितली 9. पंख फैलाये मादा तितली, दायीं ओर के पंख नर के हैं।

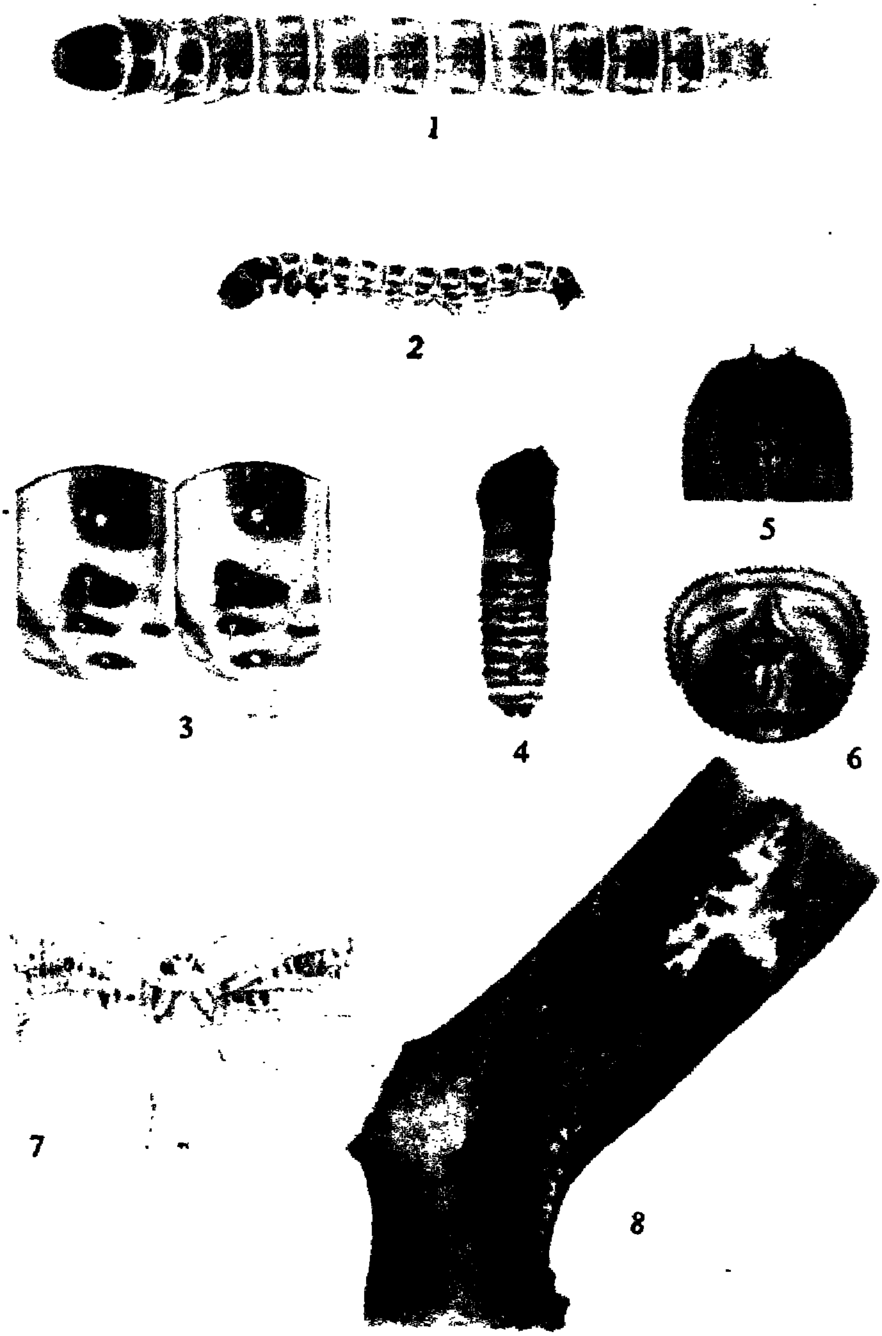
(*द्वितीय कीट विज्ञान बैठक की कार्रवाई*, पृष्ठ 232)



प्लेट-36—आम्र मीली बग

1. अंतिम निर्मोचन के पश्चात प्रौढ़ मादा 2. निम्फों की केंचुली (निर्मोक) 3. मादा की अंड पुटिका 4. एक ईंट के नीचे मादा अंडे दे रही है 5. नर प्यूपा 6. नर इमेगो 7. काक्सीनेलेड लार्वा 8. काक्सीनेलेड प्यूपा 9. काक्सीनेलेड पूर्ण कीट 10. ये भृंग (7,8,9 इस मीली बग का अक्सर शिकार करते हैं।

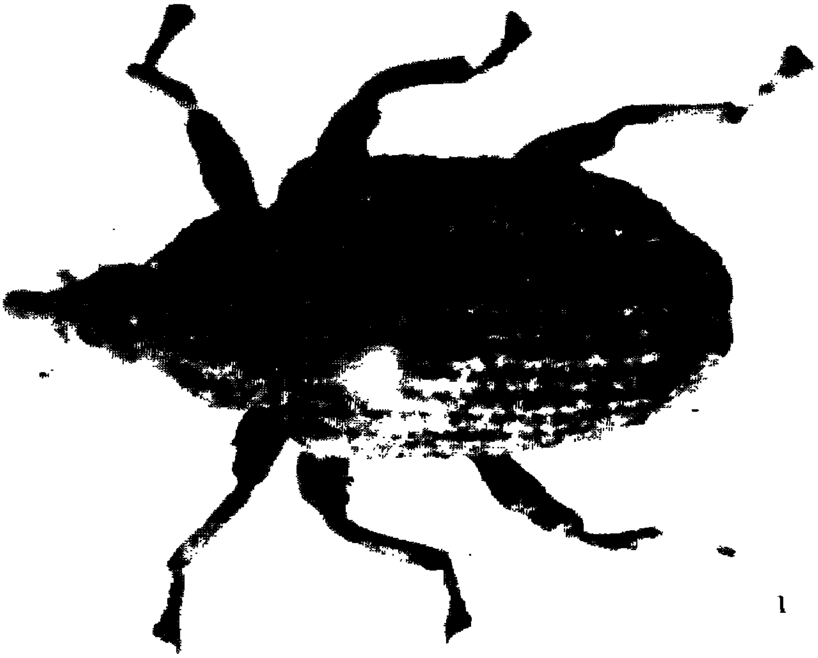
(इंडियन इंसैक्ट लाइफ, प्लेट 84, पृष्ठ 760)



प्लेट-37—छाल भक्षी सूंडी

1. और 2. पूर्ण विकसित लार्वा 3. लार्वा के द्वितीय और तृतीय उदर भाग 4. प्यूपा 5. प्यूपा की उदर सतह 6. प्यूपा का उदर शीर्ष 7. शलभ 8. जिस छाल को वह खाती है वहां किया स्राव और जाला

(*सम साउथ इंडियन इंसैक्ट्स*, पृष्ठ 453)



1



2

प्लेट-38—आम्र गुठली घुन

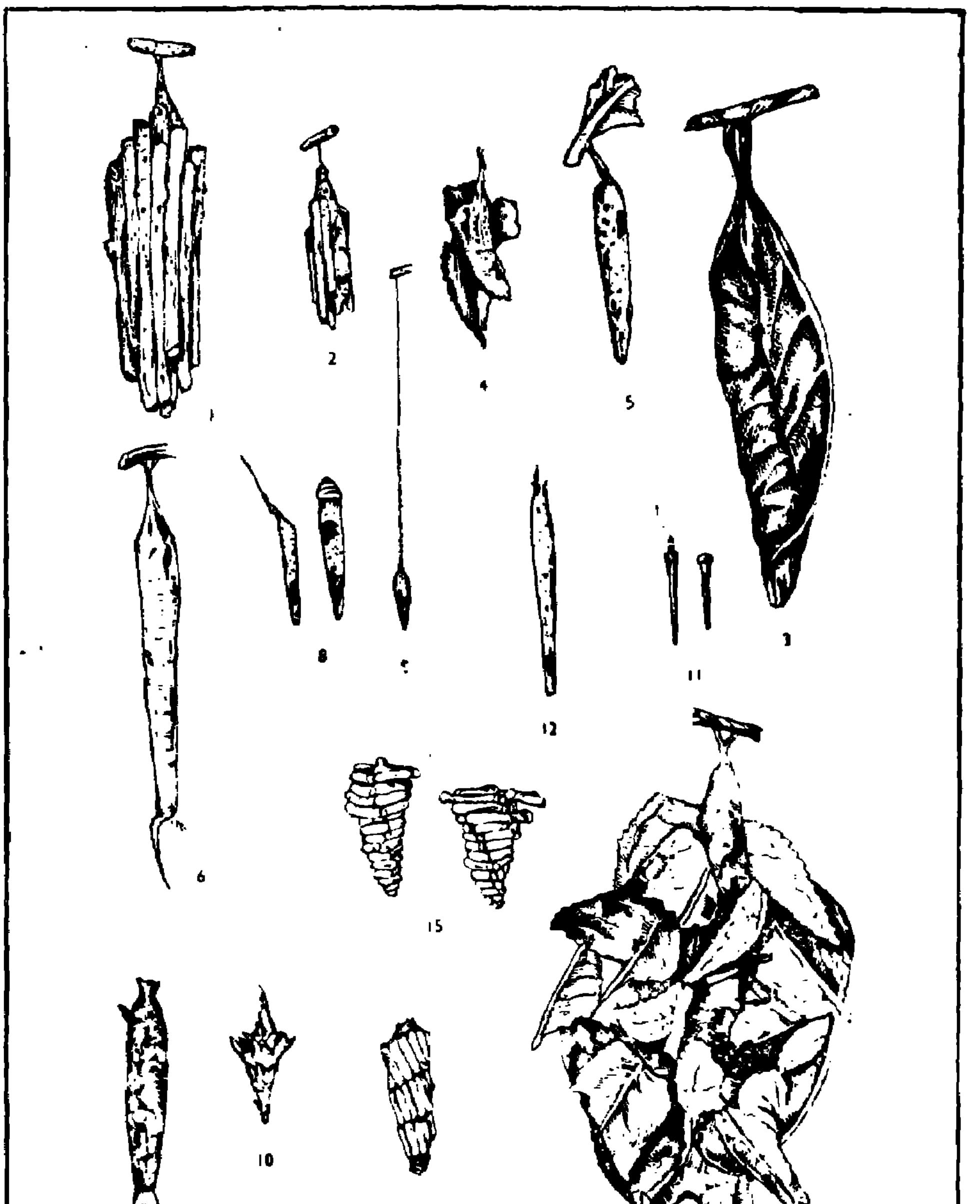
1. अप्रौढ़ 2. तीन लाक्षणिक धब्बों वाला आम्रफल (आम की सतह पर बनाये तीन घेरों द्वारा प्रदर्शित) जहां मादा घुन ने अपने अंडे दिए और स्राव से सुराख बंद कर दिए।

(सौजन्य : डा. एस.आर. बाघी, कीट विज्ञान विभाग, भा.कृ.अ.सं., नयी दिल्ली)



प्लेट-39—गुच्छा सूंड़ी

1. अंडा समूह 2. सूंडियों का गुच्छा 3. सूंडी 4. कृमिकोष 5. प्यूपा 6. नर शलभ 7. मादा शलभ
(चाय अनुसंधान संघ, टोकली प्रायोगिक केंद्र, ज्ञापन नं. 27, प्लेट 1)



प्लेट-40—लट (साइकिड्स)

1. *क्लैनिया क्रेमेरी* वेस्ट 2. *क्लैनिया डेस्ट्रक्टर* डज 3. *क्लैनिया सिक्किमा* मुरे 4. *क्लैनिया ऐंट्रेमी* हम्पूस 5. *क्लैनिया मोहंती* दास 6. *क्लैनिया वालोजेरी* हायल 7. *मैहासेना थीवोरा* डज 8. *मंटिसा प्लेना* वाकर 9. *टेरोमा प्लेजियोफ्लेप्स* हम्पूस 10. *मैनेथा ऐसामिका* बाट 11. *कैथोसाइक रीडी* वाट 12 *कैलीयोइड्स फेरेविट्रा* जोन 13. *डप्पुला टर्टियस* टेम्पल 14. स्पीरल फैगट कीट 15. *ओरोफोरा ट्रिआंगुलरस* दास

(उत्तर-पूर्व भारत में चाय के पीड़क और उनका नियंत्रण। चाय अनुसंधान संघ, टोकाली परीक्षण केंद्र, ज्ञापन न. 27)

11

बागानी फसलों के पीड़क

बागानी फसलों में पीड़कों के गहन ग्रसन और उनकी संख्या में कई गुणा वृद्धि के लिए उपयुक्त स्थितियां मिलती हैं। समय और स्थान दोनों ही प्रकार से बागान समीपस्थ हैं। चाय, काफी, नारियल आदि फसलें निरंतर चलने वाली होती हैं। समय के हिसाब से ये 50 वर्ष और उससे अधिक जारी रह सकती हैं और स्थान के हिसाब से ये इतनी गहन होती हैं कि शेष फसलें वहीं नहीं होतीं। पारिस्थितिक दृष्टिकोण से ये पीड़कों की संख्या को द्रुत गति से बढ़ाने में बहुत सहायक हैं और आर्थिक दृष्टि से, जैसा कि नारियल की फसल के बारे में कहा जाता है - एक बार लगाओ, पचास साल तक कमाओ। एक बार जब फल आने शुरू हो जाते हैं, फिर तो हर माह कई दशक तक फल आते रहते हैं। इसीलिए यदि एक बार बागान लगाने में गलती हो जाय तो उतने ही समय तक इसका परिणाम भुगतना पड़ता है। इससे बागानी फसल के उचित तरीके से लगाने और पारिस्थतिक परिणामों को समझने के महत्व का पता चलता है।

चाय बागानों के पीड़क

चाय बागानों को ऐसी कृषि क्रियाओं से गुजरना होता है जिनसे चयन के लिए अच्छे गूदेदार प्ररोहों का उत्पादन निरंतर बढ़ता रहे। यह कारण पीड़कों की संख्या बढ़ाने में भी सहायक होता है। यही कारण है कि बागानों में उग रहे पुराने चाय के पौधे जंगलों या चाय के बीज वाले बगीचों में उगे बीज के पौधों की अपेक्षा पीड़कों द्वारा अधिक ग्रस्त होते हैं। लेकिन यह भी सही है कि उपर्युक्त तथ्य को दृष्टि में रखते हुए चाय बागानों को जितनी अधिक क्षति होनी चाहिए, उससे कम होती है। इसका कारण यह है कि चाय के पौधे पर अन्य फसलों की अपेक्षा आदमी का ध्यान बहुत अधिक जाता है। चाय की पत्तियां नियमित अंतराल पर चुनी जाती हैं इसलिए यदि कोई समस्या उठ रही है तो वह बहुत समय तक अनदेखी नहीं रह सकती। चाय के पौधों की कटाई छंटाई भी समय समय पर होना लाभकारी है और इससे पीड़कों के नियंत्रण में भी मदद मिलती है। यह उल्लेख करना

दिलचस्प है कि चाय के एक गंभीर पीड़क मच्छर बग की ऐसी आदत बन गयी है कि वह अपने अंडे प्ररोह के निचले सिरे पर देता है जिसके ऊपर से चाय की पत्ती तोड़ी जा चुकी है। इस प्रकार पत्ती चुनने वालों की नजर से अंडे सुरक्षित रहते हैं। यह कीट द्वारा कृषि क्रिया की प्रतिक्रिया में उठाया गया कदम हो सकता है ताकि उनको सुरक्षा मिलती रहे। चाय बागान बहुत से परभक्षियों की बढ़वार के लिए भी अनुकूल स्थितियां प्रदान करते हैं, उनके यहां भारी संख्या में बड़े बड़े पीड़क खाने के लिए उपलब्ध हैं।

चाय अनुसंधान संघ, टोकलाई प्रायोगिक केंद्र द्वारा प्रकाशित जी.एम.दास की अंग्रेजी पुस्तक 'उत्तर पूर्व भारत में चाय के पीड़क और उनका नियंत्रण' (1965) में इस फसल के कोई 147 पीड़क कीटों का उल्लेख किया गया है। इनमें से केवल तीन पीड़कों का ही वर्णन इन पृष्ठों पर उपर्युक्त पुस्तक की जानकारी से दिया जा रहा है।

गुच्छा सूंडी

(ऐंड्रैका बाइपंक्टाटा वाकर*)*[1]

(प्लेट-39)

यह चाय का काफी व्यापक पीड़क है और बहुत खतरनाक है। दो इंस्टारों के पश्चात इसकी सूंडी अवस्था में एक विशिष्टता पैदा होती है और वे दिन के समय झुंडों में खाद्य पौधे की शाखाओं पर इकट्ठी हो जाती हैं। इसी आदत के आधार पर इसका नाम गुच्छा सूंडी पड़ा है। यह भारत, इंडोनेशिया, ताईवान और हिंदचीन में मिलती है।

प्रौढ़ अवस्था में यह पीड़क 40 से 50 मि.मी. पंख विस्तार वाला भूरे रंग का पतंगा होता है। अगले पंखों पर आरपार लहरदार रेखाओं के अतिरिक्त बाहरी किनारों के पास दो सफेद बिंदु होते हैं। पिछले पंखों का अग्रभाग धुंधले से रंग का होता है और पृष्ठ भाग भूरा होता है। इसकी शृंगि द्वि-कंघाकार होती है तथा सफेद रंग की शृंगिका पर गहरे रंग के दांत होते हैं। मादा (पतंगा) पीले से रंग के अंडे रेखीय झुंडों में पत्तियों की निचली सतह पर देती है। एक पतंगा 500 तक अंडे देता है। डेढ़ सप्ताह में अंडे में से लार्वा निकल जाते हैं और उनका रंग हल्का पीला होता है। पत्तियां खाना आरंभ करने से पहले लार्वा अपने अंडे के खोल को खाता है। तीन से चार सप्ताह के अंतराल पर पांच इंस्टार होती हैं। पूर्ण वर्धित लार्वा की लंबाई 50 से 65 मि.मी. होती है। शरीर की गहरी-भूरी पृष्ठ पर लंबवत और आरपार रेखाएं होती हैं। लार्वा की यूथी प्रवृति प्यूपा निर्माण तक रहती है। यही कारण है कि इनके प्यूपा भी गुच्छों में मिलते हैं। सूंडी प्यूपा निर्माण के लिए

1. *Andraca bipunctata* Walker

पौधे से उतर कर सूखे पत्तों और दूसरे कचरे में जाती है। प्यूपा का आकार लगभग 25 मि.मी. और रंग लाल-भूरा होता है। प्यूपा अवस्था दो से चार सप्ताह तक रहती है। भारत के उत्तर-पूर्वी प्रदेश में इसकी वर्ष में सामान्यतया चार पीढ़ियां जन्म लेती हैं।

इसके लार्वा पर एक मक्खी परजीवी और एक जीवाणु रोग का प्रकोप होता है तथा दोनों मिलकर इसकी संख्या को बहुत कम कर देते हैं। सूंडी की यूथ प्रवृति इसके जैविक नियंत्रण के लिए बहुत उपयोगी है। इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि चाय बागानों के भावी अध्ययनों से यह पता लगे कि सूंडियों और उसके प्यूपाओं का बड़े परभक्षी आराम से आहार करते हैं – यदि खाने में उनका स्वाद बहुत अरुचिकर न हो।

इस पीड़क के जीवनवृत का सबसे कमजोर पहलू इसका गुच्छों में रहना है। इस रूप में इसे आसानी से खोजा जा सकता है, एकत्र किया जा सकता है और नष्ट किया जा सकता है। यह पीड़क पत्तियों को काफी क्षति पहुंचाता है इसलिए इसका पता भी आसानी से लग जाता है। बड़े बड़े क्षेत्र वाले बागानों में इसका अच्छे दीर्घस्थायी कीटनाशक से भी नियंत्रण किया जा सकता है। इसमें सावधानी यह रखनी चाहिए कि कीटनाशक का अवशिष्ट पत्तियों पर बचा रह कर समस्या पैदा न करे।

लट (साईकिड्स)

(प्लेट-40)

इस समूह में वे कीट शामिल हैं जिन्हें कई नामों से जाना जाता है जैसे पूल शलभ (फैगट वर्म), स्यून शलभ (बैग वर्म), करंड शलभ (बास्केट वर्म) आदि। इन कृमियों का चयन इन पृष्ठों पर विवरण देने के लिए इसलिए किया गया है क्योंकि चाय बागानों के लिए ये काफी समस्या मूलक हैं और उनके जीवन के अनूठेपन से हर किसी का ध्यान इनकी ओर चला जाता है। इनके जीवन की कई विशिष्टताएं हैं जिनमें सबसे प्रमुख यह है कि लार्वा अवस्था में ये अपने ही बनाए कोष्ठों में रहते हैं। इन कोष्ठों को ये स्वयं के पैदा किये धागों और वानस्पतिक सामग्री से बनाते हैं। हर जाति की कोष्ठ बनाने की तकनीक भी भिन्न है और इसी के आधार पर इनका नामकरण हुआ है। उदाहरण के लिए जो शलभ बराबर आकार की नन्हीं टहनियों से कोष्ठ बनाते हैं, उन्हें 'पूल शलभ' कहते हैं क्योंकि कोष्ठ लकड़ियों के पूल का नमूना पेश करता है। इसी प्रकार 'स्यून शलभ' का कोष्ठ भिन्न रूप और डीलडौल वाले थैले जैसा होता है। 'करंड शलभ' अपना कोष्ठ आहार पौधे के पत्तों के बड़े बड़े टुकड़ों को जोड़कर बिल्कुल डलिया जैसा बनाते हैं।

इन कोष्ठों के द्वार पर अक्सर एक पटल होता है जिसके मध्य में सुराख रहता है। लार्वा अपने अगले हिस्से को इस द्वार से बाहर निकालता है और अपने कोष्ठ सहित आगे बढ़ता है। अपनी पिछली टांगों से यह कोष्ठ को पकड़े रहता है। यह पत्तियां खाता है तथा नयी पत्तियों की अपेक्षा पौधे के ऊपरी हिस्से की पुरानी पकी हुई पत्तियों को अधिक पसंद करता है। कई प्रजातियां पत्तियों की अपेक्षा पौधे के छिलकों को पसंद करती हैं। पौधे को सबसे अधिक हानि छंटाई के बाद होती है जब पीड़क छाल पर आक्रमण करता है। परिणामस्वरूप नयी रसदार पत्तियों के स्थान पर तना सूख जाता है और गंभीर प्रकोप होने पर पूरी की पूरी झाड़ी मर भी सकती है।

कीट विज्ञान की दृष्टि से मुख्य विशिष्टता यह है कि प्रौढ़ अवस्था में इसका नर पतंगा छोटा और मुलायम होता है जिसके पंख श्यामल होते हैं। शृंगिका बड़ी और कंघाकार पर सूंड नहीं होती है। मादा मात्र अंडों की थैली जैसी और पंखरहित होता है। मादा में मुश्किल से ही प्रौढ़ के कोई लक्षण दिखते हैं। यह प्रौढ़ की अपेक्षा क्रिसलिस अधिक नजर आती है। यह लार्वा कोष्ठ में रहना जारी रखती है। नर पतंगा मुश्किल से ही मिलता है, वह आमतौर पर धुंधलका होने के बाद ही बाहर निकलता है और मादा से लार्वा कोष्ठ में जाकर मिलता है। नर वहां मादा को गर्भिणी करता है और शीघ्र ही मर जाता है। गर्भ धारण के बाद मादा अपने कोष्ठ में ही अंडे देती है। कुछ मामलों में अलैंगिक जनन की भी सूचना है। प्रत्येक मादा काफी छोटे आकार के 500 से 1,000 अंडे देती है। एक तरह से यह कोई अंडों का बोरा खाली करने जैसा होता है। अंडे देने के बाद मादा सिकुड़ जाती है। अंड निक्षेपण के 10 से 15 दिन बाद लार्वा निकल जाते हैं। सूक्ष्म लार्वा मां के कोष्ठ से बाहर आते हैं और पत्तों के ऊतकों का भक्षण करते हैं। लार्वा की बनावट विशिष्ट होती है। उसका अगला हिस्सा चौड़ा और बड़ा होता है जबकि पश्च भाग फीते जैसा होता है जो प्रायः उठा रहता है। जब लार्वा छोटा ही होता है इसका प्रभावी वितरण आरंभ हो जाता है। शीघ्र ही यह अपने लिये एक विशिष्ट रक्षा कोष बनाता है जिसकी बनावट प्रजाति के अनुरूप होती है। लार्वा अवस्था 8 से 10 माह तक चलती है। पूर्ण वर्धित होने पर नर लार्वा किसी उपलब्ध टहनी से अपना कोष्ठ बंद करके एक मजबूत रेशमी धागे द्वारा लपेट कर मजबूती से बांध देता है। और उसमें यह सिर नीचा करके प्यूपा बनता है। कुछ सप्ताह की प्यूपा अवस्था के बाद लार्वा कोष्ठ के निचले सिरे से नर पतंगा बाहर निकलता है। मादा पतंगा लार्वा भी नर की भांति किसी टहनी से अपना कोष्ठ बांधकर निर्मोचन करता है और शेष समय वहीं बिताता है। लेकिन वह उसमें कृमि रूप में रहता है और उसके जननांग खुले रहते हैं।

भारत में लटों की बहुत सारी जातियां हैं, लेकिन चाय बागानों पर आक्रमण करने वाली जातियों को ही महत्वपूर्ण माना गया है। इनके नियंत्रण के लिए बेहतर है कि छंटाई

के तुरंत बाद इनके कोष्ठों का संग्रह करके नष्ट कर दिया जाय। संग्रह का समय सटीक होना चाहिए अन्यथा खाली कोष्ठ ही हाथ लगने की संभावना रहती है। रासायनिक नियंत्रण भी किया जा सकता है परंतु उसका उपयोग लार्वा निकलने के समय करना चाहिए। यह भी ध्यान रखें कि लार्वा नयी कोंपलों की अपेक्षा झाड़ियों के निचले भाग की पुरानी पत्तियों को खाना अधिक पसंद करता है इसलिए उनका उपचार भी अच्छी तरह करना चाहिए।

मच्छर बग

(हेलोपेल्टिस थीवोरा वाटरहाउस*)*[1]

(प्लेट-41)

श्रीलंका में एंटोनी डार्न द्वारा पाये गये एक कीट के लिए सन् 1858 में सिगनपट ने *हेलोपेल्टिस* वंश की स्थापना की। शीघ्र ही इस वंश ने मिरीडी कुल (कैप्सीडी) के अन्य किसी भी वंश की अपेक्षा बहुत अधिक प्रमुखता प्राप्त कर ली। इसका कारण यह था कि इसके कुछ सदस्य सिंकोना और कोको जैसी कई उष्ण कटिबंधीय नकदी फसलों के गंभीर पीड़क साबित हुए। इनमें से *हेलोपेल्टिस थीवोरा* वाटरहाउस जिसे आमतौर पर मच्छर बग के नाम से जाना जाता है, चाय बागानों के लिए अत्यंत घातक पीड़क कीट सिद्ध हुआ। इसके बारे में आरंभिक विस्तृत विवरण एच एच मान (1908) ज्ञापन, कृषि विभाग, भारत 1:275-337 के अनन्य सहयोग से उपलब्ध हुआ। हाल ही के वर्षों में इसका सापेक्षिक महत्व घटा है क्योंकि आधुनिक कीटनाशक दवाओं से इसे मारना अब काफी आसान हो गया है।

ये बग चाय की झाड़ियों के नव प्ररोहों और पत्तियों से रस पी लेते हैं। जिस छिद्र (बिंदु) से ये रस पान करते हैं, वहां पहले पीला स्थान बन जाता है और वहां पर एक बूंद तरल पदार्थ निकल आता है। बाद में इस स्थान का अंतिम छोर और मध्य बिंदु भूरे हो जाते हैं जो बाद में पूरे स्थान को भूरा कर देते हैं। फिर यह स्थान हल्का भूरा चकत्ता बन जाता है जो धीरे धीरे गहरा होते हुए पूरा काला पड़ जाता है। इस समय तक धब्बे की बुनावट कठोर और शुष्क हो जाती है। जब ऐसे कई चकत्ते पत्ती पर पड़ कर आपस में मिल जाते हैं तो सारी की सारी पत्ती काली और झुर्रीदार हो जाती है तथा अंततोगत्वा गिर जाती है। लेकिन मुसीबत यहीं खत्म नहीं होती। यह कुरंग प्ररोह के मध्य तक नीचे की ओर होना जारी रहता है और गंभीर मामलों में नये प्ररोह मर जाते हैं। जब एक प्ररोह मर जाता है तो दूसरा आता है, लेकिन इसका हाल भी वही होता है। बुरी तरह ग्रस्त पौधों में शाखाओं पर काले प्ररोह झाड़ू से लगते हैं तथा पौधा ऐसा लगता है जैसे आग

1. *Helopeltis theivora* Waterhouse

से झुलस गया हो। यही वजह है कि इस समस्या को 'चाय का मच्छर झुलसा' भी कहते हैं। अन्य वर्गों की भांति यह भी निम्फ और प्रौढ़ दोनों ही अवस्थाओं में पौधे को क्षति पहुंचाता है।

इस पीड़क का प्रसार भारत, इंडोनेशिया और हिंदचीन तक है। प्रौढ़ बग तेजी से उड़ान भरने में सक्षम होता है। कीट पतला-सा 6 से 8 मि.मी. लंबा, पीले-भूरे सिर और उदरवाला, गहरी-लाल ग्रीवा और गहरे लंबे उपांगों का होता है। अग्रवक्ष में बड़ा-सा सींग होना इसका विशेष लक्षण है। इसके लंबवत और तश्तरीनुमा अंडे भी विशिष्ट होते हैं। इनसे दो तंतु से बाहर निकले होते हैं कीट उन पौध ऊतकों से बाहर निकलते रहते हैं जहां मादा अंडे देती है। व्यावहारिक रूप से अंडे पौधे के हर कोमल भाग में तथा कभी कभी तोड़े हुए प्ररोहों के टूटे सिरों पर भी दिये जाते हैं। तोड़े हुए प्ररोहों पर अंडे देने की इस आदत से अंडे सुरक्षित रहते हैं क्योंकि चुंटाई करने वालों द्वारा हटाने की संभावना बहुत कम होती है। अंडा पकने की ऊष्मायन अवधि में भिन्नता मिलती है। (5 से 27 दिन)। अंडे से निकले नव निम्फों की आकृति उनके उपांगों के कारण मकड़ी के समान प्रतीत होती है। प्रौढ़ बनने से पूर्व इनका पांच बार निर्मोचन होता है। एक पीढ़ी को पूरा होने में लगने वाला समय भी अलग अलग होता है। जहां जून में यह अवधि दो सप्ताह होती है, सर्दियों में 8 या इससे भी अधिक सप्ताह लग सकते हैं। प्रौढ़ अच्छा उड़ाका तो होता ही है, इसे हवा भी अपने साथ काफी दूर तक ले जाती है। दरअसल यह बहुत तेज हवा से बचने का प्रयास करता है। वायु वाहित पीड़कों के कारण इसका अचानक प्रकोप देखने में आ सकता है। इस पीड़क के कई एकांतर परपोषी पौधे हैं।

अच्छे स्पर्श कीटनाशी के द्वारा इस पीड़क का नियंत्रण अब बहुत आसान है।

इसके नियंत्रण में आजकल जो समस्या सामने आती है, वह सिर्फ आयोजन को लेकर है कि समय पर साधन और व्यक्ति उपलब्ध हों। इसके लिए कौन-सा कीटनाशक उपयोग किया जाय, यह इस बात पर निर्भर है कि विभिन्न कीटनाशकों की सह्यता सीमा क्या है।

नियंत्रण समय सूची के संबंध में सुझाव

चाय बागानों में ग्रसन फैलाने वाले अनेक पीड़क हैं जिनमें मच्छर बग सर्वाधिक पीड़कारी समझा जाता था। अब बहुत प्रभावशाली कीटनाशकों के विकास के कारण अन्य बगों की तरह यह बग भी काफी नियंत्रण में है। वास्तव में, ऐकेरसनाशी का प्रभाव कीटनाशी से धीमा होता है, इसलिए चाय बागानों में महत्व की दृष्टि से प्रथम स्थान लाल मकड़ी माइट और अन्य पीड़क माइटों को जाता है। प्रत्येक पहलू को ध्यान में रखते हुए चाय बागानों में पीड़क नियंत्रण की व्यूह रचना बनाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

(क) कीटनाशी रसायनों के अवशिष्ट बचे रहने की समस्या सबसे महत्व की है। चूंकि चाय की पत्ती का सत्व काम में आता है, इसलिए उसमें यदि कीटनाशक रसायनों के अवशिष्ट बचे रहते हैं तो वे मानव उपयोग के लिए हानिकर हैं। बहुत से चाय आयात करने वाले देशों ने इस संबंध में कठोर नियम बना रखे हैं।

(ख) चाय का स्वाद महत्वपूर्ण है और उसका बहुत ध्यान रखना पड़ता है। यदि चाय की पत्ती में कोई विकृति है तो यह व्यवसाय को बुरी तरह प्रभावित करती है।

(ग) दूसरी ओर ऐसे बहुत से पीड़क हैं, जिन्हें नष्ट करने के लिए दीर्घस्थायी कीटनाशक की आवश्यकता होती है।

(घ) सौभाग्य से ऐसे भी बहुत-से गंभीर पीड़क हैं, जिनका मानवीय विधियों द्वारा नियंत्रण बहुत व्यावहारिक है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए नियंत्रण उपाय निम्नलिखित विधियों से आयोजित किये जा सकते हैं :

1. विभिन्न विधियों के आसानी से उपलब्ध कीटों के संग्रह और नष्ट करने हेतु समय समय पर अभियान चलाये जायें। उदाहरण के लिए इस प्रकार के अभियान से गुच्छा सूंडी, पत्ती वेल्लन, पत्ती पर जाला बनाने वाले, नीड़ सूंडी, पूल सूंडी, कुंडलक, झींगा सूंडी और अन्य कई प्रकार के पत्ती भक्षी लार्वा को एकत्रित करके नष्ट किया जा सकता है। एक ही अभियान में उन सारे पीड़कों का संग्रह किया जा सकता है, जो उस समय विद्यमान हैं। यदि ऐसे अभियानों को थोड़े थोड़े अंतराल पर सामयिक और उचित तरीके से किया जाय तो कीटनाशक दवाओं के उपयोग की जरूरत नहीं रहेगी।

2. ऐकेरीन पीड़कों की अपेक्षा कीट पीड़क की आदतें अपेक्षाकृत अनेक प्रकार की होती है और इनमें से बहुत-से ऐसे सुरक्षित स्थानों पर रहते हैं कि कीटनाशकों के प्रभाव से बचे रहते हैं। इसलिए उनके लिए दीर्घस्थायी (स्थायी प्रभाव वाला) कीटनाशक चाहिए। इसके लिए ऐसे दीर्घस्थायी कीटनाशक का उपयोग करना चाहिए जिसका अवशिष्ट प्रभाव कम से कम हो। कार्बरिल और एंडोसल्फान जैसे रसायन अब उपलब्ध हैं जो इन जरूरतों को काफी हद तक पूरा करते हैं।

3. लाल मकड़ी माइट और अन्य पीड़क माइट बाह्य अशनकारी करते हैं, इसलिए अच्छे स्पर्श ऐकेरसनाशी से इसका नियंत्रण किया जा सकता है। हम किसी टिकाऊ ऐकेरसनाशी के स्थान पर ऐसे रसायन का प्रयोग कर सकते हैं, जिसका अवशिष्ट प्रभाव तुरंत खत्म हो जाय।

इसलिए अपनी योजना इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि पीड़क कीटों को उनकी आरंभिक अवस्था में ही खत्म किया जा सके। पहला प्रयास तो यथासंभव उनके संग्रह द्वारा नष्ट करने का होना चाहिए तथा ऐकेरीन कीटों के विरुद्ध कम टिकाऊ ऐकेरसनाशी

रसायन का उपयोग करें। यदि फिर भी जरूरत पड़े तो कम से कम अवशिष्ट प्रभाव वाले दीर्घस्थायी कीटनाशकों का उपयोग करना चाहिए।

कॉफी बागानों के पीड़क

भारत में एक दर्जन से अधिक कॉफी के पौधे के पीड़क पाये जाते हैं। यहां कोलियोप्टेरा गण के दो मुख्य और दिलचस्प पीड़कों का वर्णन किया जा रहा है।

श्वेत तना बेधक

(जाइलोट्रेंकस क्वेड्रिपेस शैवरोलट*)*[1]

सीराम्बाईसीडी कुल का यह लांगी कोर्न भृंग लंबी शृंगिका वाला होता है, जिसका आधार आंखों पर होता है। कॉफी पौधे पर आक्रमण करने वाली इस जाति पर कोई सन् 1838 से चर्चा और जांच चल रही है क्योंकि यह इसका सबसे विनाशकारी पीड़क है। यह भारत, बर्मा, श्रीलंका, इंडोनेशिया और फिलीपींस में मिलता है। एरेबिका नामक प्रजाति का पौधा इसका सर्वाधिक परपोषी है। भारत में यह पौधा सन् 1600 के आसपास लाया गया था। यह एक साधारण देशी जाति का उदाहरण है जो एक कृष्ट पौधे पर प्रचुरता से मिलता है। इस पौधे पर यह भली प्रकार प्रजनन करता है और इस प्रकार गंभीर पीड़क बन गया है। इसका लार्वा तने में छेद करता है। नये नये पौधे इस पीड़क के शिकार बनते हैं और कई बार पूरी तरह खत्म हो जाते हैं। पुराने पौधों को भी गंभीर हानि पहुंचती है। ग्रस्त शाखाएं सूख जाती हैं और आसानी से टूट जाती हैं। गंभीर ग्रसन फैलने पर साल दर साल बागान का काफी क्षेत्र इसकी पकड़ में आता जाता है और एक समय ऐसा आता है कि पूरा बागान या तो छोड़ देना पड़ता है या दुबारा पौध रोपण किया जाता है।

इस काले भूरे प्रौढ़ भृंग की लंबाई 1 सें.मी. से थोड़ी अधिक होती है। इसके पक्षकोष्ठ के आरपार तीन जोड़ी हल्की पीले रंग की पट्टियां होती हैं। यह अपेक्षाकृत नये पौधों के मुख्य तनों या प्राथमिक शाखाओं की छाल में दरारों या ओट में अंडे देता है। लगभग 10 दिन में अंडे में से लार्वा निकल आते हैं। लार्वा पहले छाल खाता है और फिर काष्ठ ऊतकों को विभिन्न दशाओं में खाकर गलियारे बनाता रहता है। यह क्रिया 10 माह तक जारी रहती है। पूर्ण वर्धित लार्वा की लंबाई लगभग 1.5 सें.मी. होती है और सिर तथा ग्रीवा अपेक्षाकृत बड़े हाते हैं जबकि उदर शुंडाकार जैसा होता है। प्यूपा निर्माण से पूर्व यह भावी प्रौढ़ के बाहर निकलने के लिए गोल निकास छिद्र काटता है। निकास छिद्र के

---

1. *Xylotrechus quadripes* Chevrolat

निकट, तने के अंदर इसका प्यूपा बनता है। प्यूपा अवस्था एक माह चलती है, जिसके बाद प्रौढ़ निकलता है और अगली पीढ़ी का निर्माण होता है।

ऊपर दिये विवरण से यह पता चलता है कि साल में केवल एक ही पीढ़ी पूरी हो सकती है। फिर भी प्रौढ़ के निकलने और उड़ान के लिए दो भिन्न भिन्न अवधियां होती हैं। एक अप्रैल से मई और दूसरी सितंबर से दिसंबर तक। इन ऋतुओं में भृंग को उड़ान और अंड-निक्षेपण के लिए सूखा व ऊष्ण और दीप्त मौसम अधिक लुभाता है।

पीड़क के जीवनवृत से यह स्पष्ट है कि अधिकतर क्षति लार्वा अवस्था के द्वारा होती है और वह अपने जीवन का अधिकतर हिस्सा इस तरह बिताता है कि वह कीटनाशक के छिड़काव व चूर्ण की पहुंच के बाहर होता है। अंडा और प्रौढ़ अवस्थाएं बाहर मिलती हैं लेकिन अंडों के लिए कोई प्रभावी विष उपलब्ध नहीं है क्योंकि प्रौढ़ एक पौधे से दूसरे पौधे पर उड़ते रहते हैं। इन विशिष्ट लक्षणों को ध्यान में रखते हुए इस पीड़क के नियंत्रण के लिए आगे दिया गया कार्यक्रम अपनाना चाहिए।

(क) तना बेधक द्वारा प्रभावित प्ररोहों की पहचान, एकत्रीकरण तथा विनाश :
पीड़क द्वारा ग्रस्त प्ररोहों की छाल पर बहुधा कई उभरी हुई रेखाएं होती हैं। इनको खुरचने से बेधक की सक्रियता का आसानी से पता चल जाता है। अतः इस यांत्रिक नियंत्रण का प्रौढ़ों के निकलने से पहले ही नियमित रूप से प्रयोग करना चाहिए। इस उपचार को बाद में करने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि जब तक प्रौढ़ निकल चुके होंगे और उन ग्रस्त प्ररोहों को जो पीड़क के लार्वा और प्यूपा रहित हैं, नष्ट करना बेकार है।

(ख) प्ररोह की सतह का एक शक्तिशाली दीर्घस्थायी कीटनाशक द्वारा उपचार जिससे प्रौढ़ अंडे देने से पहले ही मर जायें। यह उड़ान भरने के समय के आसपास ही करना चाहिए जिससे हाल ही में निकले प्रौढ़ों पर इसका असर प्रभावशाली हो। सही समय की जानकारी प्यूपा की अग्रिम अवस्था, जिसमें से शीघ्र ही प्रौढ़ निकलने वाले हैं, के प्रतिरूपी सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त की जा सकती है। कीटनाशक फुरेरी द्वारा लगाया जा सकता है।

छिद्र बेधक

(जाइलोसैंड्रस काम्पैक्टस ईक.)[1]

इस पीड़क का वर्णन *जाइलेबोरस मोर्सटेटी* हेगड[2] के अंतर्गत भी मिलता है। इसके सामान्य नाम का आधार यह है कि सामान्यतौर पर यह कॉफी के पौधे की सामान्यतया तृतीयक टहनियों की निचली ओर के छिलके में बहुत सारे सूक्ष्म छिद्र कर देता है। तना बेधक के

1. *Xylosandrus compactus* Eichh.
2. *Xyleborus morstatti* Hgdn.

विपरीत यह कीट रोबस्टा कॉफी को ही पसंद करता है और उसका यह गंभीर पीड़क है। प्रौढ़ और लार्वा दोनों ही छाल में गलियारे बनाते हैं जिससे पत्ते गिरने लगते हैं। प्रभावित प्ररोह मुरझाकर सूख जाता है। छिद्रों के आसपास की जगह का रंग विकृत हो जाता है। कई बार रोग संक्रमण जनक भी हो जाता है, जिससे प्रभावित प्ररोह की मृत्यु और शीघ्र होती है।

यह कीट अत्यंत दिलचस्प है। यह *एंब्रोसिया* भृंग समूह का है जिसके लार्वा कुछ विशिष्ट प्रकार की कवक परतों में पलते हैं। इस कवक आहार को एंब्रोसिया कहते हैं। मादा भृंग अपने मल और अन्य पदार्थों से सावधानीपूर्वक एक परत तैयार करती है जिस पर कवक बनता है। जिस तरीके से एक पौधे से दूसरे पौधे तक कवक निवेश द्रव्य ले जाया जाता है, वह बहुत दिलचस्प है और भिन्न भिन्न जातियों में भिन्न भिन्न है। अपने यौन संबंधों और सामाजिक आदतों के कारण ये भृंग बहुत दिलचस्प हैं। इनमें ऐसी प्रजातियां हैं जो स्वच्छंद यौन संबंध रखती हैं यानी कीट का संबंध कई अनजान कीटों के साथ हो सकता है। ऐसी जातियां हैं जिनमें कई के साथ संबंध तो रहता है, लेकिन वे कुछ ही से संबंध रखते हैं और ऐसी जातियां भी हैं जिनमें एक का संबंध एक से ही रहता है। आर्थिक दृष्टिकोण से इन्हें सामान्यतया छाल भृंग (स्कॉलिटिडी) कहा जाता है जो वनवासियों के लिए बहुत चिंता पैदा करता है।

प्रौढ़ावस्था में यह गहरे भूरे रंग का छोटा बेलनाकार भृंग होता है। यह छाल की तृतीयक शाखाओं को बेधकर उनमें गलियारे बनाता है और वहां अंडे देता है। एक कीट 50 या उससे भी अधिक तक अंडे देता है। एक सप्ताह से कुछ अधिक समय में अंडे में से अपाद (पैर रहित) सफेद लार्वा निकलता है। प्रौढ़ द्वारा गलियारों की अंदरूनी लाइनों में विकसित एंब्रोसिया पर लार्वा आहार ग्रहण करता है। लार्वा अवस्था कोई तीन सप्ताह तक रहती है। लार्वा गलियारों के हल्के-से बड़े स्थान पर प्यूपा कोष में प्यूपा निर्माण होता है। यह भावी प्रौढ़ के निकास छिद्र से सटा रहता है। प्यूपा अवस्था करीब डेढ़ सप्ताह की होती है। इस प्रकार पर्यावरण तापमान के आधार पर इसका पूरा जीवनचक्र पांच से छह सप्ताह तक चलता है।

वर्ष में इसकी कई पीढ़ियों के जन्म लेने और अपेक्षाकृत लघु जीवनचक्र के कारण प्रायः जल्दी जल्दी यह गंभीर प्रकोप पैदा करता है। ऐसे शत्रु के विरुद्ध युक्तिसंगत उपाय यह है कि जैसे ही मौसम के दौरान इसका ग्रसन नजर आये, प्रभावित प्ररोहों को काटकर नष्ट कर देना चाहिए। किसी तेज और दीर्घस्थायी कीटनाशक द्वारा भी पौधे का पूरी तरह उपचार करना चाहिए। कीटनाशक स्पर्श और उदर विष दोनों प्रभाव वाला होना चाहिए। इसका सुरक्षात्मक और उपचारात्मक दोनों रूपों में उपयोग संस्तुत है। इस पीड़क के विरुद्ध पारिस्थितिक उपाय यह है कि पौधों पर यथासंभव हल्की छाया करनी चाहिए। पानी की

अच्छी निकासी और मृदा में अच्छे पोषक तत्वों की प्रचुरता से इस पीड़क के प्रति पौधे में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

नारियल बागानों के पीड़क

विश्व के नारियल पैदा करने वाले क्षेत्रों में लगभग 750 से अधिक कीटों की सूचना है। इनमें से 100 से अधिक भारत में हैं। नीचे जिन दो पीड़कों के बारे में बताया गया है वे भारत के नारियल उत्पादकों को बहुत बेचैन करते हैं।

गैंडा भृंग

(ओरिक्टीज़ राइनोसेरॉस लिनायस)[1]

(प्लेट-42)

यह नारियल फल के भयानक पीड़कों में से है और व्यवहार में विश्व भर के नारियल उत्पादक क्षेत्रों, जैसे भारत, श्रीलंका, मलेशिया, बर्मा, इंडोनेशिया, फिलीपींस आदि में पाया जाता है। इस शताब्दी के प्रथम दशक में यह प्रशांत महासागरीय द्वीपों में आया। भारत में यह अनुभव किया गया है कि प्रतिवर्ष प्रति वृक्ष कम से कम एक स्थूलमंजरी (स्पेथ) नष्ट होती है जबकि एक स्वस्थ पाम से प्रतिवर्ष 10 स्थूल मंजरियां निकलती हैं। कई बार इस पीड़क के आक्रमण के कारण नये पौधे मर जाते हैं। इस पीड़क के कारण प्रशांत महासागर के कुछ द्वीपों में 50 प्रतिशत तक पौधे मर जाते हैं।

गैंडा भृंग नामक यह पीड़क केवल प्रौढ़ अवस्था में ही नुकसान पहुंचाता है, जो नारियल वृक्षों के शिखर पर भोजन लेता है। इसका लार्वा फल से गिरे जैव पदार्थों से आहार प्राप्त करता है। प्रौढ़ काले रंग का 35 मि.मी. से 50 मि.मी. तक लंबा और 14 से 21 मि.मी. तक चौड़ा काफी बड़ा भृंग होता है। इसके सिर पर एक बड़ा-सा सीधा खड़ा सींग होता है और इसीलिए इसका नाम गैंडा भृंग पड़ा है। उदर की सतह का रंग लाल-भूरी आभा का होता है। यह नारियल के शिखर पर लगे पत्तियों के केंद्रीय चक्र को बुरी तरह खाता है और जब यह चक्र खुलता है तो उसमें कटे हुए पत्ते के गुच्छे ऐसे निकलते हैं जैसे उन्हें कैंची से काटा गया हो। कई बार पौधे का वृद्धि अंग क्षतिग्रस्त हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप पूरा पौधा ही मर जाता है। इस तरह की क्षति से आगे और कवकीय तथा जीवाणुक संक्रमण फैलता है।

मादा भृंग गोबर के ढेर, सड़ी हुई वनस्पति सामग्री तथा नारियल और अन्य

---

1. *Oryctes rhinoceros* Linnaeus

पौधों के गिरे हुए तनों और कचरों में अंडे देती है। एक कीट औसतन 100 के लगभग अंडे देता है। अंडों का आकार काफी बड़ा (2.5 x 3.5 मि.मी.) होता है जो विकास के दौरान और फूलता है। एक से दो सप्ताह के बाद इनमें से लार्वा निकलते हैं। उस समय इनकी लंबाई 7 मि.मी. होती है। जहां इनका जन्म होता है, ये उसी सामग्री को शुरू में खाते हैं। पूर्ण वर्धित लार्वा गोल मटोल और मांसल होता है। यह धनुषाकार-सा रहता है जिसमें पीठ ऊपर को उठी रहती है और उत्तलता उसकी पृष्ठ सतह पर होती है। कई बार यह वक्रता इतनी बढ़ती है कि इसका रूप अंगूठी जैसा हो जाता है तथा सिर और पूंछ एक दूसरे को छूने लगते हैं। पूरी लार्वा अवस्था में तीन इंस्टार होते हैं। लार्वा अवस्था ढाई से छह महीने से भी अधिक तक चल सकती है। प्यूपा निर्माण के लिए लार्वा उस सामग्री की गहराई में जाता है जिसे वह खा रहा होता है। गहराई इस बात पर निर्भर होती है कि प्रजनन सामग्री में आर्द्रता तत्व कितना है और वातवरणीय आर्द्रता कितनी है, ताकि शुष्कता से बचा जा सके। कभी कभी तो प्यूपा निर्माण 120 सें.मी. की गहराई तक में होता है। लार्वा प्यूपा कोष का निर्माण करता है ताकि बाद में प्यूपा इसमें पीठ के बल आराम से रह सके। प्यूपा कोष को क्षति पहुंचाने से प्यूपा की मृत्यु हो जाती है। प्यूपा का रंग भूरा होता है और आकार 50 से 70 मि.मी. तक। प्यूपा अवधि दो से चार सप्ताह तक रहती है। प्यूपा कोष से निकलने के बाद भी भृंग कृमिकोष में लगभग 11 दिन तक रहता है और उसके बाद ही मृदा से बाहर आता है। बाहर निकलते समय प्रौढ़ मुलायम जीव होता है। शुरू में इसका रंग हल्का भूरा होता है जो बाद में गहरा भूरा होकर अंत में काला हो जाता है। प्रकट होने के तीन से नौ सप्ताह बाद प्रौढ़ अंडा देना आरंभ करता है।

इसके प्राकृतिक शत्रु भी बहुत हैं। यदि ये न होते तो इसके द्वारा पहुंचाई गई क्षति बहुत होती। इसके शत्रुओं में रोगजनक, परजीवी कीट और परभक्षी कीट तो हैं ही, साथ ही मेंढक, टोड, चिड़िया, सूअर, चूहे, गिलहरी आदि भी हैं। प्रौढ़ और अपूर्ण दोनों अवस्थाओं में इसका आकार इतना बड़ा होता है कि बड़े जीवों के लिए भी इसे खोजकर शिकार करना लाभदायक है। इसके परभक्षी जीवों के कारण इसकी संख्या और भी सीमित रहती, लेकिन इसका लार्वा और प्यूपा जमीन में और ढेरों के भीतर गहरे तक पहुंचकर पर्याप्त सुरक्षा में रहता है।

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि पीड़क अंडे से लेकर प्यूपा बनने तक खाद के ढेर या अन्य कचरे में रहता है, यह युक्तिसंगत होगा कि नारियल बागानों में उचित स्वच्छता रखी जाय और वहां कूड़े-कचरे के ढेर कहीं भी न होने दिये जायें। इन्हें एकत्र कर कंपोस्ट खाद बनाई जा सकती है पर बीच बीच में दीर्घस्थायी कीटनाशक से इसका उपचार करना भी जरूरी है। इस विधि से इनके प्रजनन क्षेत्र को ही सीमित नहीं रखा जा

सकेगा बल्कि ऐसे स्थान जाल के रूप में भी काम करेंगे क्योंकि अंडे देने के लिए पीड़क उधर आकर्षित होंगे। गैंडा भृंग के नियंत्रण के लिए ऐसे प्रजनन जालों की सिफारिश एक अच्छा उपाय है, पर इसमें शर्त यह है कि शेष इलाका साफ सुथरा रहे। यदि ऐसा नहीं होगा तो यत्र तत्र बिखरे कूड़े कचरे में इनका प्रजनन चलता रहेगा और समस्या से निपटना मुश्किल हो जायेगा।

जब तक उपयुक्त विधि से पूरे बागानी क्षेत्र में साफ सफाई रखना मुश्किल हो तब तक व्यक्तिगत स्तर पर बागान मालिकों के लिए यह सिफारिश की जाती है कि वे शिखर पर भोजन करते समय प्रौढ़ों को पकड़ लें। एक विशेष प्रकार की धातु की 75 से.मी. लंबी सलाख होती है जिसके एक सिरे पर छल्ला और दूसरे पर हुक (आंकड़ा) लगा रहता है। अनुभव से यह संभव है कि इस हुक को शिखर में इस तरह फंसाया जाय कि वह भृंग के शरीर में घुस जाय जिसे बाद में खींचकर नष्ट कर दिया जाय। ऐसे बहुत से लोग हैं जो पेड़ पर चढ़कर शिखर पर इस हुक को लगाते हैं और बाद में भृंग को उपर्युक्त विधि से नष्ट कर दते हैं। इनका पारिश्रमिक भी थोड़ा ही होता है। भृंग को हटाने के बाद उस स्थान को उपयुक्त कीटनाशी के साथ मिट्टी के मिश्रण से भर दिया जाता है। इसी मिश्रण को अप्रभावित पौधे की पत्तियों के उद्‌गम स्थान पर भर दिया जाता है ताकि जब भृंग वहां आयें तो उसके संपर्क में आकर मर जायें।

कलमुंही सूंडी

(निफैन्टिस सेरीनोपा मेरिक*)*[1]

(प्लेट-43)

इस पीड़क का लार्वा नारियल के पत्तों की भरपूर चटाई करता है जिसके परिणामस्वरूप पर्णवृंतों को इतनी क्षति पहुंचती है कि पूरा वृक्ष शक्तिहीन हो जाता है, जिससे उपज बुरी तरह प्रभावित होती है। कभी कभी आने वाले व्यक्ति को भी इस पीड़क से प्रभावित बागान का दृश्य अत्यंत निराशाजनक लगता है।

इस जाति का विवरण भारत के सभी नारियल उत्पादक क्षेत्रों, बर्मा और श्रीलंका में मिलता है। नारियल के अलावा यह कृष्ट और जंगली दोनों प्रकार के ताड़ों पर भी आक्रमण करता है। उपलब्ध सूचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान सदी के आरंभ से ही यह पीड़क गंभीर नुकसान करता रहा है।

प्रौढ़ अवस्था में यह पीड़क *क्रिप्टोफैसिडी* कुल का मध्यम आकार का पतंगा है।

---

1. *Nephantis serinopa* Meyrick

इसके शरीर की लंबाई 10 से 15 मि.मी. और पंख विस्तार 20 से 25 मि.मी. है। पंखों का रंग हल्का धूसर होता है तथा अगले पंखों पर कुछ काले निशान भी मिलते हैं। इनमें लैंगिक द्विरूपता काफी स्पष्ट होती है। नर के पश्च पंखों में पश्च मूल पर बालों का गुच्छा होता है। क्रियाकलापों में ये निशाचर हैं, लेकिन अन्य बहुत से शलभों के विपरीत ये प्रकाश के प्रति आकर्षित नहीं होते। इनकी गतिविधियां शाम के धुंधलके के बाद कुछ ही अवधि तक सीमित हैं। दिन के समय ये या तो वृक्ष के तने पर अथवा पत्तों के गिरे हुए ढेरों में विश्राम करते है।

अंडे आमतौर पर अपेक्षाकृत पुराने पत्तों की नोक पर दिये जाते हैं और वे इतने अस्पष्ट रहते हैं कि सहज ही पता नहीं चलता। एक शलभ अधिक से अधिक 250 अंडे दे सकता है पर औसत इससे आधा रहता है। ताजे अंडों का रंग क्रीम जैसा होता है और भ्रूण विकास के बाद गुलाबी हो जाता है। अंडे की ऊष्मायन अवधि (इन्क्यूबेशन पीरीयड) एक सप्ताह से कुछ कम होती है।

अंडे से निकलते समय लार्वा की लंबाई 1.5 मि.मी. होती है और प्यूपा अवस्था आने तक यह दस गुणा बढ़ जाता है। जैसा कि इसके प्रचलित नाम से पता चलता है, लार्वा का सिर काले रंग का होता है। शेष शरीर का रंग आरंभ में हल्का सफेद और अंत में, हल्का हरा हो जाता है। इसके शरीर पर पांच भूरी धारियां होती हैं, जिनमें एक पृष्ठ पर और दो दो पार्श्व बगलों पर। लार्वा आरंभिक अवस्था से ही खूब खाऊ होता हैं लेकिन खाना आरंभ करने से पहले यह पत्ते पर एक रेशमी गलियारा बनाकर इस गलियारे के अंदर पत्ते के ऊतकों को खाता है। इसके बाद जैसे जैसे लार्वा का आहार बढ़ता है, इस गलियारे में पत्ते के टुकड़े जुड़ते जाते हैं और यह काफी बड़ा हो जाता है।

लगभग छह सप्ताह में लार्वा का पूर्ण विकास हो जाता है और वह अब प्यूपा पूर्व की अपेक्षाकृत शिथिल अवस्था में प्रवेश करता है। इस समय यह बहुत कम खाता हैं और अपने लिए प्यूपा कोष बनाता है। यह प्यूपा कोष लार्वा-गलियारे के एक कोने में निर्मित किया जाता है। इस प्यूपा कोष में इसकी कोषावस्था बनती है और प्यूपा निर्माण के लगभग 12 दिन बाद शलभ निकलता है।

कलमुंही सूंडी *निफैन्टिस सेरीनोपा* की मुख्यतया लार्वा और प्यूपा अवस्था के दौरान कई प्राकृतिक शत्रु होते हैं जो कीट परजीवी, कीट और माइट परभक्षी तथा कवक और जैविक रोगों के रूप में होते हैं। शुष्क मौसम में लार्वा गलियारा इन प्राकृतिक शत्रुओं से इसकी रक्षा करता है लेकिन बारिश के समय जब लार्वा गलियारे के पानी से भीग जाता है तो कहानी उलट जाती है। भारी वर्षा के कारण इनकी संख्या वैसे भी कम हो जाती है क्योंकि इससे प्रौढ़ और लार्वा बह जाते हैं। इन जीवीय (बायोटिक) और अजीवीय (एबायोटिक) कारकों से इस पीड़क के मौसमी इतिहास का पता चलता है। मार्च, अप्रैल

और मई के दौरान इसकी गतिविधि सर्वाधिक होती है और यदि मानसून के आने में देरी हुई तो यह अवधि बढ़ भी सकती है। वर्षा के दौरान इसकी संख्या बहुत कम हो जाती है तथा बारिश के पश्चात पुनः बढ़ने लगती है। वर्ष की उस अवस्था में कीट परजीवियों की गतिविधि अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी हो जाती है जो अगले वर्ष जनवरी तक रहती है। इसके बाद इस पीड़क की गतिविधि बढ़ती है और परजीवियों की संख्या तापमान के बढ़ने तथा आर्द्रता घटने के साथ साथ कम होती जाती है। यह कमी मार्च तक आती है जब पीड़क की गतिविधि शिखर पर होती है।

इस पीड़क के नियंत्रण के संबंध में दो बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए (क) पीड़क की गतिविधि आरंभ में ही आसानी से ज्ञात हो जाती है, और (ख) इस पीड़क के मौसमी प्रकोप पर प्राकृतिक शत्रुओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए समुचित मानवीय जैव और रासायनिक नियंत्रण उपायों का ठीक से समाकलन करने की सलाह दी जाती है। चूंकि पीड़क की गतिविधि आमतौर पर जनवरी में आरंभ होती है और उस समय इसकी संख्या बहुत सीमित होती है, इसलिए समस्या को आरंभ में ही हल करने के लिए इसी अवधि में पीड़क से संक्रमित पत्तियों को तोड़कर जला देना चाहिए। यदि इस मानवीय विधि को उचित तरीके से और सफलतापूर्वक पूरा किया जाय तो भविष्य में अन्य कोई उपाय करने की जरूरत ही नहीं रहेगी क्योंकि इसकी संख्या नहीं पनपेगी। फिर भी, यदि किन्हीं क्षेत्रों में इसका गंभीर संक्रमण दिखे, विशेषकर मार्च से मई-जून तक, तब इसका नियंत्रण कीटनाशकों से किया जाना चाहिए। क्योंकि उस समय इसका संक्रमण और संख्या इतनी अधिक होती हैं कि यही उपाय कारगर हो सकता हैं। इसके लिए तेज कीटनाशक का उपयोग करना चाहिए। बाद में वर्षा के पश्चात इसके प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या बढ़कर जैव नियंत्रण उपाय किया जा सकता है क्योंकि इस मौसम में परजीवियों की संख्या बढ़ सकती है। इससे आगामी वर्ष भी पीड़क की संख्या बहुत अधिक बढ़ने की संभावना नहीं होगी और उस समय मानवीय उपायों से इसका नियंत्रण किया जा सकता है। इस प्रकार रासायनिक नियंत्रण पहले कम करने चाहिए और बाद में उनसे बचा जाना चाहिए।

12

मसालों, स्वापक और औषधीय पौधों के पीड़क

मसालों, गरम मसालों, स्वापक (नार्कोटिक्स) और औषधीय आदि वर्ग के आर्थिक महत्व के पौधों के पीड़क कीटों की लंबी सूची से यह ज्ञात होता है कि किस सीमा तक किसी वर्ग के रूप में कीट इनके प्रति अनुकूल हो जाते हैं। इन समूहों से संबद्ध पौधों से ऐसे अनेक किस्म के पदार्थ निकलते या बनते हैं जिनमें उच्च शरीरक्रियात्मक गतिविधि होती है। इससे इनकी अल्प मात्रा भी पशुओं के लिए सह्य नहीं होती। तब भी इस वर्ग के पौधों की अपनी पीड़क कीटों की समस्याएं हैं। दूसरे शब्दों में, ऐसे बहुत से कीट हैं जो इन पौधों पर पलते हैं और प्रजनन करते हैं। वास्तव में बहुत-से पौधों से कई प्रकार की तेज कीटनाशक दवाएं तैयार की जाती हैं, लेकिन उनकी भी अपनी पीड़क कीट समस्या है। इसका एक बेहतरीन उदाहरण तंबाकू का पौधा है जिसमें निकोटीन नामक पदार्थ होता है। इस पदार्थ से कीटनाशक तैयार किये जाते हैं। फिर भी तंबाकू की अपनी गंभीर पीड़क कीट समस्या है। काफी समय से तंबाकू का कीटनाशक दवा बनाने में प्रयोग किया जाता रहा है। इन विषाक्त मिश्रणों की क्रियाविधि पर हमारी जानकारी में वृद्धि के साथ ही ऐसे मामलों के बारे में कई प्रकार की विसंगतियों का विवरण दिया गया है। आगे आये अनुच्छेदों में ऐसे पौधों के मुख्य पीड़कों के बारे में संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

तंबाकू निकोटीन का स्रोत है। इस पर कई प्रकार के पीड़क आक्रमण करते हैं, जैसे (1) तंबाकू सूंडी[1], (2) कुतरा कीट[2], (3) तना बेधक[3] (4) चना सूंडी[4]। इसके अलावा तंबाकू-माहू और अन्य कई खड़ी फसलों को क्षति पहुंचाते हैं, जबकि सिगरेट-भृंग[5] ऐसा कीट है जो फैक्ट्रियों और सिगार भंडारों में तंबाकू को भारी क्षति पहुंचाता है।

ऊपर वर्णित 1, 2 और 4 नं. के पीड़क गांजे पर भी अन्य कीटों के साथ साथ

---

1. *Spodoptera litura* Fabricius 2. *Spodoptera exigua*
3. *Phthorimoea* spp. 4. *Heliothis armigera* Fabricius
5. *Lasioderma serricorne* Fabricius

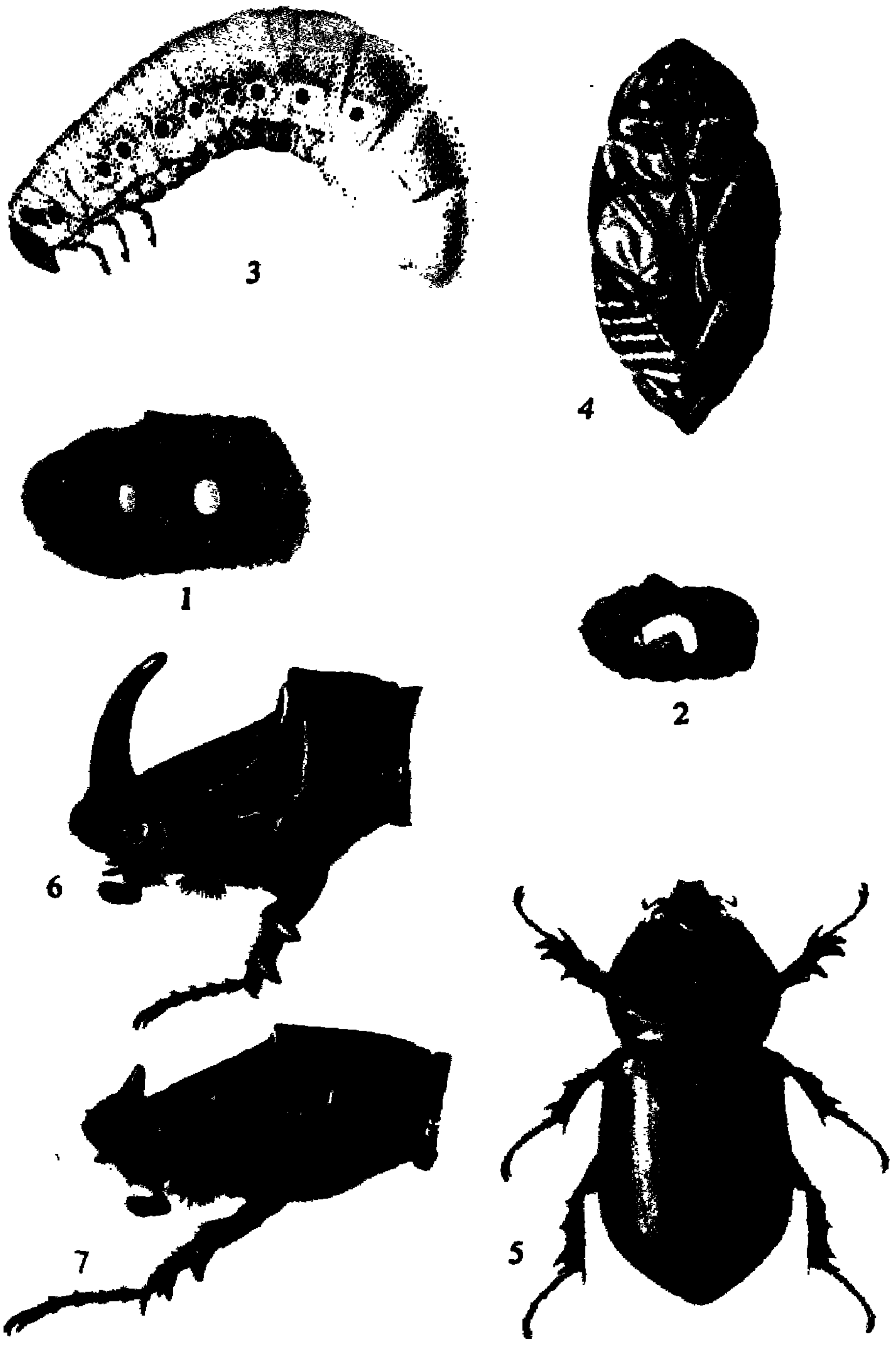


प्लेट-41—चाय मच्छर बग

(हेलोपेल्टिस थीवोरा वाटर)

1. क्षतिग्रस्त पत्ते 2. ताजा छिद्र वाले पत्ते 3. अंडे 4. निम्फ 5. प्रौढ़

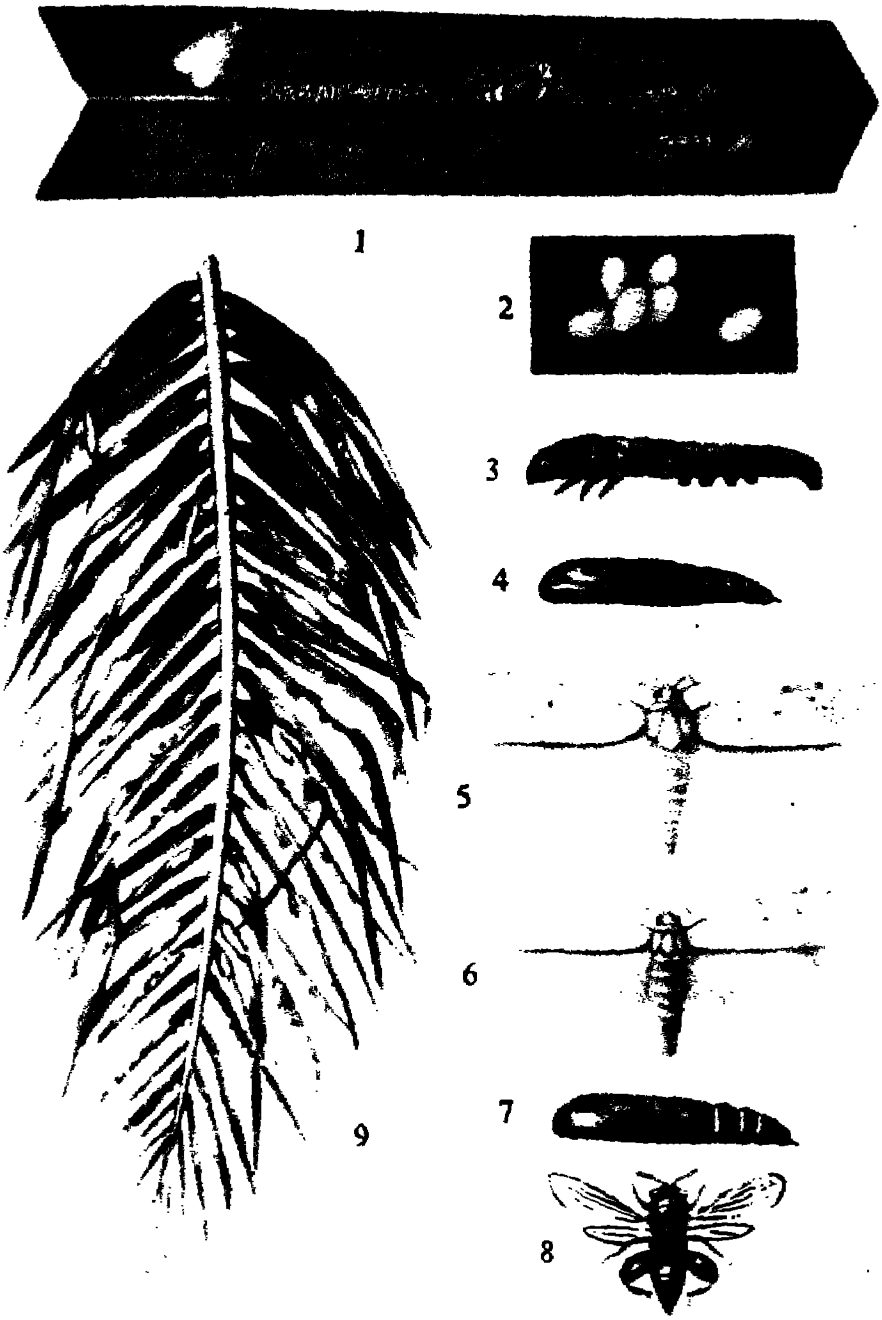
(उत्तर-पूर्व भारत में चाय के पीड़क और उनका नियंत्रण। चाय अनुसंधान संघ, टोकाली परीक्षण केंद्र, ज्ञापन नं. 27)



प्लेट-42—गैंडा भृंग

1. अंडे 2. नवजात लार्वा 3. पूर्ण विकसित लार्वा 4. प्यूपा 5. भृंग 6. नर भृंग के सिर का पार्श्व चित्र 7. मादा भृंग के सिर का पार्श्व चित्र

(*सम साउथ इंडियन इंसैक्ट्स*, पृष्ठ 285)



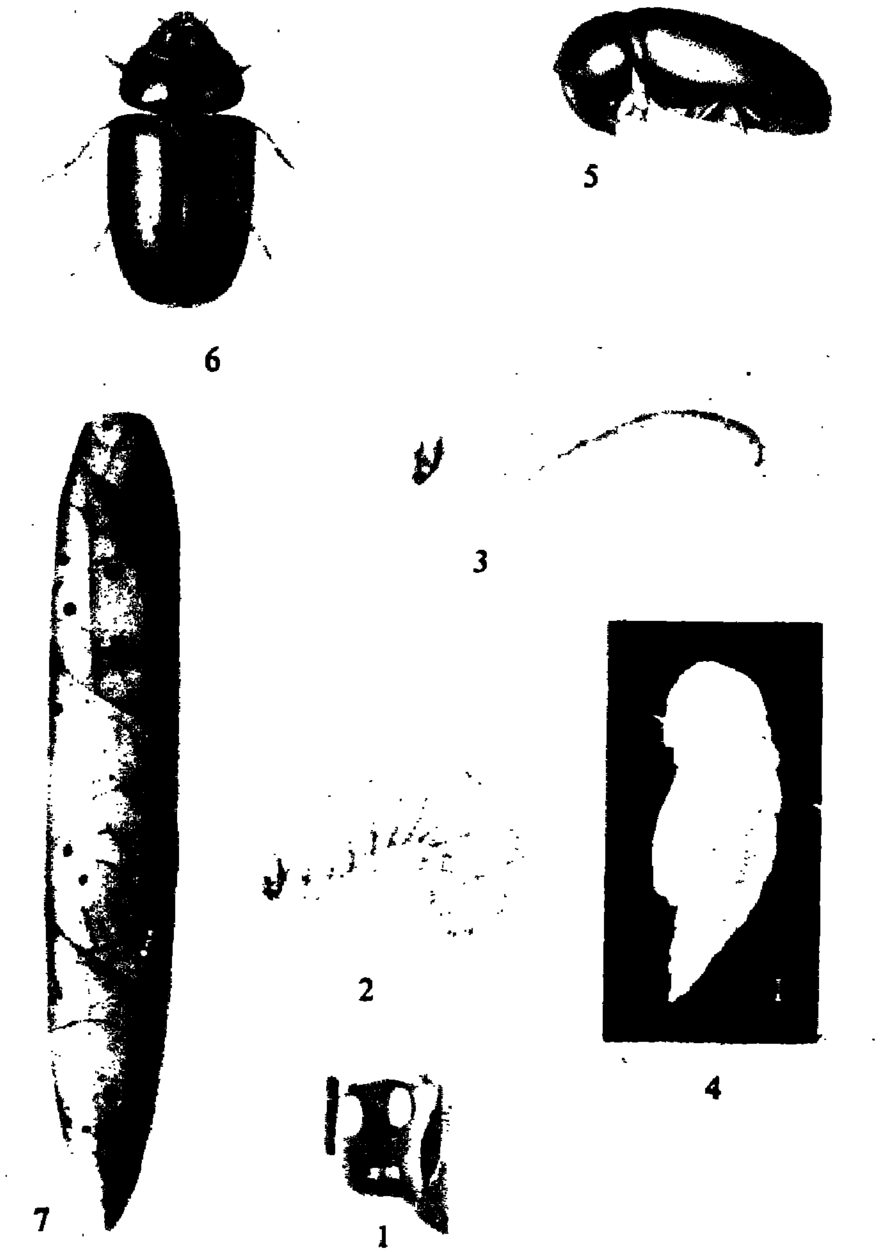
प्लेट-43 – कलमुंही सूंडी

1. सूंडी की गलियों वाली पत्ती 2. अंडे 3. सूंडी 4. प्यूपा 5. मादा शलभ 6. नर शलभ 7. परजीवी सहित प्यूपा 8. परजीवी 9. संक्रमित पत्ता

(*पांचवीं कीट विज्ञान बैठक की कार्र.*, पृष्ठ 92)



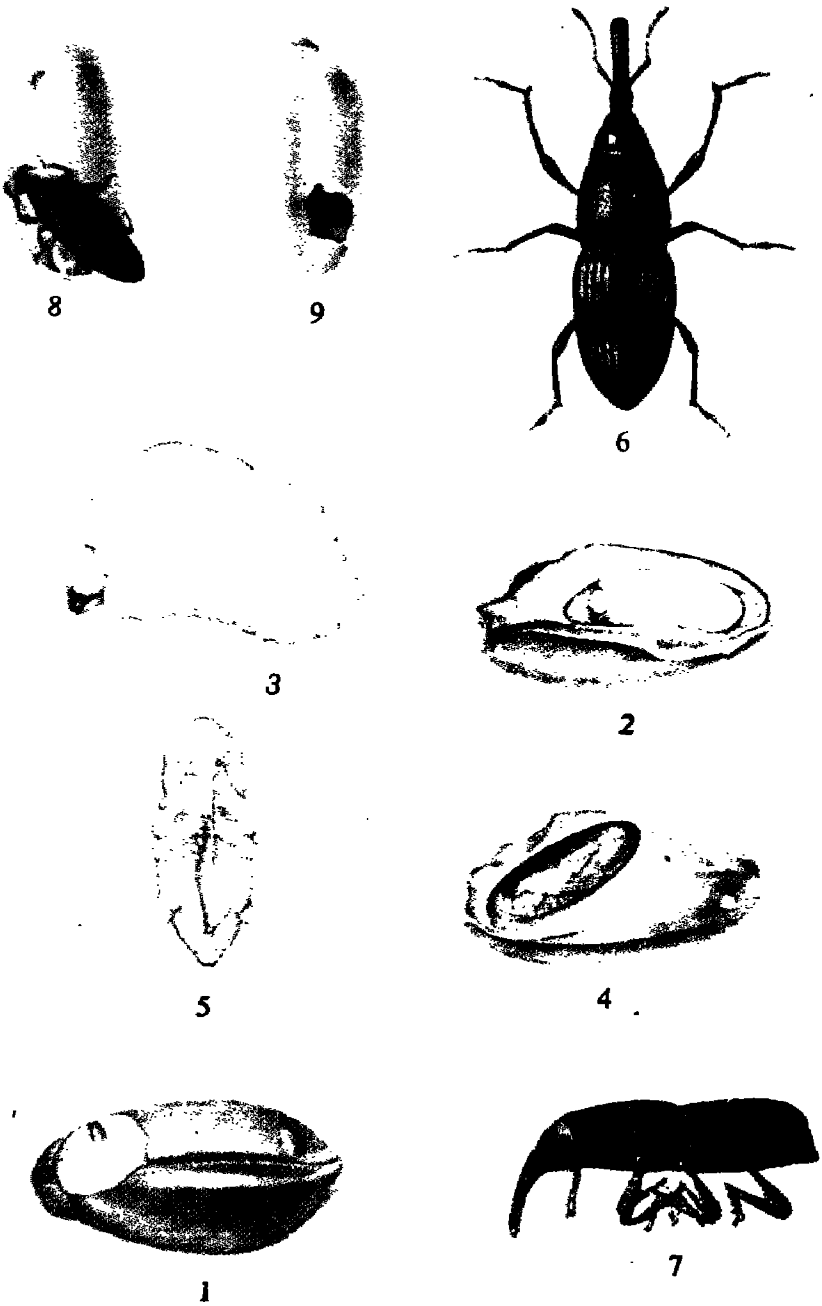
प्लेट-44—सिगरेट भृंग से क्षतिग्रस्त हल्दी
(सौजन्य : स्व. डा. पी.बी. मुखर्जी, कीट वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.सं., नयी दिल्ली)



प्लेट-45—सिगरेट भृंग

1. तंबाकू के एक पत्ते के टुकड़े पर दो अंडे 2. लार्वा जो अक्सर पत्ते के टुकड़ों से ढका रहता है 3. बिना ढका हुआ लार्वा 4. प्यूपा 5. पूर्ण कीट, पार्श्व भाग 6. पूर्ण कीट विश्राम की मुद्रा में 7. छिद्रित सिगार

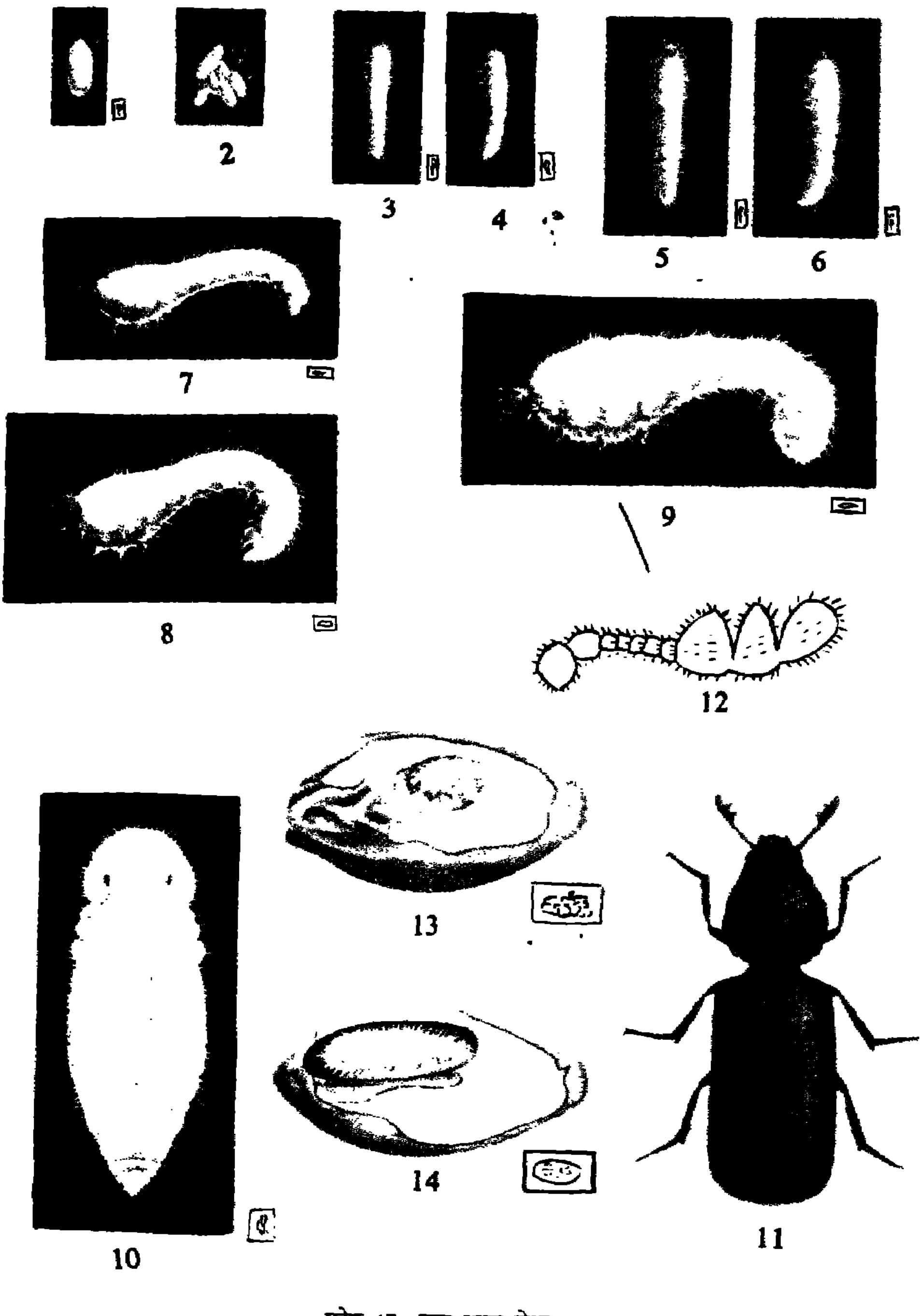
(*इंडियन इंसैक्ट लाइफ,* पृष्ठ 318)



प्लेट-46—चावल घुन

1. गेहूं के दाने पर और अंदर अंडे 2. दाने के अंदर भोजन करता लार्वा 3. दाने से हटाया गया लार्वा 4. दाने के अंदर प्राकृतिक अवस्था में प्यूपा 5. दाने से हटाया गया प्यूपा, उदर भाग 6. ऊपर से देखने पर प्रौढ़ घुन 7. पार्श्व से देखने पर प्रौढ़ घुन 8. दाने में घुसने का प्रयास करता हुआ घुन 9. गेहूं के दाने के अंदर घुन

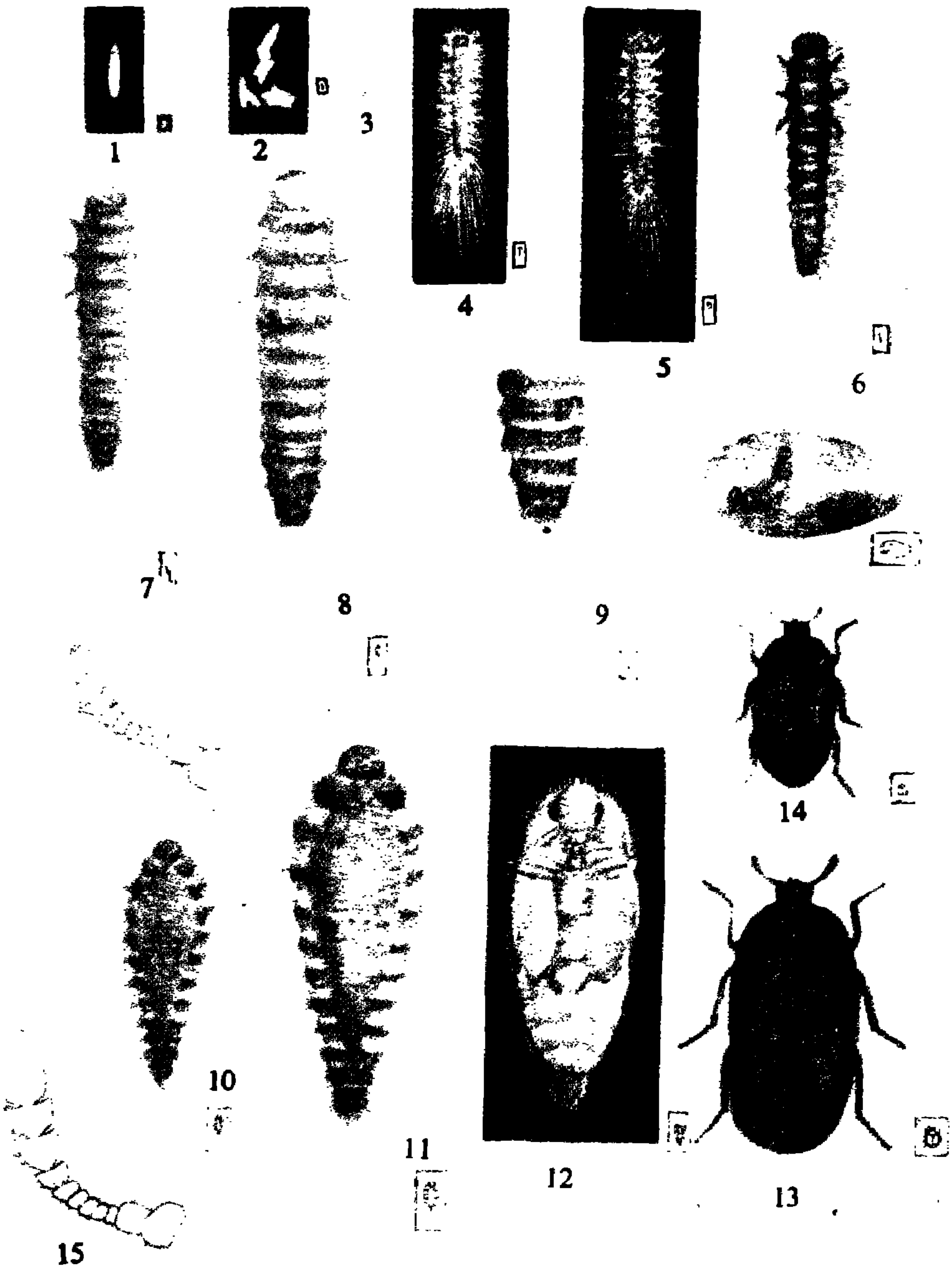
(*तृतीय कीट विज्ञान बैठक की कार्र.,* पृष्ठ 715)



प्लेट-47—लघु अन्न बेधक

1. अंडा 2. अंडों का झुंड 3. नवजात लार्वा, पृष्ठ भाग 4. नवजात लार्वा, उदर भाग 5. प्रथम निर्मोचन के बाद लार्वा, पृष्ठ भाग 6. प्रथम निर्मोचन के बाद लार्वा, उदर भाग 7. द्वितीय निर्मोचन के बाद लार्वा 8. तृतीय निर्मोचन के बाद लार्वा 9. प्यूपा बनने से एकदम पहले पूर्ण विकसित लार्वा 10. प्यूपा, उदर भाग 11. प्रौढ़, आगे बढ़ने की स्थिति में 12. भृंग 13. अन्न के दाने के अंदर लार्वा 14. लार्वा द्वारा दाने के अंदर बनाई गई खाली जगह में प्यूपा

(*तृतीय कीट विज्ञान बैठक की कार्र.* पृष्ठ 716)



प्लेट-48—खपरा भृंग

1. अंडे 2. एक साथ दिए हुए अंडे 3. कुछ दिन पुराने अंडे जिनके अंदर लार्वा विकसित होते दिखाये गये हैं 4. नवजात लार्वा 5. प्रथम निर्मोचन के बाद लार्वा 6. द्वितीय निर्मोचन के बाद लार्वा 7. तृतीय निर्मोचन के बाद लार्वा 8. चतुर्थ निर्मोचन के बाद लार्वा 9. पंचम निर्मोचन के बाद लार्वा का पिछला भाग 10. लार्वा त्वचा में अभी भी घिरे नर भृंग का प्यूपा 11. मादा भृंग का प्यूपा 12. लार्वा त्वचा से निकले मादा प्यूपा का उदरीय भाग 13. मादा 14. नर, 15. नर भृंग का शृंग 16. मादा भृंग का शृंग 17. गेहूं के दाने को खाता हुआ लार्वा

(*तृतीय कीट विज्ञान बैठक की कार्र.*, पृष्ठ 717)

आक्रमण करते हैं। कुनैन के स्रोत सिंकोना पर कई प्रकार के शाक भृंग और ग्रब आक्रमण करते हैं।

पुदीना[1] से मेंथोल प्राप्त होता है जो महत्वपूर्ण औषध-गुणयुक्त रसायन है। इस पर अन्य कीटों के अलावा पायरैलिड[2] नोक्टुइड[3], *आटोग्राफा (प्लूसिया) नाइग्रीसिग्ना*[4], *यूक्सोआ सेजेटम*[5] और आर्कटिड[6] ग्रसन करते हैं। एक अन्य औषधीय महत्व के पौधे खुरासानी अजवायन[7] पर जो पीड़क आक्रमण करते हैं, उनमें से दो जातियां हेलियोथिस की हैं। इसके अतिरिक्त *हे. आर्मीजेरा* और बहुभक्षी माहू *माइजस पर्सीका* सुल्जर हैं। *एट्रोपा बेलाडोना लिनायस* (मकोय)[8], जिससे प्रसिद्ध औषधि बेलाडोना मिलती है, पौधे पर अन्य कीटों के अलावा *ओक्रोप्लूरा फ्लैमेंट्रा*[9] नामक कुतरा कीट प्रमुख हैं। *रॉवोल्फ़िया सर्पेन्टीना* वेंथ.[10] पौधे की ओर हाल ही में उसके औषधीय गुणों के कारण ध्यान आकर्षित हुआ है। इस पर स्फिंगिड लार्वा (*डाईलेफिला नेराई* लिनायस)[11] आक्रमण करता है।

क्राईसैन्थेमम वंश के पौधे पाइरेथ्रम नामक कीटनाशक के लिए बहुत मांग में हैं। यह कीटनाशक बहुत प्रभावी होता है। इस पर *स्पाइलोसोमा ऑब्लीकुआ*, माहू और दीमक आक्रमण करते हैं। अफीम की स्रोत पोस्त की फसल पर काफी संख्या में कुतरा कीट, टिड्डे और भृंग आदि पीड़क आक्रमण करते हैं।

हल्दी पर आक्रमण करने वालों में प्ररोह बेधक, (*डाइकोक्रोसिस पंक्टीफेरालिस* गुनी)[12], तितली लार्वा (*उडेस्पिस फ़ोलस* क्रैमर)[13], कुछ थ्रिप लेसविंग बग और खपरी कीट शामिल हैं। अदरक पर हल्दी प्ररोह बेधक आक्रमण करता है। धनिये की फसल को *स्पोडोप्टेरा* एक्सीगुआ सूंडी, कुछ स्टिंक बग और पौध जूं हानि पहुंचाते हैं। कालीमिर्च पर पिस्सू भृंग (*लांजीटार्सस नाइग्रीपेनिस* मास्कुल्स्की)[15] खपरी कीट की दो प्रजातियां और मीली बग आक्रमण करते हैं। इलायची का एक प्रबल शत्रु हल्दी प्ररोह बेधक है। इसके अतिरिक्त इलायची थ्रिप और स्कालीटिड भृंग भी इसे क्षति पहुंचाते हैं। भंडारण अवस्था में हल्दी और अदरक दोनों को ही *लेज़ियोडर्मा सेरीकार्ने* संक्रमित करता है (प्लेट-45)।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि जो किसान विष, कीटनाशकों, औषधियों या नशों के लिए पौधे उगाते हैं अथवा विभिन्न मसालों के लिए पेचीदा प्रकृति के

---

1. *Mentha arvensis* Linnaeus
2. *Syngamia abruptails* Walker
3. *Spodoptera exigua*
4. *Autographa (Plusia) nigrisigna*
5. *Euxoa segetum*
6. *Spilosoma obliqua* Walker
7. *Hyoscyamus niger* Linnaeus
8. *Atropa belladonna* Linnaeus
9. *Ochropleura flammatra*
10. *Rauwolfea serpentina* Benth
11. *Dielephila nerii* Linnaeus
12. *Chrysanthemum*
13. *Dichocrocis punctiferalis* Guenee
14. *Udaspes folus* Cramer
15. *Longitarsus nigripennis* Motschulsky

पौधे उगाते हैं - सभी कई प्रकार के फसल पीड़कों का सामना करते हैं। इससे यह भी दिलचस्प जानकारी मिलती है कि *स्पोडोप्टेरा एक्सिगुआ, हेलियोथिस आर्मीजेरा, माइज़स पर्सिका,* आदि जातियां अति विशिष्ट पौधों की शत्रु हैं और इन्होंने अपने आहार में व्यापक विभिन्नता अपनाई है। इस दृष्टि से *लेज़ियोडर्मा सेरीकॉर्ने* बहुत दिलचस्प है। उदाहरण के लिए इस विविधभक्षी पीड़क का वर्णन यहां दिया जा रहा है।

सिगरेट भृंग

(प्लेट-45)

लेज़ियोडर्मा सेरीकार्ने फ्रेब्रिसियस जिसे आमतौर पर सिगरेट भृंग कहा जाता है, भंडारण अवस्था में बहुत प्रकार की जिंसों को क्षति पहुंचाता है। इस सूची में अर्गट, हल्दी, तंबाकू, अदरक, हेलीबोर, मुलैठी, अफीम, मकोय, लालमिर्च, पैपरिका, केसर, सफेद जीरा, स्ट्रिक्नीन, पाइरेथ्रम युक्त कीटनाशक चूर्ण, जायफल और सौंफ आदि आते हैं।

यह जाति कोलियोप्टेरा गण के अनोबीआइडी कुल की सदस्य है। इसका प्रसार विश्व भर में है। इसका प्रौढ़ एक छोटा लाल रंग का हृष्ट पुष्ट भृंग है, जिसकी लंबाई 2.5 मि.मी. है। इसका आकार विविधतापूर्ण होता है जो उस खाद्य सामग्री पर निर्भर है जिस पर इसने जन्म लिया होता है। सामान्यतया तीसरे पहरे और रात्रि के दौरान यह अधिक सक्रिय होता है। यह प्रकाश के प्रति आकर्षित होता है। प्रौढ़ का जीवनकाल चार या पांच सप्ताह अथवा कुछ स्थितियों में इससे अधिक भी होता है।

मादा भृंग अपेक्षाकृत सुरक्षित ओटों जैसे तंबाकू के पत्तों के मोड़ों के बीच, सिगार और सिगरेटों के मोड़ों के मध्य, कोनों, सुराखों और दरारों, धनिये के दानों के बीच, आदि में अंडे देते हैं। अंडे इतने छोटे होते हैं कि प्रायः उनका पता ही नहीं चलता। ये सफेद रंग के अपारदर्शी होते हैं। इनका एक सिरा नोकदार और लंबाई 0.5 मि.मी. के लगभग होती है।

अंडे की ऊष्मायन-अवधि मात्र चार दिन भी हो सकती है और तापमान तथा आर्द्रता के अनुसार दो सप्ताह से अधिक तक बढ़ भी सकती है।

अंडे से निकलते समय लार्वा धूसर सफेद रंग का लगभग 1 मि.मी. लंबा भृंगक होता है जिसका शरीर सुंदर रोओं से ढका रहता है। लार्वा अवस्थाओं में भी विविधता मिलती है। यह एक महीने से कम और लगभग छह महीने तक लंबी भी हो सकती है। पूर्ण विकसित भृंगक की लंबाई लगभग 3 मि.मी. होती है। लार्वा की अशन गतिविधि के फलस्वरूप तंबाकू के पत्तों, सिगार आदि में लंबवत और आरपार गलियारे बन जाते हैं। पूर्ण वर्धित हो जाने पर लार्वा एक झीना-सा कोष बनाता है जिसमें प्यूपा निर्माण होता

है। हालांकि प्यूपा निर्माण उस सामग्री के अंदर होता है जो इसके जन्म स्थल के आसपास पड़ी होती है, फिर भी लार्वा यह सुनिश्चित कर लेता है कि प्रौढ़ उस झीने काया से बाहर निकल आये। नये नये प्यूपा का रंग सफेद होता है जो बाद में भूरा हो जाता है। प्यूपा अवस्था पांच दिन जितनी अल्प और तीन सप्ताह से अधिक भी हो सकती है।

जहां तक नियंत्रण का प्रश्न है यह पीड़क उच्च तापमान के प्रति अत्यंत संवदेनशील है तथा यह पाया गया है कि यदि 60^0 सेल्सियस पर इसे 15 मिनट तक रखा जाय तो इसकी सभी अवस्थाएं नष्ट हो जाती हैं। धूमन का भी इस पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि उस जिंस को क्षति न पहुंचे जिस पर धुआं किया जा रहा हो। इसके अवशिष्ट बचे रहने के प्रश्न पर भी भली भांति विचार करना चाहिए।

13

भंडारित खाद्यान्न

भंडारण के दौरान विभिन्न जिंसों के आम पीड़क

भंडारित अन्न और मिलकुटे अनाजों को नुकसान पहुंचाने वाली सैकड़ों कीट जातियों का पता चला है। इनमें से लगभग 50 ऐसी हैं जो प्रायः अधिक हानिकर हैं। भारतीय परिस्थितियों में निम्नलिखित पांच पीड़क सर्वाधिक खतरनाक हैं।

चावल घुन

(सिटोफ़िलस ओराइज़ी लिनायस*)*[1]

(प्लेट-46)

विश्व में यह पीड़क अन्न का सबसे बड़ा शत्रु है। इसे चावल घुन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसे सबसे पहले चावल को नुकसान पहुंचाते हुए पाया गया था। दरअसल, विश्व भर में यह भंडारित अन्न की विभिन्न किस्मों को ग्रस्त करता है, लेकिन गर्म और आर्द्र देशों में इसका प्रकोप अधिक मिलता है।

3 मि.मी. लंबाई का यह लाल-भूरा घुन है जिसका सिर थूथन सूंड की तरह थोड़ा आगे निकला होता है। एक जोड़ा अधोहनु मजबूत जबड़ा इसकी विशेषता है। अपने से मिलते जुलते कोठार घुन (*सिटोफाइलस ग्रेनेरियम* एल.)[2] के विपरीत यह अच्छा उड़ाका है। देखा गया है कि गोदामों से उड़कर यह आसपास के खेतों में चला जाता है और वहां अन्न पर आक्रमण करता है। प्रौढ़ घुन का जीवनकाल चार-पांच माह का होता है। अपने शक्तिशाली जबड़ों की सहायता से मां-घुन अन्न के दाने में सुराख बनाती है जो इतना

---

1. *Sitophilus oryzae* Linnaeus
2. *Sitophilus granarium* L.

बड़ा ही होता है कि एक अंडे से बंद हो जाता है। इसके बाद वह अंडे पर एक सरेस-सा तरल पदार्थ डाल देती है। अंडे में से छोटा-सा, पैरहीन और मांसल भृंगक निकलता है, जो दाने के भीतर ही भीतर छेद करता रहता है और अंत में प्रौढ़ घुन बनकर बाहर निकलता है। यह घुन दाने के भीतर के अंशों को बहुत तेजी से खाकर छिलके को छोड़ देता है। वहीं पर पूर्ण वर्धित लार्वा प्यूपीय कोशिका बनाता है। प्यूपा अवस्था कुछ दिन से कुछ सप्ताह तक रहती है जिसके बाद प्रौढ़ दाने से बाहर निकलता है। प्रत्येक घुन 300 से 400 तक अंडे देता है और सामान्यतया पूरा जीवन चक्र चार सप्ताह में पूरा हो जाता है। इस प्रकार सामान्य भंडारण काल में कई पीढ़ियां जन्म लेती हैं जिसके कारण जैसे जैसे समय बीतता है, इसका प्रकोप तीव्र से तीव्रतर होता जाता है।

नियंत्रण के दृष्टिकोण से इस पीड़क के जीवन का सबसे कमजोर पक्ष उस समय होता है जब दाने में आर्द्रता नौ प्रतिशत से कम हो। इसलिए यदि अन्न को सुखाने के बाद गोदाम में भरा जाय और गोदाम में भी उसे पूरी तरह शुष्क अवस्था में रखा जाय तो इस पीड़क से अन्न को कोई क्षति नहीं पहुंचेगी। यहां इस संदर्भ में यह भी बताना उल्लेखनीय है कि यदि कुछ हिस्सों में आर्द्रता सीमांत पर है अर्थात 9.5 से 10 प्रतिशत के बीच है तो घुन स्वयं ही आर्द्रता और तापमान दोनों बढ़ा लेता है और अपने लिए उपयुक्त सूक्ष्म जलवायु तैयार कर लेता है। इस प्रकार अन्न उष्णता के गंभीर मामले सामने आये हैं। यदि अन्न को शुष्क रखना या करना व्यावहारिक न हो सके तो जैसे ही इसका प्रकोप असह्य अवस्था में पहुंचे, कीटनाशक धुएं द्वारा उसका उपचार करना चाहिए।

लघु अन्न बेधक

(राइज़ोपर्था डोमीनिका फैब्रिसियस)[1]

(प्लेट-47)

यह पीड़क भृंग भी विश्वव्यापी है और गोदाम में रखे अनाज को अत्यधिक हानि पहुंचाता है। कुछ स्थानों पर यह चावल घुन से कम हानिकारक पीड़क माना जाता है जबकि कुछ स्थानों पर इसे चावल घुन से भी अधिक नुकसान पहुंचाने वाला पीड़क पाया गया है। यह लकड़ी बेधकों के एक कुल से है। इसके बारे में ऐसा माना जाता है कि जब यह लकड़ी की बनी उन दीवारों में रहते हुए अन्न के संपर्क में आया, जिनमें अन्न भरा हुआ था तो अन्न भी इसकी पसंद में शामिल हो गया। प्रौढ़ अवस्था में यह पतला बेलनाकार शरीर का लगभग 3 मि.मी. लंबा, चिकना गहरा भूरा या काले रंग का होता है। ग्रीवा से इसका

1. *Rhizopertha dominica* Fabricius

शरीर नीचे की ओर रहता है। प्रौढ़ एवं लार्वा, दोनों ही अवस्थाएं अन्न को क्षति पहुंचाती हैं। सर्वप्रथम इसका पता फैब्रिसियस ने सन् 1792 में उस समय लगाया जब भारत से जहाज द्वारा अन्न अमेरिका जा रहा था। इसीलिए इसका जन्म स्थान भारत माना जाता है, जहां से यह विश्व भर में फैल गया। प्रौढ़ अच्छा उड़ाका होता है और बहुत तीव्रता से फैलता है।

इस पीड़क की कई विशिष्ट लाक्षणिकताएं निम्नलिखित हैं (क) अधिकतर यह कोठों के तलों में पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्थान इसके अधिक अनुकूल है। (ख) प्रौढ़ अपेक्षाकृत कोमल होता है और यदि अन्न को हाथ से उलट पलट किया जाय तो नष्ट हो सकता है, (ग) चूंकि यह लकड़ी बेधक कुल का है इसलिए लकड़ी से बने कोठों की दीवारों को छलनी कर सकता है, (घ) अन्न को उष्ण करने की इसकी क्षमता चावल घुन से कम है। चावल घुन का प्रौढ़ जितनी कार्बन डाईआक्साइड बनाता है, यह उसकी आधी ही बनाता है, वास्तव में मिश्रित संक्रमण में एक चावल घुन के बराबर चार लघु अन्न बेधक माने जाते हैं।

एक मां भृंग 300 से 500 तक अंडे दो दानों के भ्रूण छोर के पास अथवा दानों के बीच ही दे देती है। अंडों से निकलते समय ही लार्वा काफी सक्रिय होता है और शीघ्र ही वह दाने के मुलायम हिस्से–भ्रूण के पास से उसमें प्रविष्ट होता है। उसका शेष जीवन दाने में ही बीतता है। हालांकि कुछ ऐसे भी हैं जो बिना दाने में प्रविष्ट हुए आटे जैसे मंड (स्टार्च) को खाकर जीवित रहते हैं। लार्वा तीन या चार बार निर्मोचन करता है और उसके बाद दाने के अंदर ही प्यूपा बनता है। लार्वा के दाने के अंदर ही अंदर भोजन करते रहने से कई बार पूरा दाना मात्र खोल बनकर रह जाता है। अंडा देने से प्रौढ़ बनने तक का कुल समय लगभग एक माह का होता है। तापमान के अनुसार यह अवधि काफी अधिक भी हो सकती है।

जहां तक नियंत्रण का सवाल है इस पीड़क के लक्षण चावल घुन से मिलते-जुलते हैं, इसलिए इसके लिए भी वही नियंत्रण उपाय किये जाने चाहिए।

खपरा भृंग

(ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम एवर्ट्स*)*[1]

(प्लेट-48)

हालांकि यह पीड़क भी विश्वव्यापी है लेकिन गर्म और शुष्क प्रदेशों में इसका जोर अपेक्षाकृत

1. *Trogoderma granarium* Everts

अधिक है। इस प्रकार भारत में तटवर्ती क्षेत्रों की अपेक्षा अंदरूनी हिस्सों में इसका प्रकोप अधिक मिलता है। इस भृंग की अन्य विशेषता यह है कि अन्य भृंगों के विपरीत इस भृंग का प्रौढ़ हानि पहुंचाने वाला नहीं होता, सिर्फ लार्वा ही होता है। पहला आक्रमण सामान्यतया दाने के भ्रूण बिंदु पर होता है पर बाद में जब ग्रसन पूरे जोरों पर होता है तो दाने के अन्य भाग भी क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। वास्तव में खपरा भृंग और लघु अन्न बेधक द्वारा किया गया नुकसान कुछ कुछ एक जैसा प्रतीत होता है।

मादा प्रौढ़ भृंग का आकार छोटा, कुछ अंडाकार, रंग हल्का लाल-भूरा अथवा काला और लंबाई 2.5 मि.मी. होती है। पंख आवरणों पर विशिष्ट निशान होते हैं। नर का आकार मादा से आधा होता है, मादा लगभग 125 अंडे देती है जिनमें से रोमिल लार्वा निकलते हैं। रोयें लाल-भूरे रंग के लहराते हुए और शरीर के साथ साथ गुच्छों में होते हैं तथा पूंछ की भांति पिछले भाग पर होते हैं। लार्वा बहुत प्रतिरोधी होता है। कीटनाशक रसायनों, प्रतिकूल तापमान और आर्द्रता के प्रति तो यह प्रतिरोधक होता ही है, साथ ही महीनों ही नहीं सालों तक भुखमरी का भी सामना कर सकता है। इसके अलावा शरीर पर बालों और मोमिया आवरण से भी इसमें प्रतिरक्षा उत्पन्न होती है। लार्वा विभिन्न प्रकार की दरारों, सुराखों, प्लास्टर के नीचे छेदों, बोरों की सीवनों आदि में शरण लेता है और इनमें बिना भोजन किए वर्षों तक जीवित रह सकता है। इस अवस्था में इतनी प्रतिरोधी क्षमता वाले लार्वा बहुत कम कीटों में पाए जाते हैं। सौभाग्य से इसकी यह प्रतिरोधक क्षमता शीघ्र ही उस समय नष्ट हो जाती है, जब यह प्यूपा पूर्व अवस्था में परिवर्तित होता है। प्यूपा अवस्था आमतौर पर 1 से 3 सप्ताह तक रहती है जिसके बाद प्रौढ़ निकलते हैं और निकलने के तुरंत बाद अगली पीढ़ी के निर्माण के लिए तत्पर रहते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में पूरा जीवनकाल मात्र चार सप्ताह में पूरा हो सकता है जबकि प्रतिकूल स्थिति में यह अवधि चार साल तक बढ़ सकती है।

चावल घुन और लघु अन्न बेधक के विपरीत यह पीड़क निम्न आर्द्रता और अन्न में कम नमी तत्व के प्रति सर्वाधिक प्रतिरोधक होता है। यह इतने कम आर्द्रता अंश में प्रजनन कर सकता है कि उपर्युक्त शेष दो पीड़कों के लिए सुझाया गया ऊष्णता उपाय इसके लिए अप्रभावी होता है। दूसरी ओर खपरा भृंग के जीवनकाल का सबसे कमजोर बिंदु आक्सीजन की कमी होता है, विशेषकर अंडा, प्यूपा और प्रौढ़ अवस्था के दौरान। इस विशिष्टता के कारण खपरा भृंग सतह पर ही भक्षण करता है और एक विशेष गहराई से अधिक अंदर नहीं जाता। इसके नियंत्रण के लिए इस लक्षण का भरपूर लाभ उठाया जा सकता है। वायुरोधी भंडार अथवा बर्तन इस पीड़क के लिए बीमा स्थान हैं। वायुरोधी बर्तन के अंदर जब आक्सीजन की मात्रा 21 प्रतिशत से घटकर लगभग 16

प्रतिशत हो जाती है तो वह स्थान इसके प्रजनन के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। यदि बर्तन को बार बार खोला जाय और उसमें ताजी हवा जाने दी जाय तो इसका प्रजनन बंद नहीं होगा।

एंगौमोइस अन्न पतंगा

(सिटोट्रोगा सिरियलेला ओलीवर*)*[1]

इस पीड़क का यह नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि सर्वप्रथम सन् 1736 में इसका पता फ्रांस के एक प्रदेश एंगोमोइस में चला। अमेरिका में इसे 'उड़न घुन' भी कहा जाता है। भारत में इसे कई बार धान पतंगा कहा गया है क्योंकि तटवर्ती प्रदेशों में इसे धान की फसल को ग्रस्त करते हुए पाया गया है। यह गेहूं, मक्का, जौ, ज्वार और अन्य अनाजों को भी क्षति पहुंचाता है।

उच्च आर्द्रता और दाने में उच्च नमी अंश इस पीड़क के लिए आवश्यक है, इसलिए भारतीय जलवायु में इसका प्रकोप तटवर्ती क्षेत्रों तक सीमित है। भंडारित अन्न में इसका ग्रसन ऊपरी सतह से दो-तीन इंच नीचे तक ही रहता है। लेकिन इस हिस्से में इसका प्रकोप होता बहुत तीव्र है। उन देशों में जहां अन्न में नमी का अंश अधिक होता है, यह पीड़क बहुत गंभीर माना जाता है और चावल घुन के बाद इसे ही सर्वाधिक हानिकर माना जाता है।

फसल जब खेत में खड़ी होती है और दाना दूध अवस्था में होता है, उसी समय इस पीड़क का ग्रसन शुरू हो जाता है। इसके ग्रसन का पता उस समय तक भी नहीं चलता, जब फसल की गहाई की जाने वाली हो। स्पष्टतया इस समय पतंगा एक बाल से दूसरी पर असानी से आ-जा सकता है और अंडे दे सकता है। अन्न को गहाई के बाद जब भंडारित कर लिया जाता है तो उसकी यह गतिविधि रुक जाती है।

प्रौढ़ अवस्था का पतंगा छोटा-सा 1.25 सें.मी. पंख विस्तार वाला कीट होता है। इसका रंग पीला-भूरा होता है और पंख के किनारे दंतुर होते हैं। यह 400 तक अंडे दे सकता है जो अन्न के दानों पर या उनके बीच दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अनाज की बालों, खलिहानों अथवा गोदामों में भी अंडे देते हैं। अंडों का आकार 0.5 मि.मी. अंडाकार, रंग सफेद जो बाद में चमकीला लाल हो जाता है। अंडों में से लगभग एक सप्ताह में लार्वा निकल जाते हैं जो तुरंत ही रेंगने लगते हैं। ये दाने में कोई हल्का छिद्र या दरार

---

1. *Sitotroga cerealella* Oliver



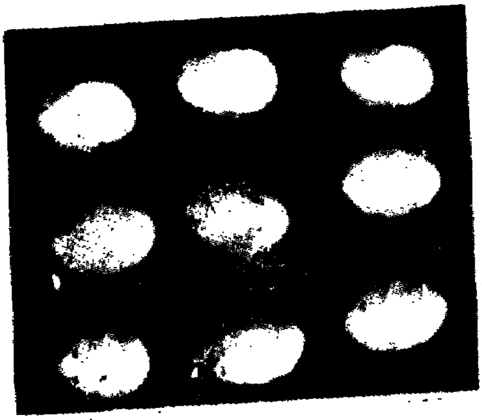
प्रौढ़



लार्वा



क्षतिग्रस्त लोबिया दाने पर अंडा आवरण

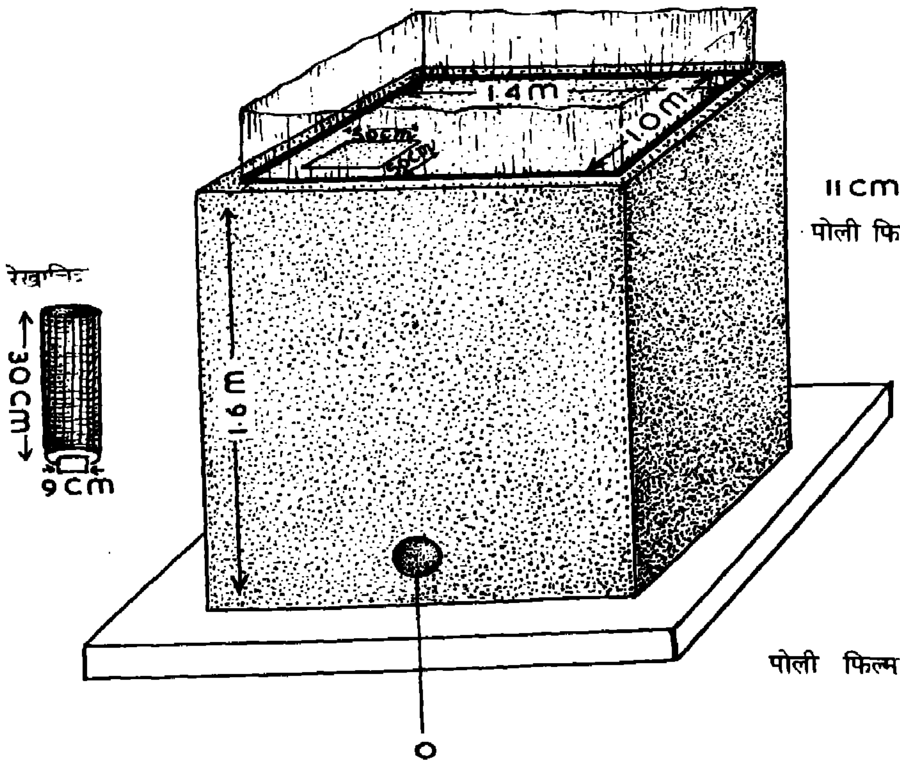


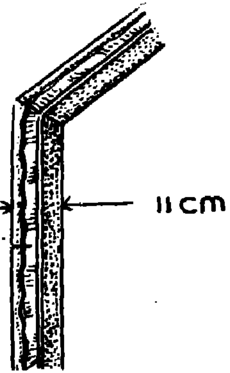
प्यूपा

प्लेट-49—दलहन भृंग की विभिन्न अवस्थाएं

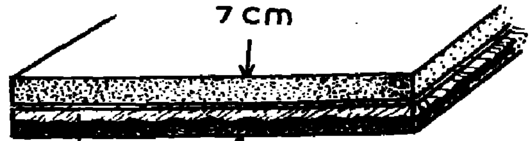
(सौजन्य : स्व. डा. पी.बी.मुखर्जी, कीट विज्ञानी, भा.कृ.अ.सं. नयी दिल्ली)

रेखाचित्र : 1

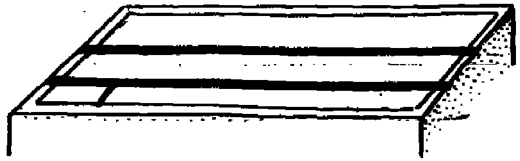




रेखाचित्र : 3



रेखाचित्र : 5



प्लेट-50—पूसा बिन के निर्माण का विवरण

ढूंढ़ते हैं और उसमें होकर दाने में प्रवेश कर जाते हैं। दाने में घुसने के बाद लार्वा एक रेशमी जाल से छिद्र को पाट देता है और अंदर पर्याप्त भोजन और सुरक्षा के वातावरण में पूर्ण वर्धित अवस्था होने तक रहता है। यह 2 या 3 सप्ताह में पूर्ण विकसित हो जाता है। उस समय इसकी लंबाई लगभग 5 मि.मी. होती है। इतने समय में यह दाने को अंदर से पूरा खोखला कर देता है और दाना मात्र खोल रह जाता है। इसके बाद लार्वा एक गोल निकास छिद्र बनाता है जो भावी शलभ के लिए उपयुक्त होता है। इसके बाद लार्वा दाने के अंदर ही रेशमी कोया बनाकर प्यूपा निर्माण करता है। प्यूपा अवस्था प्रायः एक सप्ताह की होती है जिसके बाद शलभ प्रकट होकर अगली पीढ़ी के निर्माण में जुटता है। इस प्रकार तापमान और आर्द्रता के अनुसार वर्ष में कई पीढ़ियां जन्म लेती हैं। जैसा कि प्रायः होता है, इसका शलभ भी सामान्यतया कोई नुकसान नहीं करता और सिर्फ लार्वा ही अन्न को क्षति पहुंचाता है। चूंकि अन्न में छिद्र का पता लगाकर आमतौर पर इसके ग्रसन का आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता है, इसलिए इसका अचानक उस समय आभास होता है जब दानों के निकास छिद्र से पतंगा बाहर आता है और यह छिद्र अच्छी तरह दृष्टिगोचर होता है।

इस पीड़क के कुछ परजीवी और परभक्षी शत्रु होते हैं, लेकिन उनका विशेष व्यावहारिक महत्व नहीं है।

इसके नियंत्रण के लिए सबसे उपयुक्त तथ्य यह है कि दाने में उच्च आर्द्रता अंश इसके जीवन के लिए आवश्यक होता है। इसलिए आर्द्रता अंश को उचित स्तर पर रखकर इसे नियंत्रण में रखा जा सकता है। धूमन से भी इसका नियंत्रण हो सकता है।

दलहन भृंग

(कैलोसोब्रुकस स्पी.*)*[1]

(प्लेट-49)

खाद्यान्नों के पीड़क भृंग विभिन्न कुलों के होते हैं, जबकि दलहन भृंग एक अपेक्षाकृत छोटे कुल *बुरकिडी* के होते हैं। जैसा कि ज्ञात है सभी दलहनी पौधे भी *लैग्यूमिनोसी* कुल के होते हैं। ब्रुकिड जैसा कि इन्हें सामान्यतया कहा जाता है, छोटे आकार के होते हैं जो अधिकतर 5 मि.मि. से कम होता है। इनका स्वरूप भी ऐसा होता है कि

1. *Callosobruchus* spp.

अन्य भंडारण पीड़कों से अलग ही दिखते हैं। इसकी विशेषताओं में छोटा सिर, भोथरा थूथन, पिछले पदों की उर्वस्थि और शृंगिका (एंटीना) का दांतेदार या कंघीनुमा होना है।

अधिकतर ब्रुकिड खेतों में फली वाले पौधों की फलियों पर आक्रमण करते हैं और वहीं से बाद में गोदामों में पहुंच जाते हैं। इनका गंभीर प्रकोप भंडारण के दौरान ही सामने आता है। कभी कभी जब दलहन के दाने गोदामों से बाहर आते हैं तो अत्यंत क्षतिग्रस्त अवस्था में होते हैं। प्रत्येक दाने पर सफेद-से शल्क जैसे, अंडे या अंडे के खोल होते हैं और बहुत-से दानों पर गोल निकास छिद्र बने होते हैं जिनमें से प्रौढ़ ब्रुकिड पहले ही निकल चुके होते हैं।

खेतों में फलीवाली फसलों की विकासशील फलियों के ऊपर या अंदर अंडे दिए जाते हैं। अंडे से निकलकर लार्वा मुलायम दाने के अंदर प्रविष्ट हो जाता है जो फली में पक रहा होता है। चूंकि इस समय लार्वा बहुत सूक्ष्म होता है, इसलिए जिस छिद्र से यह दाने में प्रवेश करता है वह नजर ही नहीं आता और शीघ्र ही भर भी जाता है। दलहन का दाना अंदर के कीट से पहले ही पक भी जाता है और फसल की कटाई के बाद स्वस्थ वातावरण में ले आया जाता है, हालांकि उसके अंदर अत्यधिक ग्रसन होता है। यही वजह है कि जब अचानक किसान दानों को संक्रमित पाता है तो ठगा-सा रह जाता है क्योंकि उसने अन्न का भंडारण करते समय सभी सावधानियां बरती थीं।

भंडारण स्थितियों में भृंग प्रत्येक दाने पर आकार के अनुसार बहुत सारे अंडे देता है। दाने की सतह के रंग के ऊपर ये अंडे पीले-से शल्क जैसे स्पष्ट नजर आते हैं। अंडे में से कुछ ही दिनों में लार्वा निकल जाते हैं और अंडे की अंदरूनी परत में छेद करते हैं जो सीधे ही दाने को छू रही होती है। इसके बाद वह दाने में छेद करता है। इस प्रकार ब्रुकिड के अंडों में अन्य अंडों की तरह निकास छिद्र नजर नहीं आता जबकि लार्वा निकल चुका होता है। लार्वा दाने के अंदर ही अंदर भोजन करता है और कई बार निर्मोचन करता है। पूर्ण वर्धित हो जाने के बाद लार्वा बीज परत में एक गोल तश्तरी-सी काटता है और दाने के अंदर ही प्यूपा निर्माण करता है। प्यूपा अवस्था कुछ दिन ही चलती है जिसके बाद उपर्युक्त तश्तरीनुमा छिद्र को और बड़ा काटकर भृंग बाहर निकलता है।

जहां तक ब्रुकिड की विशेष आवश्यकताओं का संबंध है, जिन जातियों का अध्ययन किया जा चुका है, उससे ज्ञात होता है कि ये 6 प्रतिशत से कम नमी अंश में भी प्रजनन योग्य होते हैं। इसलिए दाने को शुष्क रखने का इस पीड़क पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ऐसा पता चला है कि कुछ अवस्थाओं पर आक्सीजन की कमी का प्रभाव

पड़ता है। इस प्रकार नियंत्रण की दृष्टि से यह चावल घुन की अपेक्षा खपरा के अधिक समतुल्य है।

भारत में अन्न भंडारण की समस्याओं का विश्लेषण

भंडारित अनाज को मुख्यतया चार स्रोतों से क्षति पहुंचती है - चूहे, कीट, माइट और सूक्ष्म जीव। चूहों की समस्या अन्य तीन से भिन्न है इसलिए पहले इन तीनों पर एक साथ विचार किया जा रहा है।।

चूहों, कीटों, दीमक और अतिसूक्ष्म जीवों से भंडारित अन्न की सुरक्षा मुख्यतया तीन बातों पर निर्भर है (1) अन्न में नमी का अंश, (2) आक्सीजन की उपलब्धता और (3) भंडारित अन्न में तापमान प्रवणता अपने द्रुत परिवर्धन के लिए भिन्न किस्म के कीटों और माइट के लिए भिन्न भिन्न तापमान और आर्द्रता चाहिए जो भंडारित अन्न में अन्न के नमी अंश, वायु में आक्सीजन का प्रतिशत और तापमान पर निर्भर है। सूक्ष्म जीवों की आवश्यकताएं भी कमोबेश वही हैं, हालांकि कई प्रकार के सूक्ष्म जीव आक्सीजन न होने पर भी जीवित रह लेते हैं। इस तरह कीटों, दीमकों और सूक्ष्मजीवों से अनाज को सुरक्षित रखने के लिए इन सभी कारकों पर उचित ध्यान रखना चाहिए। पहली बात गोदामों के निर्माण और ढांचे का डिजाइन और दूसरी है भंडारण कार्यों की उचित देखरेख। यदि किसी विशेष स्थिति में ये पारिस्थितिक उपाय व्यावहारिक न हों, तब रासायनिक और मानवीय तरीकों से नियंत्रण करना जरूरी हो जाता है।

(क) नमी अंश : कुछ भंडारण पीड़कों के लिए आवश्यक नमी अंश की सूचना सारणी-1 में दी गयी है। इस सारणी से स्पष्ट होता है कि यदि भंडारित अन्न की नमी को लगभग 8 प्रतिशत से नीचे रखा जा सके तो खपरा भृंग के अलावा अन्य बहुत-से पीड़कों को नियंत्रण में रखा जा सकता है। खपरा भृंग को वायु में आक्सीजन की मात्रा घटाकर नियंत्रित किया जा सकता है। नमी अंश को कम रखकर सूक्ष्म जीवों से भी छुटकारा पाया जा सकता है और अन्न की कोटि भी अच्छी बनी रहती है। प्रश्न यह उठता है कि अन्न में नमी के अंश को कैसे उपयुक्त रखा जाय। भंडारण से पहले तो अनाज को धूप में रखकर या अन्य शुष्ककों की मदद से नमी अंश को नियंत्रित किया जा सकता है, लेकिन यदि भंडारण में उसे ऐसी स्थिति में रखा गया जहां वातावरणीय आर्द्रता को हटाना संभव नहीं है, तब इस आर्द्रता के अनुसार अन्न की नमी बढ़ जायेगी। यदि अन्न प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आर्द्रता के संपर्क में है तब भी उसमें नमी बढ़ जायेगी। नमी बढ़ाने का एक तीसरा स्रोत अन्न में उपस्थित कीटों द्वारा उपापचयी जल है लेकिन यह उस स्थिति में महत्वपूर्ण नहीं होता यदि दो अन्य स्रोतों को नियंत्रण में रखा जाय। अनाज के अंदर भी एक तापमान

घटक के विकास के फलस्वरूप कई बार भंडारित अन्न के विभिन्न भागों में नमी बढ़ जाती है। गर्म हिस्सों से नमी उड़कर ठंडे हिस्सों में चली जाती है। भंडारण की संरचना करने और गोदामों का डिजाइन बनाते समय इन सभी बातों का ध्यान रखना चाहिए। भंडारण कार्य के समय भी इन पर नजर रखी जानी चाहिए।

सारणी-1

विभिन्न जातियों के प्रजनन के लिए अन्न का नमी अंश

क्र.सं.	*कीट जाति*	*न्यूनतम नमी अंश* (प्र.श.)*	*अनुकूलतम नमी अंश* (प्र.श.)*
1.	ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम	0 से 1.9	11.5
2.	सिटोफाइलस ओरवजई	9.5 से 11	14 से 14.7
3.	राइजोपर्था डोमिनिका	9.10	11 से 14
4.	ट्राइबोलियम कास्टेनियम	10	11.5 से 16
5.	कोरसिरा सेफेलोनिका	9	15 से 20
6.	केडरा कौटेला	10	16

(ख) आक्सीजन उपलब्धता : पशु-पक्षियों और वनस्पति में आक्सीजन के श्वसन की भूमिका महत्वपूर्ण है। जब गेहूं जैसा कोई अन्न किसी वायुरोधी गोदाम में रखा जाता है तो वहां की वायु में आक्सीजन निरंतर घटती जाती है, क्योंकि एक तो अन्न द्वारा श्वसन किया जाता है और दूसरे यदि अन्न में कीट आदि हैं तो उनके द्वारा भी श्वसन किये जाने से आक्सीजन की खपत होती है। जितनी आक्सीजन वजन के हिसाब से अन्न द्वारा श्वसन के काम आती है, कीटों द्वारा 13,000 गुणा ली जाती है। इस तरह यदि अन्न कीटों द्वारा ग्रस्त है तो आक्सीजन जल्दी घटती है। यदि आक्सीजन स्तर न्यूनतम से कम हो जाय तो उस हिस्से में कीट मरने शुरू हो जाते हैं। दो प्रकार के भंडारण पीड़कों की जातियों की भिन्न अवस्थाओं के लिए न्यूनतम कितनी आक्सीजन सांद्रता चाहिए इसका निर्धारण भा.कृ.अनु. संस्थान ने किया है। इन जातियों की अवस्थाओं को उनके भोजन के साथ वायुरोधी बर्तन में रखा गया और जब सभी पीड़क मर गये तब आक्सीजन मात्रा का विश्लेषण किया गया। इस प्रकार एकत्र हुआ विवरण और आंकड़े सारणी-2 में दिये गये हैं।

* ये आंकड़े उस वर्ग को दर्शाते हैं, जिनमें विभिन्न कार्यकर्ताओं के परिणामों में भिन्नता मिलती है।

सारणी-2

बंद पर्यावरण में रखे गये गेहूं के दाने और वायु में आक्सीजन तत्व जिस पर विभिन्न पीड़कों की विभिन्न अवस्थाएं मृत मिलीं

क्र.सं.	*कीट जाति*	*अवस्था*	*आक्सीजन तत्व (प्रतिशत)*
1.	ट्राइबोलियम कास्टेनियम	पूर्ण वर्धित लार्वा	6.37
2.	ट्राइबोलियम कास्टेनियम	प्रौढ़	7.24
3.	ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम	अंडे	16.77
4.	ट्रागोडर्मा ग्रेनेरियम	प्रथम इंस्टार लार्वा	5.35
5.	ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम	पूर्ण वर्धित	1.08
6.	ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम	प्रौढ़	3.39

स्रोत : 1 और 2 (सिन्हा, बी.पी 1965-अप्रकाशित एम. एस-सी. शोध प्रबंध, भा.कृ.अनु.सं.)

3 से 6 (गिरीश जी.के. 1964-अप्रकाशित पी-एच.डी. शोध प्रबंध, भा.कृ.अनु.स.)

इस सारणी से स्पष्ट होता है कि एक ही कीट की विभिन्न अवस्थाओं की आक्सीजन आवश्यकता भिन्न भिन्न होती है। इससे पता चलता है कि जैसे ही आक्सीजन अंश न्यूनतम स्तर से नीचे जाता है इन जातियों का आगे बढ़ना रुक जाता है। उदाहरण के लिए खपरा कीट 16.8 प्रतिशत आक्सीजन अंश पर अपनी व्यवहार्यता खो देता है जबकि इसी का पूर्ण वर्धित लार्वा 1 प्र.श. तक जीवित रह सकता है। यह निश्चित है कि जब आक्सीजन तत्व 16.8 प्र.श. से नीचे चला जाता हैं तो इस पीड़क की संख्या और नहीं बढ़ सकती।

इन आंकड़ों से एक और महत्वपूर्ण बात उभर कर यह सामने आई है कि आक्सीजन के पूरी तरह समाप्त होने से पहले ही प्रायः कीट मर जाते हैं और अन्न अथवा सूक्ष्म जीवों द्वारा वास्तविक अवायु श्वसन का प्रश्न उठने की संभावना से पहले भी कुछ सूक्ष्म सूक्ष्मवायुरागी माइक्रोएरोफिलिकए जीवाणु कम आक्सीजन में भी उत्पन्न हो जाते हैं। आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि पूरी तरह हवा बंदी करना भी जरूरी नहीं है। यही पर्याप्त है कि भंडारण संरचना इस प्रकार की जाय कि आसपास की वायु में आक्सीजन मात्रा इच्छित स्तर से नीचे आ जाय, जैसा कि सारिणी-2 में दिखाया गया है। आगे यह भी देखा जा सकता है कि खपरा पीड़क, जो बहुत कम नमी अंश पर भी जीवित रह सकता है, आक्सीजन

मात्रा के प्रति बहुत संवेदनशील है। इसलिए यदि अनाज को 8 प्र.श. नमी अंश तक सुखाने और उसके बाद समुचित हवा बंद वातावरण में रखने से नमी की कमी से अधिकांश जातियां बहुगुणित नहीं होंगी और जो बहुगुणित हुई भी वे आक्सीजन की कमी से समाप्त हो जायेंगी। आक्सीजन का स्तर घातक स्तर तक घटने में कितना समय लेगा, यह इस बात पर निर्भर है कि संक्रमण कितना है और भंडारण संरचना में खाली स्थान कितना है, आदि आदि। उदाहरण के लिए यदि भंडारण संरचना में खाली स्थान अधिक है तो वहां विद्यमान आक्सीजन भी अधिक होगी जिससे घातक स्तर तक आक्सीजन को आने में अधिक समय लगेगा। इससे ज्ञात होता है कि हवा बंद संरचना में भी कई बार खाली स्थान अधिक छूट जाने से कीट अधिक समय तक जीवित देखे जाते हैं।

(ग) तापमान का प्रभाव : कीटों के परिवर्धन और गुणन को नियंत्रण में रखने के लिए तापमान बहुत महत्वपूर्ण कारक है। इस आसान और विश्वव्यापी तापमान प्रभाव के अतिरिक्त तापमान के अनुचित अथवा अप्रभावी उपयोग के फलस्वरूप कई प्रकार के हानिकर प्रभाव उठ खड़े हुए हैं। इनके मुख्य कारण हैं (i) भंडारित अनाज के अंदर ऊष्ण बिंदुओं का उत्पन्न हाना और (ii) मध्य से बाहर की ओर तापमान घटक का विकास। ऊष्ण बिंदु कीटों के गुणन में वृद्धि अथवा भंडारित अनाज के किसी भाग में सूक्ष्म जैव संक्रमण के कारण उत्पन्न होते हैं। ऊष्णता दोष पैदा होने का कारण है कुछ स्थानों में कीट संख्या बढ़ने अथवा सूक्ष्म जैव संक्रमण से अत्यधिक ऊष्णता पैदा होना। कीटों के श्वसन से पानी और गर्मी दोनों ही पैदा होते हैं। अनाज में अपेक्षाकृत असंवाहकता होने के कारण ऊष्णता का प्रभाव निस्सरण नहीं हो पाता। इसके परिणामस्वरूप नमी और तापमान दोनों बढ़ते हैं जिससे पहले तो कीटों की संख्या और तेजी से बढ़ती है और फिर सूक्ष्म जीवों की। कई बार ऊष्ण बिंदु दोष बिना कीट ग्रसन के उस स्थिति में भी पैदा हो जाते हैं यदि अन्न में नमी तत्व सूक्ष्म जैव गतिविधि के लिए अधिक हों। कई बार ऐसा भी होता है कि यह शृंखला गतिविधि उस सीमा तक चली जाती है कि कुछ संक्रमित हिस्सों में उत्पन्न ऊष्णता से वहां के कीट तो मर जाते हैं, लेकिन इस स्व-विसंक्रमण से अधिक लाभ नहीं मिलता, क्योंकि उस समय तक अन्न बहुत क्षतिग्रस्त और बर्बाद हो चुका होता है। अनाज के पिंड से बन जाते हैं जिनमें से तेज गंध आती है। इस प्रक्रिया को अंग्रेजी में 'केकिंग' कहते हैं। इसलिए ऊष्ण बिंदु उत्पन्न न हो, इसके लिए पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए। और जिन भागों में ऊष्णता आरंभ हो गई हो, वहां शीतलता प्रदान करनी चाहिए। ऐसा कई तरीकों से किया जा सकता है जैसे अन्न में वायु का प्रवेश कराना, अनाज को उलट-पलट करना, धूमन से ग्रसन का नियंत्रण आदि। सामान्यतया अन्न में श्वसन क्रिया के कारण मध्य से तापमान बढ़ना शुरू होता है। भंडारित अनाज के विभिन्न हिस्सों में असमान ऊष्णता के कारण तापमान घटक का विकास होता है। सामान्यतया अनाज के

श्वसन, कीट संक्रमण, सूक्ष्म जैव संक्रमण आदि के कारण तापमान में वृद्धि मध्य से शुरू होकर परिधि की ओर आती हैं जहां तापमान कम होता है। यदि भंडारण संरचना की दीवारें अच्छे संवाहक (जैसे धातु) की बनी हों तो वे तापमान को बाहर की ओर अपाकीर्ण कर देती हैं।

यदि धातु की कोई बड़ी संरचना सीधे धूप के सामने पड़ती है, जिसकी सतह दक्षिण पूर्व से दक्षिण-पश्चिम रुख वाली हो तो वह अपेक्षाकृत अधिक गर्म होगी और अनाज के अंदर दक्षिण से उत्तर की ओर तापमान प्रवणता विकसित हो सकती है। इन तापमान घटकों से जो मुख्य हानि पहुंचती है, उसे कई बार 'अनाज को पसीना आना' कहते हैं। गर्म हिस्से से अनाज में से वाष्पन द्वारा निकली नमी ठंडे हिस्से की ओर जाती है और वहां द्रवित होती है। इससे ठंडे हिस्से में नमी अंश की वृद्धि होती है जिससे कई बार अन्न भीगा भीगा भी लगता है। इस तरह का नम अनाज कीटों की बढ़वार और रोगाणुक (माइक्रोबियल) संक्रमण के लिए अच्छा वातावरण पैदा करता है। इससे अन्न में श्वसन बढ़ता है और 'केकिंग' भी। इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि अन्न अपनी कम संवाहकता और संरचना की अच्छी संवाहकता—दोनों से क्षतिग्रस्त होता है। इसलिए यह सलाह दी जाती है कि सरंचना की दीवार उस धातु से बनाई जाय जिसकी संवाहकता कमजोर हो। साथ ही अनाज की कमजोर संवाहकता से भी उपयुक्त तरीके से निपटने का प्रबंध करना चाहिए।

ऊपर विवेचन किये गये कुछ मूल सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए भंडारण की संरचना, भंडारण गोदाम और भंडारण कार्यों के विभिन्न पक्षों पर तर्कसंगत निर्णय लिया जा सकता है। जिन बातों के प्रति एकदम साफ दृष्टि की आवश्यकता है, उनके बारे में नीचे विचार विमर्श किया जा रहा है।

हवा बंद बनाम वायु प्रवाही भंडारण

यह बार बार प्रदर्शित किया जा चुका है कि हवा बंद भंडारण में कीटों की बढ़वार नहीं होती। लेकिन अन्न जैव पदार्थ है, इसलिए सिद्धांततः इसे अनिश्चित समय तक पूर्ण हवा बंद स्थिति में नहीं रखा जा सकता क्योंकि इससे अंततः आक्सीजन खत्म हो जायेगी और अन्न मर कर खराब हो जायेगा। फिर भी, व्यावहारिक स्थितियों में यह देखा गया है कि आक्सीजन के पूरी तरह समाप्त होने से पहले ही कीट मर जाते हैं। अनाज कम आक्सीजन लेता है इसलिए काफी समय तक ठीक बना रह सकता है बशर्ते उसमें नमी बहुत अधिक न हो। भारतीय स्थितियों में यह लगभग 10 प्रतिशत से ऊपर नहीं होना चाहिए। हवा बंद भंडारण के मामले में भी बाहरी स्रोतों से नमी अंश में वृद्धि की आशंका नहीं होती। इस प्रकार के भंडारण में एक कठिनाई यह आती है कि हवा बंद स्थिति बनाये

रखना कठिन होता है। दूसरी ओर वायु प्रवाही भंडारण कीटों और अन्न दोनों के लिए स्वस्थ वातावरण प्रदान करता है। लेकिन यदि ग्रसन रोकने के प्रयास नहीं किये गये तो शीघ्र ही कीटों की संख्या कई गुणा बढ़ जाती है और अन्न को क्षतिग्रस्त कर देती है। इस समस्या के बावजूद पीड़क नियंत्रण के कुछ विशेषज्ञों की राय है कि भंडारण हवा बंद न होकर वायु प्रवाही होना चाहिए। वास्तव में जब भंडारण व्यवस्था ऐसी हो कि पीड़कों के ग्रसन को रोकने के लिए उसे पूरी तरह हवा बंद न रखा जा सके तब यही बेहतर होगा कि भंडारण को वायु प्रवाही रखा जाय। वायु प्रवाही स्थिति में भंडारण में कामगरों को स्वच्छ वातावरण मिलता है और ऊष्ण बिंदु भी नहीं पनपता। फिर भी, हवा बंद और वायु प्रवाही दोनों स्थितियों में गुण दोषों का विवेचन करने पर निष्कर्ष निकलता है कि जहां तक संभव और व्यावहारिक हो, वायु प्रवाही भंडारण की तुलना में हवा बंद भंडारण को प्रमुखता दी जानी चाहिए और इस दिशा में नियोजित प्रयास करने चाहिए।

बोरा भंडारण बनाम ढेर भंडारण

सरकारी और व्यापारिक गोदामों में मुख्यतया अनाज को बोरों में भरकर रखने की प्रथा है। इसका लाभ यह है कि परिवहन और रख रखाव में आसानी होती है। हालांकि अनाज को ढेर में भंडारण करने के पीछे वैज्ञानिक मान्यताएं भी हैं और किसानों के बीच यह प्रचलित भी है। वे बुखारी, कोठी, कोठ्यार, मोरई आदि में अनाज रखते हैं। भंडारण के उन्नत संस्थान भी बड़े बड़े सिलों और भूमिगत गड्ढे बनाकर ढेर में भंडारण करते हैं। बोरा भंडारण के पक्ष में ये बातें हैं : (क) प्रत्येक बोरे में निश्चित मात्रा भरी होती है जो लाने-ले-जाने, खरीदने अथवा बेचने में सुविधाजनक होती है, (ख) वर्तमान भारतीय स्थितियों में अनाज को बोरों में भरकर लादना-उतारना सरल है, (ग) बोरों के भिन्न आकार के संग्रहों को सुंदरता से सजाकर रखा जा सकता है, (घ) यदि किसी एक बोरे में संक्रमण का पता चले तो उसे वहां से आसानी से हटाया अथवा उपचारित किया जा सकता है और (ङ) चूंकि बोरे की सतह वातावरण के संपर्क में रहती है अतः पसीने की समस्या कम होती है। दूसरी ओर ढेर में भंडारण करने के पक्ष में मुख्य वैज्ञानिक बातें ये हैं : (क) भंडारित अनाज की प्रति इकाई क्षेत्रफल के भार की बाहरी सतह वातावरण के संपर्क में अपेक्षाकृत कम होती है, इसलिए बाहरी स्रोत से क्षति की आशंका भी कम होती है और (ख) चूंकि दोनों के बीच वायु प्रवाह, स्थान की कमी के कारण नहीं के बराबर होता है, इसलिए निचली सतहों के अनाज की स्थिति हवा बंद जैसी ही होती है। इससे यदि संक्रमण होता भी है तो वह बाहरी परतों तक सीमित रहता है। यदि ढेर भंडारण के दौरान अनाज में पसीने आने की समस्या के प्रति सावधानी बरती जाय तो ये दो प्रमुख कारण जो इसके पक्ष में हैं, वे बोरों में भंडारण के कई लाभों से अधिक वजनदार हैं।

भूमिगत भंडारण बनाम भूमि ऊपर भंडारण

भूमिगत भंडारण और भूमि पर बने भंडारण के बीच मूलभूत कोई विशेष अंतर नहीं है यदि अनाज के सुरक्षित भंडारण के लिए ऊपर दिए तरीके अपनाये जायें। फिर भी देश में प्रचलित इन दोनों तरीकों के कुछ गुण दोष हैं। भूमिगत भंडारण के लाभ ये हैं : (क) भूमिगत भंडारण पर तापमान और आर्द्रता के मौसमी परिवर्तन का कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता, बशर्ते भंडारण रिसाव, सीलन आदि से पूरी तरह सुरक्षित हो। यदि भंडारण से पहले अनाज को उचित नमी और तापमान स्तर पर लाया गया हो तो यह और वांछनीय है, (ख) भूमिगत भंडारण हवा बंद जैसा रहता है जिसके लाभ पहले ही बताये जा चुके हैं, (ग) भूमिगत भंडारण में अनाज को ढेर में भरा जाता है जिसके अपने लाभ हैं और (घ) भूमिगत भंडारण में अन्य कई तरह के नुकसान और चोरियां आदि नहीं होतीं। दूसरी ओर भूमि के ऊपर बने भंडारण के लाभ इस प्रकार हैं : (क) भूमि पर बने भंडारण को अधिक स्वच्छ स्थितियों में रखा जा सकता है (ख) निरीक्षण और उलट-पलट करने के लिए यह भंडारण अधिक सुविधाजनक है और (ग) आंतरिक स्रोतों से अन्न ऊष्णता का भय बहुत कम होता है।

अन्य पहलुओं जैसे निभार आदि के बारे में अधिक विवाद नहीं है। फिर भी, एक बात स्पष्ट तौर पर ध्यान में रखी जानी चाहिए कि स्थायी भंडारण गोदाम में अस्थायी निभार नहीं बनानी चाहिए जब कि प्रायः ऐसा होता है। हर वर्ष बार बार के खर्च से बचने के लिए स्थायी निभार बनवानी चाहिए।

विभिन्न अवधियों के लिए भंडारण

भंडारण कितनी अवधि के लिए किया जाना है, इस बात पर ही भंडारण की विभिन्न प्रक्रियाएं निर्भर हैं। इसी को दृष्टिगत रखते हुए भंडारण को निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है : (क) *पारगमन भंडारण :* इस वर्ग में कम से कम अवधि वाला भंडारण आता है। इसमें समय समय पर अनाज आता-जाता रहता है, अर्थात पुराना माल जाता और नया माल आता रहता है। उदाहरण के लिए सरकारी गोदाम, बंदरगाहों के गोदाम परचून गोदाम और कई मामलों में थोक विक्रेताओं के गोदाम भी इस वर्ग में आते हैं। ऐसे मामलों में जहां थोड़े थोड़े अंतराल पर अनाज आता रहता है, परिवहन सुविधा के लिए बोरा भंडारण को प्राथमिकता दी जाती है। यह उस समय तक जारी रहेगा, जब तक देश में रख रखाव और वितरण के आधुनिक साधन उपलब्ध नहीं हो जाते।

(ख) *अल्पावधि भंडारण :* इस वर्ग में हम उस भंडारण को शामिल करते हैं जिसमें थोड़े अधिक समय तक भंडारण किया जाता है। उदाहरण के लिए किसान इस फसल का अनाज

भंडारण करके अगली फसल में उसे बीज के तौर पर प्रयोग करता है तथा अनाज एक फसल से दूसरी फसल तक रखता है, जिसे हम अल्पावधि भंडारण कह सकते हैं। इस वर्ग में गोदाम कारपोरेशन के गोदामों को भी शामिल किया जा सकता है। इस वर्ग में अन्न का भंडारण बुखारियों, कोठ्यारों, मोराइयों आदि में किया जाता है जो गैर-हवा बंद ढेर भंडारण के उदाहरण हैं। पिछले कुछ समय से इन भंडारण संरचनाओं में सुधार की बात सोची जा रही थी और भारतीय मानक ब्यूरो ने इन विभिन्न प्रकारों के लिए मानक निर्धारित किये हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने इस प्रकार के भंडारण के लिए पूसा बिन नामक कोठी का डिजाइन बनाया है जिसमें सभी बातों पर ध्यान रखा गया है।

(ग) *दीर्घावधि भंडारण* : इस वर्ग में दीर्घावधि के लिए उपयोगी भंडार आते हैं जैसे (1) बड़े व्यावसायिक भंडारकर्ता और (2) विशाल अन्न भंडार सुरक्षित रखने वाली सरकारी संस्थाएं।

दीर्घावधि भंडारण के लिए बहुत सावधानीपूर्वक तैयार की गई योजनाओं और सिफारिशों पर ध्यान देने की जरूरत है।

सिफारिशें :

(1) *अन्न शुष्कक :* जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अनाज के सुरक्षित भंडारण में उसके नमी अंश कारक का बहुत महत्व है। शुष्क क्षेत्रों और शुष्क महीनों में अन्न को धूप में ही सुखाया जा सकता है, लेकिन नम इलाकों और बारिश वाले महीनों में ऐसा नहीं किया जा सकता। इसलिए यह सलाह दी जाती है कि प्रत्येक भंडारण संरचना के लिए एक अन्न शुष्कक उपलब्ध कराया जाय। किसी भी भंडारण संस्था के लिए यह अत्यंत आवश्यक उपकरण माना जाना चाहिए।

(2) *भंडारण संरचना और गोदाम :* ये दीर्घावधि, अल्पावधि और पारगमन भंडारणों के लिए अलग अलग होने चाहिए।

(क) अल्पावधि ग्रामीण भंडारण : इस उद्देश्य के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने पूसा बिन नामक उपकरण का विकास किया है। इस बिन की संरचना की तार्किकता निम्नलिखित है :

देश के विभिन्न ग्रामीण भागों में विभिन्न आकारों और स्वरूपों के मिट्टी से बने साधनों में अन्न भंडारण करना सबसे आसान और सस्ता उपाय है। लेकिन अक्सर देखा जाता है कि इनमें कीड़ों का आक्रमण हो जाता है। कुछ इलाकों में चूहे भी इनमें सेंध लगाते देखे गये हैं। क्योंकि मिट्टी से बनी दीवारों को ये आसानी से कुतर कर अंदर रखे अनाज

तक पहुंच जाते हैं। देश के कुछ नम स्थानों में यह भी देखा गया है कि बाहर प्रचलित आर्द्रता से भंडारण में रखा अनाज प्रभावित होता है जिससे अनाज में केकिंग (पिंड) आरंभ हो जाती है। इन सभी कठिनाइयों के परिणामस्वरूप भंडारण में काफी अन्न क्षतिग्रस्त हो जाता है। इन हानियों से बचने के लिए पोलीथिन फिल्म की पतली पन्नी (0.17 से 0.18 मि.मी. मोटी) सामान्य मिट्टी के भंडारण की दीवार के बीच में चिपका देते हैं। इस प्रकार पोलीथिन चिपकाने के पीछे मंतव्य यह है कि इससे वायु का संचार न हो सके। इससे अनाज में नमी का प्रवेश रुकता है। इस फिल्म की सहायता से आक्सीजन में भी कमी आती है और कीड़ों की संख्या में वृद्धि नहीं होती। दूसरी ओर चूंकि फिल्म के दोनों ओर मिट्टी होती है इसलिए रख-रखाव के दौरान उसे नुकसान पहुंचने की संभावना नहीं होती। यदि पोलीथिन फिल्म बीच में लगाने के बजाय बाहर या अंदर लगाई जाय तो वह जल्दी ही नष्ट हो जाती है और किसी काम की नहीं रहती। मिट्टी की दीवार ताप की अच्छी संवाहक नहीं होती इसलिए उससे अनाज में पसीने आने की संभावना नहीं रहती। इस प्रकार देखा गया है कि पूसा बिन में भंडारण की तीनों आवश्यकताओं का ध्यान रखा गया है : (1) नमी रोधिता, (2) लगभग हवा बंद और (3) दीवारों की। कम ताप संवाहकता मिट्टी की सतह के स्थान पर अन्य कम ताप संवाहक पदार्थों का उपयोग भी किया जा सकता है, लेकिन लकड़ी के उपयोग में खतरा यह है कि उस पर दीमक आक्रमण कर सकती है।

तुलनात्मक अध्ययनों से परिणाम मिले हैं कि इस मिट्टी के उन्नत भंडारण उपकरण में ताजा फसल के सूखे गेहूं को काफी समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह भी देखा गया है कि भंडारण के चार प्रमुख कीटों–चावल घुन, लघु अन्न बेधक, खपरा भृंग और लाल सूंडी का प्रजनन इस भंडारण संरचना में नहीं हो सकता बशर्ते कि गेहूं का आरंभिक नमी अंश 10 प्रतिशत या कम हो। इस प्रकार के भंडारण में यदि गेहूं के बीज को तीन साल तक रखा जाय तब भी वह ठीक रहता है। ऐसा कोई कारक नहीं है जिससे इस भंडारण संरचना के आकार को सीमित किया जा सके। फिर भी लगभग 2,000 कि.ग्रा. की संरचना बनाने में जितनी लागत आती है और जो विधि अपनाई जाती है, उसका विवरण इस प्रकार है :

पूसा बिन बनाने का विवरण

(प्लेट-50)

आकृति :	आयताकार
क्षमता :	लगभग 1.7 टन

आकार :	1.40 मीटर लंबाई, 1.00 मी. चौड़ाई, 1.60 मीटर ऊंचाई (आंतरिक विस्तार) (रेखाचित्र-1)
चार दीवारी :	मिट्टी की दो परतों अथवा कच्ची ईंटों की दो परतों के बीच पोलीथिन फिल्म। गीली मिट्टी की प्रत्येक परत या कच्ची ईंटों की परत की मोटाई लगभग 11 सें.मी. (रेखाचित्र-2)
फर्श और छत :	इनमें भी मिट्टी की दो परतों के बीच पोलीथिन फिल्म। छत की प्रत्येक परत की मोटाई 5 सें.मी. जबकि फर्श की प्रत्येक परत की मोटाई 7 सें.मी.
मेन होल :	ऊपरी परत के कोने में 50 x 50 सें.मी. का छिद्र (ऊपरी छिद्र)
पोलीथिन फिल्म की मात्रा :	8.5 मी. (700 गेज) (180 सें.मी. चौड़ाई)
पोलीथिन फिल्म की लागत :	लगभग 60.00 रुपए
कच्ची ईंटों की संख्या :	1150 (ईंटों का आकार लंबाई 22 सें.मी., चौड़ाई 11 से.मी., मोटाई 7 सें.मी.)
ईंटों की संख्या (पक्की) :	160
निकास द्वार :	गैल्वैनाइज्ड टिन चद्दर का बना सामान्य पाइप 9 सें.मी. व्यास और 30 सें.मी. लंबाई जिस पर कस कर बंद किया हुआ ढक्कन (रेखाचित्र-4)
लकड़ी का फ्रेम :	छत को सहारा देने के लिए संरचना के ऊपर उपयोग के लिए (रेखाचित्र-5)

यह संरचना पक्की ईंट की फर्श पर बनानी चाहिए। यदि पक्का फर्श पहले से न हो तो उपयुक्त स्थान पर इसे बना लेना चाहिए। इसके ऊपर लगभग 1.7 मी. x 1.2 मी. x 7 सें.मी. मोटी गीली मिट्टी लगानी चाहिए। जिस पर 1.8 x 1.4 मी. की पोलीथिन फिल्म बिछा देनी चाहिए। इस फिल्म पर 7 सें.मी. मोटी गीली मिट्टी की परत बिछा देनी चाहिए जो नीचे वाली परत के बराबर हो। इसके बाद चारों तरफ 11 सें.मी. मोटी अंदरूनी दीवार खड़ी करनी चाहिए। तब छत बनाने के लिए पहले से ही गीली मिट्टी से बनाई गई 5 सें.मी. मोटी ईंटों को लकड़ी के फ्रेम पर लगाना चाहिए। (फ्रेम रेखाचित्र-5 में प्रदर्शित है)। एक कोने में नरद्वार (ऊपरी छिद्र) के लिए 50 x 50 सें.मी. खुला क्षेत्र छोड़ देना चाहिए। इस सारे ढांचे को सावधानीपूर्वक पोलीथिन फिल्म से ढक देना चाहिए। पोलीथिन फिल्म के खुले किनारों को हीट सीलिंग से सील कर देना चाहिए। तत्पश्चात तले के पास की

पोलीथिन फिल्म के मुक्त किनारे भी इसी प्रकार सील कर देने चाहिए। इस अवस्था पर अंदरूनी मिट्टी की परत पर तथा साथ ही साथ तले की ओर फिल्म में छिद्र बनाकर निकास छिद्र लगाया जाय। अंत में इस फिल्म पर 11 सें.मी. मोटी गारे की परत चारों ओर से चढ़ा देनी चाहिए। ऊपर पौलीथिन फिल्म पर 5 सें.मी. मोटा गारे का लेप कर देना चाहिए, लेकिन ऊपरी नरद्वार को छोड़ दें। ऊपरी नरद्वार पर ढकी हुई पोलीथिन फिल्म को काट देना चाहिए। जब इसमें पूरी तरह अनाज भर दिया जाय तब वर्गाकार पोलीथिन फिल्म से इस छिद्र को ढक दें। सामान्यतया तले के पास बने निकास छिद्र से अनाज जरूरत के अनुसार निकाला जाता रहता है। अंत में अनाज ऊपर के नरद्वार में से भी निकाला जा सकता है। इस ढांचे को चूहा-रोधी बनाने के लिए बाहरी परत में गारे के स्थान पर पक्की ईंटों का भी उपयोग किया जा सकता है। इन्हें 45 सें.मी. ऊंचाई तक लगाया जाय, इसके बजाय इसी ऊंचाई तक टीन की चद्दर (पीपों की) भी लगाई जा सकती है। इससे इस पर चूहों का प्रकोप नहीं होगा।

(ख) दीर्घावधि भंडारण : यदि भंडारण दीर्घकाल के लिए है तो इसके लिए हवा बंद ढेर भंडारण उपयुक्त होगा। ये भूमि के ऊपर बने आधुनिक सिलों के रूप में होते हैं अथवा हवा बंद, नमी रोधी भूमिगत तहखाने के रूप में। प्रायः भंडारण प्रबंध ऐसे होते हैं जो संतोषजनक नहीं कहे जा सकते। यदि पूसा बिन के आधार पर बड़े आकार की भंडारण संरचना बनाई जाय तो वह भी दीर्घावधि भंडारण के लिए उपयुक्त होगी। लेकिन ऐसी संरचना का निर्माण जलरोधी स्थितियों में होना चाहिए। जहां दीर्घावधि भंडारण का निर्माण विचाराधीन हो, वहां उत्तम यह होगा कि उसमें अच्छा भंडारण गोदाम हो और इस गोदाम में अच्छी भंडारण संरचना हो। गोदाम में ऐसा पर्याप्त प्रावधान रहना चाहिए कि जहरीली गैसों से धूमीकरण के लिए वह पूर्ण हवा बंद रह सके और धूमन के पश्चात उसका वातन भी हो सके। इसके लिए वायु बाहर फेंकने वाले पंखों का और खिड़कियों का प्रबंध होना चाहिए। खिड़कियां ऐसी हों कि बंद करने के पश्चात गोदाम हवा बंद हो जाय। इसके लिए दरवाजे भी उपयुक्त होने चाहिए। गोदाम के अंदर भी खुले ढेर वाले अनाज को हवा बंद रखने की व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे गोदामों के लिए पूसा बिन की संरचना अच्छा उदाहरण है। इन सब बातों का ध्यान यदि शुरू से ही रखा जाए तो लंबी अवधि में भंडारण की कीमत बहुत कम होगी। यदि गोदाम और भंडारण संरचना ठीक प्रकार से बनाई जाय तो रासायनिक नियंत्रण उपायों की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। फिर भी यदि कभी कोई संक्रमण पैदा हो जाय तो भंडारण संरचना के किसी एक भाग को या पूरे के पूरे को विसंक्रमित किया जा सकता है।

(ग) पारगमन भंडारण : पहले पारगमन भंडारण के लिए उचित भंडारण गोदामों के स्थान पर उपलब्धता के अनुसार छाया वाले स्थान ही पर्याप्त मान लिए जाते थे। इन स्थानों

पर अनाज को बोरों में भरकर उनकी धांग लगा दी जाती थी। भविष्य के लिए पिछले पृष्ठों में सुझाई गई विधियों के अनुसार बने उचित गोदाम उपयुक्त होंगे। इन गोदामों में पक्की कक्षिकाएं होनी चाहिए जिनमें अनाज के बोरों का अच्छी तरह ढेर लगाया जा सके। इनकी कक्षिकाएं ऐसी होनी चाहिए कि उन्हें भंडारण और धूमन दोनों के लिए हवा बंद किया जा सके। इसका अर्थ हवा बंद और बोरों के भंडारण का अच्छा मिश्रण होगा। इससे भंडारण अवस्था भी उपयुक्त होगी और बोरों को लाने-ले-जाने में सुविधा भी होगी। इसके लिए भी पूसा बिन को आधार बनाकर संरचना निर्माण करना उत्तम रहेगा।

रासायनिक नियंत्रण

सुरक्षित भंडारण के लिए यदि ऊपर वर्णित सुझावों और सिफारिशों को मानकर चला जाय तो भंडारित अनाज के लिए कीटनाशक दवाओं के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। लेकिन यदि आवश्यकता पड़ ही जाए तब निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(क) कीटनाशक मिश्रण : यह निस्संदेह प्रदर्शित किया जा चुका है कि अनाज के साथ दीर्घस्थायी कीटनाशक मिलाकर रखने से उसे काफी समय तक कीट संक्रमण से सुरक्षित रखा जा सकता है। हालांकि यह विधि बीज वाले अन्न के लिए बहुत अच्छी है, लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि बीज के लिए रखा गया अनाज खुले बाजार में खाद्य भोजन के लिए चला जाय और घातक प्रभाव छोड़े। यह भी हो सकता है कि इस विधि का पता यदि जन सामान्य को लग जाय तो असामाजिक तत्व खाद्यान्न में भी इसका प्रयोग करने लगेंगे। इसलिए जहां तक हो सके इस विधि से बचना चाहिए।

(ख) बोरों का कीटनाशी संसेचन: यह विधि भी काफी अच्छी है और काफी संख्या में कार्यकर्ता इसका उपयोग करते हैं। लेकिन इसकी कई सीमाएं हैं, जिसके कारण इस विधि को प्रायः प्रयोग में नहीं लिया जाता। भंडारण पीड़क, विशेषकर भृंग बोरे की बनावट में से गुजरने में कुछ ही क्षण लगाते हैं। जब तक की बनावट बहुत पास पास और अच्छी कसावट वाली न हो। इस अल्पावधि में वे कीटनाशक की घातक खुराक नहीं ले पाते। इस कमी के कारण यह विधि अधिक भरोसेमंद नहीं है।

(ग) बोरों पर कीटनाशी धूलन: इसके व्यापन से अधिक प्रभावी होने की संभावना है क्योंकि इसमें कीटनाशी दवा कीटों पर लगी रह सकती है तथा कुछ दवा कीटों के साथ ले जाई जा सकती है। यह अवश्य है कि इस प्रक्रिया से व्यापन की अपेक्षा संदूषण फैलने का खतरा अधिक रहता है। इस उद्देश्य के लिए सबसे सुरक्षित चूर्ण पाइरेथ्रम पर आधारित हो सकता है जिसे किसी उपयुक्त रसायन द्वारा बनाया गया हो। लेकिन यह रसायन टिकाऊ किस्म का नहीं है और अल्पावधि में ही समाप्त हो जाता है।

(घ) धूमन और धूमक : अनाज को विसंक्रमित रखने के लिए यह उत्तम और सर्वाधिक

भरोसेमंद तकनीक है। लेकिन उचित धूमक के बारे में सावधानी बरतनी चाहिएं। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि कार्बन टैट्राक्लारोइड पीड़कों के लिए कम विषाक्त है, लेकिन इसकी अच्छाई यह है कि अनाज भी इसे कम ग्रहण करता है। इथीलीन डाईब्रोमाइड कीड़ों के लिए तो अत्यंत घातक है लेकिन उसे अनाज भी बहुत ग्रहण करता है। अन्य धूमक जैसे इथीलीन डाइक्लोराइड की स्थिति इन दोनों के मध्य की है। इस प्रकार धूमक के चयन में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। सुरक्षा के लिए इथीलीन डाइक्लोराइड–कार्बन टैट्राक्लोराइड का 3:1 अनुपात में मिश्रण बहुत प्रचलन में है। मिथाइल ब्रोमाइड भी आम उद्देश्यों के लिए अच्छा धूमक है लेकिन इसका उपयोग अत्यंत सावधानी से विशेष धूमक उपकरणों की सहायता से करना चाहिए। हाल ही के वर्षों में फॉसटाक्सिन भी बहुत लोकप्रिय हो रहा है, लेकिन फॉसफीन गैस की प्रकृति अत्यंत घातक होने के कारण जो कि गोलियों से निकलती है, अप्रशिक्षित कर्मचारियों द्वारा इसके रख-रखाव और प्रयोग की सिफारिश नहीं की जाती।

(ड) गोदामों का विग्रसनः गोदामों को विग्रस्त करने के लिए धूमन उत्तम तकनीक है। लेकिन इसके लिए गोदाम उपयुक्त बने होने चाहिए। यदि ऐसा न हो तो दीवारों पर किसी दीर्घस्थायी कीटनाशक का छिड़काव कराना चाहिए। सबसे सुरक्षित छिड़काव पाइरेथ्रम घटक पर आधारित रसायन का हो सकता है जिसे किसी उपयुक्त रसायन से प्रबलित किया जा सकता है। इस उद्देश्य के लिए मैलाथियान का उपयोग बहुत प्रचलित है क्योंकि यह भी अपेक्षाकृत सुरक्षित कीटनाशक है।

परिशिष्ट

प्रमुख फसल पीड़कों के नियंत्रण के लिए सुझाई गई कुछ कीटनाशक दवाएं

	पीड़क का सामान्य नाम	*वैज्ञानिक नाम*	*संस्तुत रासायनिक नियंत्रण*
1.	**विविधभक्षी पीड़क**		
	(i) लाल रोमिल सूंडी	*एम्सैक्टा मूरई* बटलर	0.2 प्रतिशत कार्बारिल, 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास या 0.05 प्रतिशत फेनथायोन का छिड़काव करें।
		ए. एल्बिस्ट्रिगा वाकर	
	(ii) फड़का टिड्डा	*हीरोग्लीफस बैनियान* फैब्रिसियस	10 प्रतिशत कार्बारिल या 4 प्रतिशत फोजलोन का चूर्ण भुरकें अथवा 0.02 प्रतिशत फेनवलरेट का छिड़काव करें।
2.	**धान के पीड़क**	*ट्रिपोरिजा इंसर्टुलस* वाकर	
	(i) तना बेधक	*स्किरपोफेगा इंसर्टुलस*	0.04 प्रतिशत फेनथायोन, फेनीट्रोथायोन, फोस्फेमिडोन, डाईमेथोएट, डाईजेनोन, एंडोसल्फान, मोनोक्रोटोफास में से किसी के तीन पाक्षिक छिड़काव अथवा कारबोफ्यूरोन (3 प्रतिशत), फोरेट (10 प्रतिशत) का दो बार उपयोग अथवा एंडोसल्फान (4 प्रतिशत) दानों का प्रतिरोपण के 2 और 6 सप्ताह के बाद उपयोग। पौध का प्रतिरोपण से पहले 0.02 प्रतिशत क्लोरपाइरीफोस से उपचार।
	(ii) झुंड सूंडी	*स्पोडोप्टेरा मौरिसिया* बोड़सडुवाल	5 प्रतिशत आलड्रिन चूर्ण या 0.04 प्रतिशत एंडोसल्फान, 0.2 प्रतिशत कार्बारिल अथवा 0.05 प्रतिशत डाईजनोन का छिड़काव।
	(iii) गंधी बग	*लेप्टोकोरिसा एक्यूटा* (थैब.)	10 प्रतिशत कार्बारिल के चूर्ण अथवा 0.1 प्रतिशत मेलाथायोन, 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफोस अथवा डाईमेथोएट का छिड़काव फूल आने के समय करें।

	पीड़क का सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	संस्तुत रासायनिक नियंत्रण
	(iv) धान गाल मक्खी	*ओर्सियोलिया ओरिजे* वुडमेसन	फसल की वानस्पतिक अवस्था के दौरान 0.03 प्रतिशत फासफेमिडान, डाइमेथोएट, फेनीट्रोथायोन, क्लोरफेनविनफोस अथवा ऐंडोसल्फान का छिड़काव प्रतिरोपण से 15-20 दिनों के अंतराल पर तीन बार करें।
3.	**गेहूं और जौ के पीड़क**		
	(i) दीमक	*ओडोन्टोटर्मस ओबेसस* रैम्बुर	जुताई के समय या बिजाई की तैयारी के दौरान मृदा में 5 प्रतिशत एल्ड्रिन अथवा क्लोरडेन अच्छी तरह मिलायें। 2 प्रतिशत डिलड्रिन अथवा हैप्टाक्लोर के चूर्ण का भुरकाव करें।
	(ii) गुजिया घुन	*टैनिमैक्स इंडिकस* फास्ट	मृदा की गहरी परत में 5 प्रतिशत एल्ड्रिन अथवा हैप्टाक्लोर चूर्ण 12.25 सें.मी. गहराई तक अच्छी तरह मिलाएं।
4.	**मक्का और मोटे अनाजों के पीड़क**		
	(i) मक्का तना वेधक	*काइलो पार्टेलस* (जोनेलस) (स्वाइनहो)	4 प्रतिशत एंडोसल्फान या कार्बारिल दाना उपयोग करें अथवा 0.05 प्रतिशत एंडोसल्फान, 0.02 प्रतिशत कार्बारिल, 0.01 प्रतिशत फेनवलरेट अथवा 0.05 प्रतिशत डेल्टामेथ्रिन का छिड़काव करें। दवा से पर्ण चक्रों को अच्छी तरह आच्छादित करें।
	(ii) प्ररोह मक्खी	*अथेरीगोना सोक्काटा* (रोडनी)	बीज सामग्री को कार्बोफ्यूरान (20:1 से उपचारित करें या 3 प्रतिशत कार्बोफ्यूरान, 5 प्रतिशत डाइसल्फोटान या 10 प्रतिशत फोरेट दाना काम में लायें। बहुत अधिक संक्रमण के लिए 0.04 प्रतिशत एंडोसल्फान अथवा 0.05 प्रतिशत डाईमेथोएट का छिड़काव करें।

	पीड़क का सामान्य नाम	*वैज्ञानिक नाम*	*संस्तुत रासायनिक नियंत्रण*
	(iii) बाली बग	*कैलोकोरिस एंगुस्टेटस* लिथेरी	4 प्रतिशत कार्बारिल चूर्ण का पकी बालियों पर भुरकाव करें अथवा 0.01 प्रतिशत कार्बारिल (डब्ल्यू.पी.) का 10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
5.	**गन्ने के पीड़क**		
	(i) शीर्ष बेधक	*ट्रिपोरिजा निवलेल्ला* फैब्रिसियस *(स्किरपोपेगा निवलेल्ला)*	पर्ण चक्रों में 4 प्रतिशत कार्बारिल या एंडोसल्फान दाना डालें अथवा 0.5 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास का छिड़काव करें।
	(ii) तना बेधक	*काइलो इंफसकैटलस* स्नेलन	मृदा का उपचार 5 प्रतिशत आल्ड्रिन अथवा हैप्टाक्लोर से करें। 4 प्रतिशत कार्बारिल, एंडोसल्फान, कारबोफ्यूरेन अथवा 10 प्रतिशत फोरेट के दानों से उपचार करें, 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास या एंडोसल्फान का छिड़काव करें।
	(iii) जड़ बेधक	*एमालोसेरा डिप्रेसेला* स्वाइनहो	वही, जो *काइलो इंफसकैटलस* के लिए है।
	(iv) पाइरिला पत्ती-फुदका	*पाइरिला पर्पुसिला* वाकर	0.1 प्रतिशत मेलाथायोन, 0.3 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास, डाइमेथोएट, फासफैमीडान या मिथाइलडिमेटन का छिड़काव। पत्तों के निचले हिस्सों तक दवा पहुंचाने के लिए विशेष प्रयास करें।
6.	**दलहनी फसलों के पीड़क**		
	(i) चना फली बेधक	*हीलियोथिल आर्मीजेरा* हुबनेर	4 प्रतिशत कार्बारिल, फोजलान या एंडोसल्फान के चूर्ण का भुरकाव या 0.05 प्रतिशत एंडोसल्फान, 0.04 प्रतिशत फोजलान, या 0.01 प्रतिशत फेनवलरेट का फूल आने के बाद तीन बार पाक्षिक छिड़काव करें।

पीड़क का सामान्य नाम	*वैज्ञानिक नाम*	*संस्तुत रासायनिक नियंत्रण*
(ii) कुतरा कीट	*एग्रोटिस इप्सीलान* हफनागेल ओक्रोप्लूरा फ्लैमेट्रा सिफर-मुइलर *ए. सेगेटम* सिफर डेम्स मुइलर *ए. स्पिनीफेरे* हुबनर	मिट्टी में 5 प्रतिशत एल्ड्रिन, हैप्टाक्लोर या क्लोरडेन मिलायें अथवा फसल पर 0.05 प्रतिशत एंडोसल्फान, क्यूनालफास अथवा क्लोरपाइरीफास का छिड़काव करें।
(iii) पिच्छक शलभ सूंडी	*एक्सेलैस्टिस एटोमासा* वालासिंघम	5 प्रतिशत कार्बारिल या एंडोसल्फान का भुरकाव अथवा 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास, 0.05 प्रतिशत एंडोसल्फान या 0.01 प्रतिशत फेनवलरेट का छिड़काव करें।
(iv) मटर पर्ण सुरंगी	*फाइटोमाइजा एट्रीकार्निस* मेजन (क्रोमेटोमाइया एट्रीकार्निस)	0.03 प्रतिशत फास्फोमिडान, 0.03 प्रतिशत मिथाइल डेमेटान, 0.05 प्रतिशत डाइमेथोएट, 0.2 प्रतिशत कार्बारिल अथवा 0.05 प्रतिशत डाईजनोन का फूल-पत्तों पर छिड़काव करें।
(v) लोबिया तना मक्खी	*मेलानोग्रोमाइजा फेसिप्रोली* काकिलेट	5 प्रतिशत कार्बारिल अथवा 5 प्रतिशत एंडोसल्फान चूर्ण का भुरकाव या 0.05 प्रतिशत एंडोसल्फान, 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास, 0.02 प्रतिशत कार्बारिल, 0.01 प्रतिशत फेनवलरेट अथवा 0.05 प्रतिशत फ्लूवेलीनेट का छिड़काव करें।
(vi) अरहर फली मक्खी	*एग्रोमाइजा ओबटुसा* पलास	वही जो लोबिया तना मक्खी के लिए है।
(vii) माहू	*एफिल क्रेकियोवरा* कोच	बुआई के समय 10 प्रतिशत फोरेट या डाइसफोटोन के दाने से उपचार करें अथवा 0.03 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास, फासफैमिडान, मिथाइल डेमेटन, 0.05 प्रतिशत डाईमेथोएट अथवा एंडोसल्फान का दो बार छिड़काव करें।

	पीड़क का सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	संस्तुत रासायनिक नियंत्रण
7.	**तिलहनी फसलों के पीड़क**		
	(क) सरसों के पीड़क		
	(i) सरसों का माहू	*लिपेफिस एरिसिमी* काल्टेनबच	0.03 प्रतिशत फासफेमिडान, मोनोक्रोटोफास, मिथाइल डेमेटान, 0.05 प्रतिशत डाइमेथोट अथवा मेटासिस्टाक्स का छिड़काव करें।
	(ii) सरसों आरा मक्खी	*एथालिया ल्यूगेन्स प्रोक्सिना* (क्लग)	0.1 प्रतिशत मेलाथायोन अथवा 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास का छिड़काव करें।
	(ख) मूंगफली के पीड़क		
	(i) मूंगफली पर्ण सुरंगी	*स्टोमोप्टिकूस नर्टेरिया मिरिक*	5 प्रतिशत कार्बारिल या 4 प्रतिशत फोजलान का भुरकाव करें।
	(ii) मूंगफली तना बेधक	*स्फेनोप्टेरा पेरोटेटिग* यूरिन	मिट्टी में 5 प्रतिशत एल्ड्रिन या क्लोरडेन का भुरकाव करें। 0.025 प्रतिशत फेनीट्रोथायन या 0.05 प्रतिशत फोजलान का छिड़काव करें।
	(ग) तिल के पीड़क		
	(i) पत्ता और फली सूंडी	*एंटिगैस्ट्रा कैटालौनालिस* डुपोनचल	0.04 प्रतिशत फोजलान का छिड़काव करें।
	(ii) श्येन शलभ	*एकेरोसिया स्टिक्स* वेस्टवुड	0.05 प्रतिशत लिन्डेन का छिड़काव करें। बुआई से पहले खेत में हल चलायें जिससे भूमिगत प्यूपा बाहर आ जाय।
	(घ) अरंडी के पीड़क		
	(i) अरंडी अर्द्ध कुंडलक	*एकाइया जनाटा* लिनायस	0.05 प्रतिशत एंडोसल्फान, 0.2 प्रतिशत कार्बारिल, 0.01 प्रतिशत फेनवलरेट या 0.04 प्रतिशत फोजलान का छिड़काव करें या 0.25 प्रतिशत डाईफ्लू वेनज्यूरान का मिश्रण करने से इन कीटनाशकों की सामर्थ्य बढ़ जाती है।

पीड़क का सामान्य नाम	*वैज्ञानिक नाम*	*संस्तुत रासायनिक नियंत्रण*
8. सब्जियों के पीड़क		
(क) फल मक्खी (i) खरबूजा फल मक्खी	*डैकस कुकुरबिट* काकिलेट *डी. सिलियाटुल* लोव *डी. डाइवर्सल* काकिलेट	फल आना शुरू होने के वाद 20 दिन के अंतराल पर 0.2 प्रतिशत कार्वारिल, 0.1 प्रतिशत मेलाथायन या 0.05 प्रतिशत फेनथायन का छिड़काव करें। लोलुप विष आहार (20 ग्राम मेलाथायन, 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. अथवा 50 मि.लि. डाइजनोन और 200 ग्राम गुड़ या शीरा दो लिटर पानी में) किसी बर्तन में खुला रखने से मक्खियां आकर्षित होती हैं और मर जाती हैं।
(i) बेर मक्खी	*कार्पोमिया वेसुवियाना* कोस्टा	वृक्षों के आसपास अप्रैल से जून तक जुताई करते रहें और 5 प्रतिशत एल्ड्रिन या क्लोरडान के चूर्ण से मृदा का उपचार करें। हर तीसरे सप्ताह 0.03 प्रतिशत मिथाइल डेमेटान, 0.1 प्रतिशत मेलाथायन अथवा 0.04 प्रतिशत डाईक्लोरवोस का छिड़काव करें।
(ख) लाल कद्दू भृंग	*औलाकाफोरा फाविकालिस* लुकास *ए. इंटरमीडिया* जैकबी *ए. सिंकरा* फैब्रीसियस	ग्रबों के विरुद्ध मिट्टी में 5 प्रतिशत एल्ड्रिन मिलायें, फूल पत्तों पर 4 प्रतिशत कार्बारिल अथवा 0.05 प्रतिशत मैलाथायन का छिड़काव करें।
(ग) बैंगन वेधक (i) बैंगन प्रोह एवं फल बेधक	*ल्यूसीनोड्स ओर्बोनेलिस* गुनी	0.03 प्रतिशत डायजनोन, 0.04 प्रतिशत फोजलान या 0.1 प्रतिशत फेनवलरेट, 0.1 प्रतिशत कार्बारिल का छिड़काव करें। तैयार फलों को छिड़काव से पहले तोड़ लें और छिड़काव के बाद 3-4 दिन तक फल न तोड़ें।
(ii) बैंगन तना वेधक	*यूजोफेरा पर्टिसेल्ला* रैगोनाट	वही जो बैंगन प्रोह एवं फल बेधक के लिए है।

पीड़क का सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	संस्तुत रासायनिक नियंत्रण
(घ) हड्डा भृंग (पत्ती भक्षी भृंग)	एपिलैकना डोडेकास्टिगमा मुलसैंट *ई. विजिंसियोक्टोपंक्टस* फैब्रिसियस *ई. ओसेल्लाटा* रेडटेनबैसर	0.1 प्रतिशत कार्बारिल, 0.05 प्रतिशत मैलाथियान, 0.05 प्रतिशत फेनीट्रोथायन या डाइक्लोरवास का छिड़काव करें।
9. रेशा फसलों के पीड़क		
(क) कपास		
(i) चितकबरी डोडा सूंडी	*एरियास इंसुलैना* बोइसडुवान *ई. विट्टेला* फैब्रिसियस	0.1 प्रतिशत कारबेरिल, 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास, 0.07 प्रतिशत फोजलान, 0.04 प्रतिशत क्यूनोलफास अथवा 0.01 प्रतिशत फेनवलरेट का 2-3 पाक्षिक अंतराल पर छिड़काव करें। एक के बाद एक 3-4 बार 0.01 प्रतिशत साईपरमेथ्रिन और 0.06 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास का छिड़काव करें।
(ii) गुलाबी डोडा सूंडी	*पेक्टिनोफोरा गोसिपिएला* सांडर्स	वही जो चितकबरी डोडा सूंडी के लिए है।
(iii) कपास जैसिड	*अम्रैस्का बिगुटुला बिगुटुला* इशीदा	पीड़क के प्रकट होते ही 0.03 प्रतिशत फास्फैमिडान, 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास, 0.02 प्रतिशत मिथाइल डेमेटान, 0.05 प्रतिशत फोजलान या 0.03 प्रतिशत डाईमेथाएट का 2-3 बार पाक्षिक छिड़काव करें।
(iv) कपास सफेद मक्खी	*बेमेलिया टबाकी* गेनाडियस	पीड़क के प्रकट होते ही फसल पर 0.03 प्रतिशत फास्फैमिडान, 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास, 0.02 प्रतिशत मिथाइल डेमेटान, 0.05 प्रतिशत फोजलान या 0.03 प्रतिशत डाइमैथाएट का 2-3 बार पाक्षिक छिड़काव करें।
(ख) पटसन		
(i) पटसन अर्द्ध कुंडलक	*एनोमिस सैबुलिफैरा* गुनी	0.05 प्रतिशत एंडोसल्फान, 0.1 प्रतिशत कार्बारिल या

पीड़क का सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	संस्तुत रासायनिक नियंत्रण
		0.05 प्रतिशत फोजलान का छिड़काव करें।
(ii) तना वलयक	*नुपसेरा बाईकलर पोस्टवुर्निया* दत्त	वही जो पटसन अर्द्ध कुंडलक के लिए है।
(iii) पटसन तना घुन	*एपियान कारकोरी* मार्शल	वही जो पटसन अर्द्ध कुंडलक के लिए है।
10. फल और फल वृक्षों के कीट		
(i) सैंजोस खपरी कीट	*क्वाड्रैस्पीडियोटस पर्नीसियल* कोमस्टोक	0.03 प्रतिशत मिथाइल डेमेटान, 0.03 प्रतिशत डिमेथाट, 0.03 प्रतिशत फासफैमिडान, 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास, 0.02 प्रतिशत फोरेमोथायन अथवा डायजनोन का पौधशाला में हाइड्रोजन साईनाइड से धूमीकरण करें।
(ii) रोएंदार माहू	*एरियोसोमा लेनिजेरम* होसमैन	वृक्ष के ऊपरी हिस्सों पर मार्च-अप्रैल और दुबारा ग्रीष्म जून-जुलाई में 0.03 प्रतिशत डाईमेथाएट, फासफैमिडान या मोनोक्रोटोफास का छिड़काव करें।
(iii) फल चूस शलभ	*आथेरिस फुलोनिया* क्लर्क *ओ. मटेरना* लिनायस *अकेसिया जनाटा* लिनायस *काल्पे इमारजिनाटा* फैब्रिसियस	विषयुक्त लोलुप आहार 20 ग्राम मैलाथियान, 50 प्रतिशत डब्ल्यू. पी. या 50 मि.ली. डायजनोन + 200 ग्राम गुड़ अथवा सीरा दो लीटर पानी में।
(iv) नींबू पर्ण सुरंगी	*फिलोविनास्टिस सिट्रेला* स्टेनटन	0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास, फासफैमिडान, डाइमेथोएट, मिथाइल डेमेटान, 0.01 प्रतिशत परमेथ्रिन या फेनवलरेट का छिड़काव करें।
(v) नींबू तितली	*पैपिलियो डिमोलयस* लिनायस *पी. पोलिट्स* लिनायस	0.05 प्रतिशत एंडोसल्फान या 0.1 प्रतिशत कार्बारिल का छिड़काव करें।

पीड़क का सामान्य नाम	*वैज्ञानिक नाम*	*संस्तुत रासायनिक नियंत्रण*
(vi) अनार तितली	*पी. मैकोन एसियाटिका* मैनस्ट्रीज *विराचोला आइसोक्रेट्स* फैब्रिसियस	0.05 प्रतिशत इंडोसल्फान, 0.1 प्रतिशत कार्बारिल या 0.03 प्रतिशत फोस्फेमिडान का छिड़काव करें।
(vii) आम्र फुदका	*आईडियोस्कोपस क्लीपीलिस* (लैथियरी) *आई. निवियोस्पार्सस* (लैथियरी) *आई. निग्रोक्लाइपिएटिस* (मेटिकर) *आम्रीटोडस अट्किनसोनी* (लैथियरी)	एक बार पुष्पन से पहले, 1-2 बार पुष्पन के पश्चात् और 2-3 बार जून-जुलाई में महामारी वाले क्षेत्रों में 0.03 प्रतिशत फासफैमिडान, 0.04 प्रतिशत डायजनान, मोनोक्रोटोफास, क्यूनेलफास, मिथाइल डिमेटान या 0.05 प्रतिशत फोजलान का छिड़काव करें।
(viii) आम्र मीली बग	*ड्रोसिका मेंगीफेरा* (ग्रीन)	पीड़कों की संख्या घटाने के लिए पेड़ों की जड़ों के आसपास मृदा में 5 प्रतिशत एल्ड्रिन का चूर्ण मिलायें। नवजात बगों को मारने के लिए 0.04 प्रतिशत डायजनोन या मोनोक्रोटोफास का छिड़काव करें।
(ix) छाल भक्षी सूंडी	*इडैरबैला क्वाड्रिनोटाटा* वाकर *आई. टैट्राओनिस* मुरे	फीते जैसे सभी जालों को हटायें तथा छिद्रों का कार्बन डाईसल्फाइड या क्लोरोफार्म या पेट्रोल अथवा 0.1 प्रतिशत डाइक्लोरोवास (डी. डी. वी.पी.) या 0.05 प्रतिशत ट्राईक्लोरोफोन में रूई के फाए भिगो कर उपचार करें तथा गीली मिट्टी से उन्हें बंद कर दें। यदि ये छिद्र फिर खुल जायें तो दुबारा उपचार कर दें।
(x) आम्र गुठली भृंग	*स्टर्नोकेटस मेंगीफेरा* फैब्रिसियस *एस. फ्रिगिडस* फैब्रिसियस	फल लगने शुरू होते ही 15-20 दिन के अंतराल पर 0.01 प्रतिशत फेनथायन या 0.1 प्रतिशत मैलाथियान + 0.02 प्रतिशत लिंडेन का दो-तीन बार छिड़काव करें।

पीड़क का सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	संस्तुत रासायनिक नियंत्रण
11. बागनी फसलों के पीड़क		
(क) चाय		
(i) गुच्छा सूंडी	*अंड्रेका बाईपंक्टाटा* वाकर	0.05 प्रतिशत इंडोसल्फान, 0.2 प्रतिशत कार्बारिल, 0.04 प्रतिशत क्यूनेल्फोस या फेनीट्रोथोयन से उपचार करें।
(ii) थैला कृमि	*क्लेनिया क्रामरी* वेस्टवुड	0.1 प्रतिशत मेलाथायन या 0.05 प्रतिशत लिंड्रेन द्वारा उपचार करें।
(iii) मच्छर बग	*हिलोपेल्टिस एंटोनी* सिगनोरट *एच. फैब्रिकुलोसा* बरग्रेथ	0.03 प्रतिशत फोस्फेमिडान, 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास या 0.5 प्रतिशत एंडोसल्फान, 0.1 प्रतिशत कार्बारिल का छिड़काव करें। फोस्फेमिडान और कार्बारिल का मिश्रित उपचार ज्यादा प्रभावी है।
(ख) कॉफी		
(i) सफेद तना बेधक	*जाइलोट्रैकस क्वाड्रीप्स* शेवरोलट	मुख्य तने और प्राथमिक शाखाओं पर एक बार अप्रैल-मई में और दो बार सितंबर-दिसंबर के दौरान 0.12 प्रतिशत ए.आई. डीलड्रेक्स 18 ई. सी. की फुरेरी करें। संक्रमित पौधों को उखाड़ कर जला दें।
(ii) सूक्ष्म छिद्र बेधक	*जाइलोसैंडर्स कैम्पेक्ट्स* ईकाफ *जाइलेबोरस कानीडैंस* एगर्स	छंटाई के तुरंत बाद 8-16 लिटर प्रति हैक्टर हैप्टाक्लोर से उपचार करें और छंटाई चक्र के दूसरे और तीसरे वर्ष में 0.01 प्रतिशत फेनवलरेट से उपचार करें। 0.05 प्रतिशत फोजलान या एंडोसल्फान भी काम में लाया जा सकता है।

पीड़क का सामान्य नाम	*वैज्ञानिक नाम*	*संस्तुत रासायनिक नियंत्रण*
(ग) नारियल		
(i) गैंडा भृंग	*औरिक्टस रीनोसैरस* (लिनायस)	मृदा का उपचार 5 प्रतिशत एल्ड्रिन चूर्ण से करें। पत्ती स्तंभों को 5 प्रतिशत क्लोडान का चूर्ण रेत के साथ (1:1) मिलाकर अथसा नेफथीलीन की गोलियों से भर दें। इसके बाद कारबोफयूरान के चूर्ण अथवा दानेदार सूत्रण का उपयोग करें।
(ii) कलमुंही सूंडी	*नैफैटिस सेरिनोमा* (मिरिक)	0.05 प्रतिशत एंडोसल्फान या 0.1 प्रतिशत कार्बारिल अथवा टोक्साफीन का छिड़काव करें।
12. भंडारण पीड़क		
(i) चावल घुन	*सिटोफिलस ओरिजे* लिनायस	हवा बंद परिस्थितियों में मिथाइल ब्रोमाइड, फास्टोक्सिन या इ.डी.सी. टी. मिश्रण (डाईक्लोराइड – कार्बन टेट्राक्लोराइड का 3:1 अनुपात में मिश्रण) से धूमीकरण करें। बीजों का 1:200 वजन के अनुपात में मेलाथायन से मिश्रण करें।
(ii) लघु अन्न बेधक	*राजोपर्था डोमिनिका* फैब्रिसियस	
(iii) खपरा भृंग	*ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम* एवर्ट्स	

अनुक्रमणिका